आँचल में दूध : आंखों में पानी

नारी का महान् जीवन इन शब्दों में करुणा की बूँद बन कर सिमट जाता है किन्तु वह बूँद अपने आप में विराट है। यह उपन्यास भी नारी जीवन के उन अछूते पृष्ठों पर आधारित है जिन पर भीषण अन्तर्द्वन्द्व, स्वार्थपरता, अबलाओं का चीत्कार, आज के पूँजीवादी समाज के बदलते-मिटते दृश्य, आँसू, आग और चीत्कार अंकित है। लगता है जैसे नारी का जीवन मौन हाहाकार का सागर है। माँ अपने बेटे का परित्याग करती है, विधवा साहस के साथ दूसरे के बेटे को अपना बेटा कहती है—अनुसूया इस उपन्यास की विचित्र पात्र है—मस्त और बेफिक्र! रोचक इतना है कि आप पूरा पढ़े बिना उठ नहीं सकते। आज के नारी जीवन के महान् कैनवास पर विचित्र रंगों का सामंजस्य! अतः इसका प्रकाशन हिन्दी का एक श्रेष्ठ प्रकाशन है। इसके लेखक हैं ख्याति प्राप्त उपन्यासकार श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'।

आँचल में दूध : आंखों में पानी

लेखक
यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

प्रकाशक
नारायण दत्त सहगल एण्ड संज
दिल्ली

प्रकाशक :
नारायण दत्त सहगल एण्ड संज,
दरीबा कलाँ, दिल्ली।

प्रथम संस्करण
सन् १९५८

मूल्य : ५ रुपये

मुद्रक :
हरि हर प्रेस,
चावड़ी बाजार, दिल्ली।

Anchal men Doodh : Ankhon men Pani "Chandar" Rs. 5·0

मैं इतना ही कहूँगा—

"आँचल में दूध : आँखों में पानी" मेरा नया उपन्यास है।

अपने पत्रकारिता-जीवन से मुक्त होकर मैं सन् ५१ में कलकत्ता चला गया था जहाँ मेरा पत्रकार दिन-दिन सोता गया और इसके विपरीत कथाकार जागता गया। श्री शरतचन्द्र और श्री रवीन्द्र के अध्यन के परिचात उस शत्-शत् वन्दनीय भूमि के नर-नारियों के साथ रहा, उनकी सभ्यता संस्कृति में अपने को तादात्म्य किया, फलस्वरूप आज इतने वर्षों के निरन्तर चिन्तन-मनन का प्रतिफल यह उपन्यास है।

इस उपन्यास की कथा और पात्रों का चरित्र चित्रण साधारण रूप से अथवा हलकी दृष्टि से विचारणीय नहीं, उसके लिए आपको पत्रों की परिस्थिति विशेष, वातावरण विशेष और उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व विशेष पर ध्यान देना होगा। वर्तमान आर्थिक विषमताओं को देखना होगा और देखना होगा कि हमारी विचारधारा, भाव-धारा और कल्पना कितनी अस्थिर और कुंठित है।...... जीवन का गुह्य मर्म, अहंकार और स्वार्थ जनित पात्रों के असह्य घुटनदार अटूट सम्बन्ध और उस पर मानव की सर्वोपरि शक्ति "मनुष्यता" की जीत, इन सब का मैंने इमानदारी से चित्रण किया है।

इस उपन्यास के नामकरण और कथा के निर्माण में भाई गन्धर्वराज का बहुत बड़ा हाथ है, मैं उसका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

पाठकों की राय की मैं प्रतीक्षा करूंगा।

साले की होली,
बीकानेर

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

१६४२

१



संतप्त और अतृप्त धरित्री। दुख और चरम दुख। मृत्यु सी उदासी और संकट।

अकाल !

जमींदार अमोलक चक्रवर्ती और उनका ग्राम। ग्राम और अनावृष्टि। इन्सान, उसका शोणित और व्यर्थ।

एक अवसाद भरा समय। एक असह्य वातावरण। उफ ! लगता था कि इन्सान अब इन्सान के खून से खेल करेगा ! ऐसी हिंस्र भावना उनके भूखे नेत्रों में प्रतीत होती थी।

सूरज निर्वसना पागल औरत की तरह नील निलय में पृथ्वी-पुत्रों पर अट्टहास कर रहा था। जमींदार की हवेली उस कठोर उपहास में भी इतनी शांत थी जितनी मृत्यु। कभी-कभी उस भयावह शांति को किसी के कठोर कदम भंग कर देते थे।

थोड़ी देरके बाद सुनाई पड़ा, "ज्योतिर्मय !"

"हाँ, बाबा !" ज्योतिर्मय जमींदार साहब का इकलौता बेटा था। सुन्दर और सुगठित। पिता की पुकार सुन कर वह अपनी बन्दूक की नली को ठीक

करता हुआ आया। उसके चेहरे पर सदा की तरह लापरवाही थी और आँखों में मानवीय भावों से परे आतँक।

अमोलक बाबू गहरी निश्वास छोड़कर बोले, "यह अनावृष्टि महा अनिष्ट करने वाली है। इस अनंत वसुन्धरा के पवित्र आँचल का समस्त दूध सूख गया है। मैं ग्रामवासियों की ऐसी दुर्दशा और उनकी ऐसी दयनीय हालत नहीं देख सकता।"

"फिर ?" उसका स्वर गम्भीर हो गया।

"क्यों नहीं हम अपना चावल इनमें बाँट दें।"

"फिर हम ?" उसने अपनी जलती आँखें अमोलक बाबू पर जमादीं। अमोलक बाबू सहम उठे। रुकते-रुकते बोले, "हमारे साथ वही होगा जो सबके साथ होगा। आखिर ये गाँववाले भी तो मनुष्य हैं।"

"मनुष्य जरूर हैं पर भाग्य की रेखाओं ने प्राणियों में भेद उत्पन्न कर दिया है बाबा ! इस धरती पर सभी इन्सान ही रहते हैं पर उनमें समता कहाँ ? एक झौंपड़ी में दीया तक नहीं जला सकता और दूसरा महल में घी जलाता है। ऐसा क्यों ? सिर्फ इसलिए कि भाग्य की रेखाओं में साम्य नहीं है।"

तभी दूर से किसी नारी का कंठ-स्वर सुनाई पड़ा। वह बहुत घबराई हुई थी। उतावली से बोली, "चाचाजी, चाचाजी।" फिर वह ज्योति को देखकर ठिठक गई।

अवलोकन, कम्पन और स्थिरता।

"क्या बात है छन्दा ?" जमींदार साहब ने मौन तोड़ा।

अब तक ज्योतिर्मय अपनी बन्दूक को ठीक कर चुका था। उसे वह अपने कन्धे पर लटका कर हवा में उड़ता हुआ-सा बोला, "बाबा ! छन्दा आपको बहुत ही महत्वपूर्ण बात कहना चाहती है, पर मेरे समक्ष नहीं।" वह मौन हँसी हँसकर लम्बे स्वर में पुनः बोला, "यह भी जानती है कि

पत्थर प्रार्थना नहीं सुनते, उनमें करुणा का उद्रेक नहीं फूटता। खैर, मैं चला :"

ज्योतिर्मय कमरे से बाहर हो गया।

उसके जाते ही छन्दा के अन्तर का दुःख फूट पड़ा। वह जमींदार साहब के पाँव पकड़ती हुई रोदन भरे स्वर में बोली, "चाची बाबा "!

"क्या, सुबोल को कुछ हो गया है ? बताती क्यों नहीं, डरो नहीं।"

"बाबा न जाने एकाएक क्यों ठंडे हो गये ?"

'ठंडे हो गये ?" उन्होंने गंभीरता से उस अर्द्धवाक्य को दोहराया, अच्छा चलो, मैं अभी देखता हूँ; और हाँ, साईस को जाकर कह दे कि वह भागकर डाक्टर को बुला लाए।"

जमींदार साहब ने अपने कन्धों पर चादर डाली और दुखी स्वर में अपने आप से बोले, "गौरंगा प्रभु हमसे अप्रसन्न है तभी वर्षा नहीं होती, तभी धरती की प्यास नहीं बुझती, तभी खेतों में यौवन नहीं मचलता, आज मैं गाँव वालों से प्रार्थना करूँगा कि वे सब सम्मिलित रूप से ईश्वर की प्रार्थना करें ताकि ईश्वर अपने अमृत से धरती माँ का आंचल हरा भरा करदे।" जमींदार साहब के चेहरे पर काली घटाएँ छा गई थीं। एकाएक उन्हें छन्दा का ख्याल आया। संभल कर बोले, "छन्दा, तेरे बाबा की तबीयत बड़ी खराब है न। चल, जल्दी चल ! न मालूम वर्षा न होने से मैं बार-बार घबरा क्यों जाता हूँ ?"

जमींदार साहब ज्योंहीं बाहर निकले त्योंही ज्योतिर्मय ने उन्हें रोका, "कहाँ जा रहे हैं बाबा ?"

"छन्दा के घर।"

"क्यों ?"

"सुबोल बीमार है।"

"आप उसे अच्छा कर देंगे ? क्या आप डाक्टर हैं ?"

"डाक्टर तो नहीं हूँ, पर मैं समझता हूँ कि बड़े आदमी की सहानुभूति ही छोटे को असीम धैर्य दे सकती है।"

"ख्याल तो बुरा नहीं पर उसका असर विपरीत ही पड़ेगा। सागर कभी नदी के पास नहीं जाता, समझे! हाँ छन्दा तुम जाओ, मैं अभी डाक्टर का प्रबन्ध करता हूँ।" छन्दा वहीं खड़ी रही। उसकी सागर सी गहरी-नीली आंखों में क्रोध की चिनगारियाँ भड़क उठीं।

"मैं कहता हूँ कि तुम जाओ।" इस बार ज्योतिर्मय ने उसे डाँट दिया। वह चोट खाई सांपिन की तरह फुत्कारती चली गई। अमोलक बाबू अपने बेटे की इस अभद्रता पर क्रोधित हो गये। गुस्से में आँखें तरेरते हुए बोले, "यह क्या? आखिर तुम बार-बार इस तरह कठोर क्यों बन जाते हो?" वे उग्रता के कारण चहलकदमी करने लगे, "ये गरीब और सताये मानुष क्या अपने स्वामी की दया, स्नेह और अपनत्व भी प्राप्त नहीं कर सकते? बेटा! इतने पत्थर मत बनो कि एक दिन इन प्राणियों की भक्ति घृणा में परिवर्तित हो जाय।"

ज्योतिर्मय बन्दूक पर दृष्टि जमा कर बोला, "आप इन छोटे लोगों को जानते नहीं हैं, इनकी पीठ थपथपाओ, ये उड़ने लगेंगे, इन्हें दूध पिलाओ, ये जहरीले साँप बन जाएंगे। इस पर भी मैं किसी से घृणा नहीं करता। मैं इतना जरूर चाहता हूँ कि आप उनके घर न जाएँ।

"और जाऊं तो?"

"..........।" ज्योतिर्मय चुप हो गया। उसकी आंखें अमोलक बाबू पर जमी हुई थीं। अमोलक क्रोध में थर-थर काँप रहे थे।

"फिर जाइए न। कौन आपको रोक सकता है, आप इस गाँव के स्वामी हैं, देवता हैं, बाप हैं।" कह कर ज्योतिर्मय वहाँ से हवा की तरह चला गया। अमोलक बाबू उन्मादित से चीख पड़े, "मैं जाऊंगा और हजार बार जाऊँगा, देखूँ, मुझे कौन रोकता है। एकाएक वे शांत हो गए। उनकी चहलकदमी बढ़ गई और जोर से उन्होंने पुकारा, "पार्वती, ओ पार्वती।"

"आई जी।" यह कह ज्योतिर्मय की माँ जल्दी-जल्दी ऊपर आई। आँचल को ठीक करती हुई बोली," क्या बात है ? आप काँप क्यों रहे हैं ?"

"तेरे सपूत के कारण, तेरे लाड़-प्यार ने उसे बिगाड़ डाला है। मैं ऐसे कठोर प्राणी को कभी गुस्से में संगीन दंड दे बैठूँगा, मुझे उसका व्यवहार जरा भी पसंद नहीं, आज कहता है छन्दा के घर न जाओ, कल कहेगा हवेली से बाहर न निकलो और परसों कहेगा कि तुमसे न बोलो, हूँ ! यह भी कोई भद्र मनुष्यों के लक्षण हैं ?"

पार्वती ममता की साक्षात् प्रतिमा थी। इकलौता बेटा होने से वह सदा ज्योतिर्मय के अवगुणों को दृष्टि से ओझल कर दिया करती थी। उसके बड़े-बड़े दोषों को सुन्दर आवरण से ढक दिया करती थी। अपने पति को समझाते हुए बोली, "आप धैर्य रखिए, अभी वह बच्चा है, धीरे-धीरे सब समझ जाएगा।"

"अभी वह बच्चा है, अरी पार्वती, यदि उसका विवाह हो जाता तो वह तीन बच्चों का बाप होता और मैं दादा और तुम दादी कहलातीं।"

"फिर कोई लड़की ढूँढ़ क्यों नहीं लेते ?" पार्वती ने पति के समीप बैठ कर कहा, "सुनो, वह चाँद सी सुन्दर और सूरज की तरह तेजवान हो। उसमें दुर्गा की शक्ति और सावित्री की भक्ति हो।"

"उसमें सब कुछ है पर·······पर हाँ, अच्छा पार्वती मैं सुबोल के यहाँ जाता हूँ। उसकी तबीयत खराब है, मैं उसकी दवा-दारू का प्रबन्ध कर आता हूँ' इतना कह कर जमींदार साहब बाहर चले गये।

पार्वती ज्योतिर्मय के कमरे की ओर बढ़ी। ज्योतिर्मय अपने कपड़े-लत्त सँभाल कर नीचे उतर रहा था। उसे उदास देख कर पार्वती से न रहा गया। स्नेह-सिक्त स्वर में बोली, "क्या बात है ज्योति ?"

"माँ, मैं कलकत्ता जा रहा हूँ।" वह हौले से बोला।

"क्यों ?" माँ की आँखें विस्फारित हो गईं।

"नहीं तो बाबा से मेरा झगड़ा हो जायगा।"

"झगड़ा क्यों हो जाएगा ?" पार्वती इस बार साधिकार स्वर में बोली, "उनकी आज्ञा मानना तुम्हारा कर्त्तव्य है।"

"एक कर्त्तव्य उनका भी है कि वे अपने पुत्र की आन-शान रखें, उसके गौरव को बनाये रखें। जमींदारी स्नेह, प्यार और बन्धुत्व से नहीं चलती, बल्कि शासन और शक्ति से चलती है।"

"नहीं, स्नेह-वंचित होकर प्रजा राजा को अपनी आत्मीयता प्रदान नहीं कर सकती।"

"न करे, पर मुझे बाबा का यह ढंग तनिक भी पसन्द नहीं है। आखिर ··।"

"आखिर-वाखिर कुछ नहीं। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ कि भविष्य में तुम उनके काम-काज और रास्ते के बाधक नहीं बनोगे, वे जो करते हैं ठीक ही करते हैं।"

ज्योतिर्मय ललाट पर सलवटें डाल कर बोला, "मैं भविष्य में उनके किसी भी कार्य में हस्ताक्षेप नहीं करूँगा। अच्छा, मैं कलकत्ता जाता हूँ।"

पार्वती का स्वर वात्सल्यपूर्ण हो गया। ज्योतिर्मय को दुलारती हुई बोली, "बेटा, तुम्हारे बाबा बचपन से ही जरूरत से अधिक कृपालु और दयालु रहे हैं वे किसी का भी दुख नहीं देख सकते। वे कल तक गाँव वालों को अवश्य चावल बाँट देंगे।" वह आंखें फाड कर खड़ी हो गई। शंकाएं उसकी दृष्टि में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थीं। ज्योतिर्मय के समीप आकर वह विकलित स्वर में बोली, "तुम जा रहे हो, मैं तुम्हें नहीं रोकती, फिर तुम्हारे कालेज भी खुल जाएँगे लेकिन यदि तुम अपने हृदय को करुण और दयालु नहीं बनाओगे तो वे तुम्हें जमींदारी के अधिकार से वंचित कर देगें।"

ज्योतिर्मय ने माँ के इस सवाल का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने श्रद्धा से माँ के चरणों की धूलि ली। पार्वती की आँखों में अश्रु छलछला आए। भर्राए स्वर में बोली, "कलकत्ता पहुँचते ही पत्र डाल देना, अपनी कुशल क्षेम सदा भेजते रहना।"

ज्योतिर्मय-घोड़ा गाड़ी में बैठ गया। बैठने के पूर्व उसने अपनी माँ के चरणों की पुनः धूलि ली।

× × ×

रात का अन्धकार दानवी पंखों की तरह फैल रहा था। जमींदार साहब बैठे-बैठे थक चुके थे उन्हें बार-बार जम्हाई आती थी। कभी-कभी वे प्रभु का नाम भी ले लेते थे। छन्दा एक ओर मुँह लटकाये बैठी थी। उसके कपोलों पर आँसुओं के दाग हो गए थे। रोते-रोते उसकी बड़ी-बड़ी आँखें सूज गई थीं।

सुबोल टूटी खटिया पर निर्जीव-सा पड़ा था। कभी-कभी वह दीन-हीन प्राणी की तरह जमींदार साहब की ओर देख कर लम्बी साँसें लेने लगता था।

जमींदार साहब ने पुकारा, "छन्दा !"

छन्दा उनके सम्मुख नतमस्तक खड़ी हो गई।

"अभी तक डाक्टर नहीं आए हैं। मैंने दीनू को गाड़ी ले जाने के लिए कहा था वह कम्बख्त भी शैतान का बच्चा है।"

छन्दा ने उत्तर में सिसकियाँ लीं।

"हिम्मत न हारो बिटिया, भगवान सब अच्छा ही करेगा।"

तभी सुबोल ने आँखें खोल दीं। जमींदार साहब का हाथ उसने अपने दोनों हाथों में ले लिया। जमींदार साहब आत्मीयता से बोले, "क्या बात है सुबोल ?"

सुबोल टूटते हुए स्वर में रुकते-रुकते बोला, "मेरे बाद मेरी इस नन्हीं बच्ची का क्या होगा ? शुभ-दृष्टि के बाद उसने अपने पति का सुख भी नहीं देखा। यह बड़ी भोली और कोमल है, निस्सहाय और दरिद्र है। यह अकेली···।"

छन्दा ने लपक कर अपने बाबा का मुँह बन्द कर दिया, "बाबा! आप ऐसे अशुभ बोल मत निकालिये, आप मुझे छोड़कर नहीं जा सकते। बाबा···"

सुबोल ने अपनी बेटी पर ममता भरा हाथ फेरा। उसकी धँसी हुई आँखों में मोतियों-से आँसू ढुलक आए। वह सिसकता हुआ बोला, "जीवन अपने

अन्तिम छोर पर पहुँच कर ब्रह्म बन जाता है। उसे आत्मा का सच्चा ज्ञान हो जाता है। वह ज्ञान उससे कभी भी छल नहीं करता। छन्दा! मुझे अपने मरने की चिन्ता नहीं, मुझे तेरे जीवन की चिंता है। "उन्होंने मन ही मन सोचा— "यौवन के तोरण द्वार पर वैधव्य की व्यथा निःसहाय होकर कैसे पवित्र रहेगी यही प्रश्न मेरे मस्तिष्क में रह रह कर उठता है।"

"आप अभी शान्त रहिये।" छन्दा ने अपने बाबा को रोका। सुबोल चुप हो गया।

जमींदार साहब व्यग्र हो उठे। अपनी छड़ी को दोनों हाथों से सम्हाल कर वे चीखते हुए से बोले, "आज मैं उस दीनू के बच्चे को छटी का दूध याद दिलाऊँगा। डाक्टर को बुलाने गया है या अपनी अर्थी जलाने। जा बिटिया, तू जरा हवेली में देखकर तो आ।"

छन्दा जमींदार साहब की हवेली की ओर चली। रास्ते में जलती हुई बत्तियों का धीमा प्रकाश समाप्त होते हुए सामंतवाद का प्रतीक जान पड़ता था।

हवेली के बाहर ही गाड़ी खड़ी थी। छन्दा उत्साह के साथ हवेली में घुसी। पार्वती दीये की लौ ठीक कर रही थी। छन्दा को देखते ही पार्वती व्यग्रता से बोली, "क्यों बेटी, अब कैसी तबीयत है, सुबोल भैया की और तेरे बाबा अभी तक लौटे क्यों नहीं, भोजन भी ठंडा हो रहा है।"

"माँ, दीनू कहाँ है ? बाबा ने कहा है कि वह गाड़ी लेकर डाक्टर के यहाँ गया है, अभी तक नहीं लौटा, पर यहाँ तो गाड़ी खड़ी है।" अन्त में उसके स्वर में विस्मय तैर उठा।

अब तक पार्वती उसके बिल्कुल पास आ गई थी। उसके उदास मुख पर दृष्टि गाड़ती हुई वह बोली, "गाड़ी तो ज्योति लेकर गया था, वह आज कलकत्ता चला गया है।"

"और दीनू ?" उसके तौर बदल गये।

"वह तो पैदल ही गया है।"

"पैदल, अच्छा मैं जाती हूँ।" छन्दा खून का घूँट पीकर वापस लौट गई। वह बार-बार दोहरा रही थी, "दीनू पैदल गया है,...... ज्योतिर्मय !......ज्योतिर्मय !"

जमींदार साहब गुस्से में लाल-पीले हो रहे थे कि सुबोल को जोर की खाँसी आई और खाँसी के साथ उसने छन्दा को पुकारा। जमींदार साहब ने उसे सँभाला तभी छन्दा आ गई। आते ही वह गर्म स्वर में बोली, "चाचा जी, दीनू पैदल गया है ज्योतिर्मय ने उसे गाड़ी नहीं दी।"

जमींदार साहब ने घबराकर कहा, "पहले अपने बाबा को सँभाल, खाँसी रुकती ही नहीं।"

छन्दा लपक कर सुबोल के पास आई। उसे पकड़ा।

"आ गई बिटिया ?"

"हाँ, बाबा।"

"मेरे पास आ।" सुबोल ने इस बार इतने जोर से खाँसा कि उसे खून की कै हो गई।

खून, लाल खून और मृत्यु।

छन्दा पछाड़ खाकर गिर पड़ी। जमींदार साहब अपनी चादर से आँसू पोंछने लगे।

वातावरण व्यथा से बोझिल हो गया। छन्दा का ममता भरा करुण क्रन्दन कण-कण में व्याप्त होकर वेदना-संगीत उत्पन्न कर रहा था।

२



"छोड़ दो न मेरा आँचल।"
"अगर मैं न छोड़ूँ तो ?"
"फिर मैं चिल्ला दूँगी।"
"चिल्लाने से क्या होगा ?"

"ये जितनी भी स्त्रियाँ तुम्हें दीखती हैं, वे सब एक-एक सैंडिल तुम्हारे कोमल सिर पर लगाएँगी और थोड़ी ही देर में घुँघराले बालों की जगह चाँद दिखाई पड़ेगी।"

"फिर तुम चिल्लाओ ताकि सौंदर्य विकृत हो जाय और मुझे कुमारियों से मुक्ति मिल जाय।" उसने अपनी दृष्टि संध्या के प्रथम तारे की ओर जमा दी। स्वर में प्यार उंड़ेलता हुआ वह नमिता को अपने सन्निकट खींच लाया, "नमिता, किसी शायर ने कितना ठीक लिखा है कि उन्हें प्यार पर गुस्सा आता है और मुझे गुस्से पर प्यार आता है। तुम्हारी चंचलता वास्तव में मेरे जीवन में बसन्त की मादकता भरती है। अपने कठोर और मर्यादित जीवन के ये क्षण कदाचित मेरे जीवन के सर्वाधिक सुख के क्षण होंगे।"

नमिता ने मुस्करा भर दिया। उसके कॉलर से खेलती हुई वह कहने लगी, "कलसुधा बनर्जी कह रही थी कि नमिता तुम्हारी और ज्योतिर्मय की जोड़ी

खोजे नहीं मिलेगी। भगवान तुम्हें शीघ्र ही विवाह के पवित्र बन्धन में बाँध दे।"

"अब विवाह भी शीघ्र हो जाएगा। जिन जवान लड़कों के माँ-बाप बुड्ढे होते हैं उन्हें यह अवसर भी बड़ी ही सरलता से प्राप्त होता है।"

नमिता भावावेश में आ गई। अनागत मंगल की कामना की प्रसन्नता में वह डूब सी गई। ज्योतिर्मय को उसका चुप रहना अच्छा नहीं लगा। उसके बालों की लट को खींचता हुआ वह बोला, "अभी तो दुल्हिन नहीं बनी हो, फिर यह लजाना कैसा ?"

और वास्तव में नमिता के कपोल लज्जा से आरक्त हो उठे। उसने मुस्करा कर अपना मुँह अपने दोनों हाथों में छुपा लिया। ज्योतिर्मय को शरारत सूझी उसके हाथों को हटाता हुआ कविता की भाषा में नाटक अभिनेता की तरह उपहास करता हुआ बोला, "ए चन्द्रमुखी ! अपने पावन-आनन को निरावरण करो ताकि उसकी शुचिता के दर्शन करके मैं अपने जीवन को धन्य समझूँ। अरी हटाओ न।"

नमिता वहां से उठकर एक वृक्ष की आड़ में छिप गई।

संध्या के अंधकार में चौदहवीं काचाँद उग आया था। धीरे-धीरे अंधकार का स्थान निर्मल चाँदनी ने ले लिया था। पवन के ठंडे-ठंडे हिलोरे फूलों की पराग को उड़ा-उड़ा कर उन दो यौवन के यात्रियों के वातावरण को सौरभमय कर रहे थे। वातावरण मादक और उसमें मधुर उत्तेजना का समावेश हो गया था।

उद्यान के दक्षिणी छोर पर एक अन्य गुजराती दम्पति बैठे-बैठे तन्मयता से मुस्करा-मुस्करा कर बातें कर रहे थे। अपने से दूर नमिता को देखकर ज्योतिर्मय वृक्ष की ओर बढ़ा और उसका हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींच कर बोला," यह सब क्या है ? क्या हम पहली बार आपस में मिले हैं ?"

नमिता सिर झुकाकर बोली," लगता है पहली बार ही हम मिले हैं।"

"जरा दृष्टि उठाकर मेरी ओर देखो न, अरे देखो न, बाबा रे बाबा, तुम भी कमाल करती हो, ये सब शरमाना आज ही कर लोगी फिर सुहागरात वाले दिन क्या शेष रह जाएगा ?

"तुम्हारा सिर।" कह कर वह कृत्रिम झरने के किनारे बैठ गई। चाँद झरने की लहरों पर अठखेलियाँ कर रहा था। उसका झाँकता हुआ प्रतिबिम्ब नमिता के हाथ के कम्पन से थोड़ी देर के लिए लोप हो जाता था और फिर पानी स्थिर होता तो वह उसी प्रकार अठखेलियाँ करने लग जाता था।

ज्योतिर्मय उसके समीप आकर बैठ गया। दोनों के हृदयों में बड़ी हलचल थी। गुजराती दम्पति जोर से हँस कर उठ गए थे।

एकांत, मादकता और मौन।

"बोलोगी नहीं।" ज्योतिर्मय ने गहरी मूकता को भंग किया।

"ऊँ हूँ।" नमिता ने लहरों पर दृष्टि जमाकर कहा।

"देखो नमिता, आधुनिक युग में इस प्रकार की प्राचीन चुहलबाजियाँ नहीं चलेंगी। प्रगतिशील विचार वालों को युग के अनुसार नई चुहलबाजियों की सर्जना करनी चाहिए।" ज्योतिर्मय का स्वर तनिक तेज हो गया," क्या प्रेमी के उपहास पर रूठना, मुकरना और फिर उससे मिन्नतें कराकर राजी हो जाना, छिः।

नमिता एक सभापति के आज्ञा भरे स्वर में बोली, "श्रीमान भाषण जारी रहे।"

ज्योतिर्मय कट गया।

नमिता उसके कुंतलों में अपनी अंगुलियाँ उलझाती हुई बोली," नये युग में चुहलबाजियों की सर्जना नहीं नई परम्पराओं का निर्माण करना चाहिए। मतलब झट मंगनी और पट विवाह।"

ज्योतिर्मय हठात् उसी भाव से बोला," ना बाबा ना, झट मंगनी और पट बिवाह, पट विवाह और फट बचना—! नहीं भाई नहीं! एकदम

नहीं।—नमिता, गंगा की धरती बड़ी उर्वरा है। मैं ऐसा अनर्थ नहीं कर सकता! चट मंगनी और पट विवाह, नहीं! विवाह दस वर्ष के बाद! और फिर चार वर्ष कविता—।"

"विवाह के बाद कविता कैसी?" नमिता की भौंहे टेढ़ी थीं। आंखों में प्रश्न नाच रहा था।

"कविता से मतलब...देखो न नमिता, बिना कविता जीवन में क्या आनन्द आयेगा।"

"देखो ज्योति, यदि अब तुम देर करोगे तो मैं सारा मामला चौपट कर दूँगी। मैं जमींदार साहब के पास जाकर स्पष्ट शब्दों में कह दूँगी कि मुझे सदा छलते आये हो।"

"इससे क्या होगा?"

"मुझे तुम्हारी ममेरी बहिन से पता चला है कि तुम्हारे बाबा देवता स्वरुप हैं वे कभी भी किसी का दिल नहीं दुखाते।"

"इस पर बाबा नहीं माने तो?"

तभी आकाश में चाँद को मृगछौने की भाँति दौड़ते हुए एक बादल के टुकड़े ने ढक लिया। फूलों की सौरभ से महकते हुए उद्यान में अन्धेरा छा गया। कुछ दूर बैठे हुए दम्पतियों के जोड़े दीखने बन्द हो गए।

"तो...?" नमिता ने लम्बे स्वर में कहा। उसके मुख पर इस कथन पर कैसी वेदना मुखरित हुई थी इसे ज्योतिर्मय नहीं देख सका। पर जब चाँद पर से बादल का टुकड़ा हट गया तब ज्योतिर्मय ने देखा कि नमिता की नीली-नीली आँखें व्यथा से बोझिल हो गई हैं। उसके मुस्कराते हुए अधर अव्यक्त व्यथा से स्थिर हो गए हैं।

"तुम उदास क्यों हो गई?" ज्योतिर्मय ने कृत्रिम मंद मुस्कान से पूछा।

"तुम्हारा यह प्रश्न मेरे जीवन से गहरा सम्बन्ध रखता है, यदि तुम्हारे बाबा नहीं माने तो ....?" वह भावी आशंका की दुष्कल्पना मात्र से सिहर

गई। उसे लगा कि इस 'तो' के आगे उसके समस्त सुखों का सर्वनाश है।

"तुम बड़ी विचित्र नारी हो। कह दिया न कि मैंने तुम्हारा हाथ थामा है मैं उसे निभाऊँगा। व्यर्थ का अपने आपको पीड़ित करना उचित नहीं है। चलो....।"

वे दोनों चले पर न मालूम वातावरण में उदासीनता सी क्यों आ गई थी कि उन दोनों के चाहते हुए भी कहकहे उनके अधरों की सीमा का उल्लंघन नहीं कर पाए।

धीरे-धीरे वे चौरंगी के एक होटल में पहुँचे जहाँ उन दोनों ने खाना खाया। फिर मधुर मिलन की प्रतिक्षा के साथ दोनों ने विदा ली।

× × ×

३



दुर्दिन के पंख अनंत की तरह छन्दा के जीवन पर छाते गए। अन्य मनुष्य का स्नेह, ममता, प्यार और सहानुभूति अब उसे तीव्र व्यंग सी लगती थी। उसे लगता था कि संसार का प्रत्येक बन्धन कृत्रिम आवरण से आच्छन्न है

श्रौर प्राणी मात्र केवल 'करना है' इस विवशता से कर रहे हैं। ये पड़ोसी, ये सम्बन्धी श्रौर ये ठाकुर सब के सब उसकी विवशता श्रौर पीड़ा को सहलाने नहीं वरन् उसके घावों पर नमक डालने श्राते हैं।

वह दिन भर एकांत में बैठी रहती थी। उसका इस तरह बिल्कुल मौन रहना श्रमंगल सूचक लगता था। कभी-कभी उसके उदास चेहरे पर गहरे संघर्ष की रेखायें खिंच जाती थीं। उसके श्रन्तर का द्वन्द्व उसकी श्राकृति पर क्रूरता बन कर नाच उठता था।

रात्रि के नीरव तिमिर में उसे श्रपने बाबा का तड़पता श्रौर काँपता हुश्रा मुख दीख पड़ता था। उसे लगता था कि उसका बाप श्रब भी दवा के लिये तड़पता हुश्रा रात की शून्यता को भंग करके उसके कानों के सातों पर्दों को झनझना देता है। तब वह श्रधीर हो जाती थी। नींद उसकी पलकों से कोसों दूर भाग जाती थी। तब वह श्रपनी छत पर श्राकर दूर-दूर तक फैले खेतों को पगली सी देखती रहती थी श्रौर उन खेतों में उसे घोड़े की टापें सुनाई पड़ती थीं। तब उसे ज्योतिर्मय की कटु स्मृति श्रा जाती थी। उस तिक्त-स्मृति के साथ उसके रोम-रोम में श्राग लग जाती थी श्रौर वह श्रावेश में श्राकर बड़बड़ा उठती थी, "हाँ, उसी ने मेरे बाबा की हत्या की, वही मेरे बाबा का हत्यारा है, मैं मैं उसे ·····हाँ, मुझे उससे प्रतिशोध लेना चाहिए। पर हे प्रभु······" श्रौर वह प्रभु से उसके श्रमंगल के लिए निरन्तर प्रार्थना किया करती थी।

उसके श्रन्तर्मन में विश्वास की भांति जम गया था कि मेरे बाबा का हत्यारा ज्योतिर्मय ही है। तब धीरे-धीरे उसके मन में ज्योतिर्मय के प्रति घृणा की भावना तीव्र होती गई। श्रब तो उसके नाम पर उसके मन की सारी घृणा उद्वेलित हो जाती थी। वह श्रपनी समवयस्काश्रों से उसका नाम सुनना पसंद नहीं करती थी। हालांकि इससे पहले ज्योतिर्मय उसे श्रच्छा जरुर लगता था श्रौर यदा-कदा वह उसकी चर्चा भी कर दिया करती थी।

आज प्रभात-सूर्य की किरणों ने .शबनम से भीगी धरती के अधरों का प्रथम-चुम्बन लिया ही था की अमोलक बाबू कि बुढ़िया दासी मेनका ने छन्दा का गृह प्रवेश किया।

छन्दा स्नान से निवृत होकर धूप में अपने घने, सुदीर्घ कुन्तलों को सोखा रही थी। अस्त-व्यस्त बालों में उसका सौन्दर्य अनुपम लग रहा था। केसर से नहाई पीत-कमल सी उसकी सुकुमार देह थी। कपोलों पर यौवन की रक्ताभ अनचाही सी बढ़ रही थी।

मेनका अनावश्यक पश्चाताप भरे स्वर में बोली, "ईश्वर की लीला भी विचित्र है। तुम्हें वैधव्य की आग में झोंक कर तो उसने अपनी क्रूरता का ही परिचय दिया है।"

छन्दा को यह चर्चा रुचिकर नहीं लगी। वह नितांत निरुत्तर रही ताकि उसकी इस चर्चा को प्रोत्साहन न मिले फिर भी मेनका बोलती ही गई, "क्या रूप रंग दिया है तुम्हें विधाता ने, यदि तुम्हारा स्वामी जीवित रहता तो वह तुम्हें चंद क्षण भी अपनी दृष्टि से दूर नहीं करता।"

छन्दा ने अपनी दृष्टि दीवार पर लगी कालीमाई की तस्वीर पर जमादी। वह मेनका को यह बताना चाहती थी कि उसे तुम्हारी इन बातों में जरा भी दिलचस्पी नहीं है पर मेनका बुड्ढी ठहरी, बोलना ही अब उसके जीवन का महान उद्देश्य शेष रह गया था।

अपनी अश्रुहीन आँखों को आँचल के छोर से पोंछती हुई वह आर्द्र स्वर में बोली, "दुर्भाग्य भी कितना कठोर होता है। बचपन में माँ मर गई और अब बाबा? बेचारी अब इस संसार में निःसहाय और अकेली रह गई है।"

छन्दा का कोई उत्तर न पाकर मेनका को अपना स्वभाव जनित अभिनय बन्द करना पड़ा।

स्वर को वह बदलती हुई बोली, "छन्दा बिटिया!"

"क्या है?"

"खुश है न"

"हाँ।"

"जब इस घर में बाबा को नहीं देखती तो हृदय भर आता है। सुबोल भैया लाखों में एक थे बेटी, और मेरे बिना तो वह एक दिन भी चैन से नहीं रह सकता था। हमेशा मिलने आता था। हाल-चाल पूछता, सुख-दुख की बातें करता और जाता-जाता वह कह जाता कि बड़ी दीदी तुम अपने को अकेली मत समझना, किसी भी वस्तु की आवश्यकता हो, अपने सुबोल से कह देना, आज्ञा पर हाज़िर कर दूँगा।" मेनका क्षण भर चुप रही।

एक बार तो छन्दा ने चाहा कि बुआ को डांट दूँ।...न मालूम वर्षों से इसका यह स्वभाव क्यों बन गया है कि व्यर्थ की भूमिका बांधकर प्रयोजन की बात कहना। लेकिन फिर यह सोच कर उसने मौन धारण कर लिया कि बुआ कई दिनों में घर आई है। यदि वह बीच में कुछ कह-सुन देगी तो कदाचित आज वह बुरा मान जाय। प्रायः मेनका लोगों के टोकने पर हँस कर कह दिया करती थी कि आज के युवक-युवतियों को हम बुजुर्गों की बातें क्यों अच्छी लगने लगीं ? लेकिन आज कुछ परिस्थिति भिन्न ही थी।.

मेनका ने अपना भाषण पुनः प्रारम्भ कर दिया, "एक बार मैंने बात ही बात में सुबोल को कह दिया था कि बेटा मुझे शांतिपुर की धोती चाहिए। अरे बेटा, तुम्हें क्या बताऊँ ? दूसरे ही दिन सुबोल धोती लिए तैयार है।"

"बुआ ?" छन्दा आदर भरे स्वर से बोली।

"क्या है ?"

"स्वार्थ हमारा सबसे अटूट बन्धन है क्या ?"

मेनका चौंक गई। सम्भलती हुई बोली, "नहीं।"

"पर प्राणी हर समय उन्हीं के गीत गाया करता है जिस में हमारी व्यापारिक-भावना निहित रहती है। फलाँ बहुत अच्छा था क्योंकि वह मुझे

सवेरे-सवेरे दूध का गिलास गर्म करके पिलाया करता था। फलाँ को मैं कैसे भूल सकती हूँ, उसने मुझ पर बड़े-बड़े अहसान किए हैं। क्यों बुआ?"

मेनका बिल्कुल चुप हो गई। उसकी आँखों में रोष उभर आया। अपने बाल को संवारती हुई बोली, "तभी तो भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है-"मनुष्य के कर्म अमर हैं।"

छन्दा कुछ बोलने के लिए होंठ खोले, इसके पहले ही मेनका ने कहा, "तुम्हें बहू रानी ने याद किया है।"

"क्यों?"

"उन्होंने अत्यन्त स्नेह से कहा है कि जाकर बिटिया को बुला ला उसे देखे कई दिन हो गए हैं। न मालूम वह बेचारी किस हाल में होगी।"

"तुम जाओ, मैं आ जाऊँगी"

"शीघ्र आना, बहूरानी तुम्हारी प्रतिक्षा करेंगी।"

"हाँ, हाँ आजाऊँगी, तुम पहुँचोगी तब तक मैं भी पहुँच जाऊँगी।" उसने अनिच्छापूर्वक कहा।

मेनका वहाँ से लौट पड़ी।

छन्दा ने स्वच्छ-श्वेत साड़ी पहनी और पहना गोरा श्वेत ब्लाउज! ललाट पर चन्दन की बिन्दिया निकाल कर जब वह दर्पण के सम्मुख खड़ी हुई तो न जाने क्यों दर्पण को निहारते-निहारते उसकी आँखें भर आईं।

हृदय की व्यथा आँखों के मोती बन कर बरस पड़ी। आँचल से आँसू पोंछ कर वह धीरे-धीरे कदम उठाती हुई हवेली की ओर रवाना हो गई।

जमींदार साहब तीन दिन से कलकत्ता किसी अत्यन्त आवश्यक कार्य से गए हुए थे।

उन्होंने ज्योतिर्मय की परवाह किए बिना ही अपना चावल गाँव वालों को बाँट दिया था। भाग्य से उसके तीसरे दिन ही वर्षा हो गई जिससे अनंत धरा की महा अतृप्ति बुझ गई। उसका सूखा आंचल हरा हो गया।

फिर भी गाँव के दो निवासी अन्न के अभाव में गाँव छोड़ कर शहर में मजदूरी के लिए चले गये थे। जमींदार साहब ने उन्हें बहुत समझाया पर वे रुके नहीं। वे बार-बार यही कहते कि "न मालूम कब छोटे बाबू आकर इन चावलों के बोरों में आग लगा दें और कब हम सब भूख से तड़प-तड़प कर मर जाएं।"

एक ने जाते-जाते कहा, "बड़े सरकार आप जितने दयालु हैं छोटे सरकार उतने ही कृपण। न मालूम आप के बाद हम गरीबों का क्या होगा ?"

बस फिर क्या था ?

अमोलक बाबू उनके प्रस्थान से अत्यन्त पीड़ित हो उठे।

ज्योतिर्मय से उनका सम्बन्ध अलगाव पाता गया। उसके स्वभाव की कठोरता उसे तनिक भी पसन्द नहीं थी। फिर वे पार्वती बहू को बार-बार यही कहते थे मैं जानता हूँ कि एक न एक दिन यह ज्योतिर्मय हमारा नाम ही डुबा कर ही रहेगा। वह बहुत ही कठोर और दुष्ट है। वह अवश्य मेरी मृत्यु के बाद इन दरिद्र प्राणियों के जीवन से खेलेगा।"

पार्वती प्रायः उनके प्रश्न पर मौन धारण कर लिया करती थी। मौन के कारण बात कभी भी तूल नही पाती थी।

जब छन्दा हवेली में पहुँची तब पार्वती ठाकुर-द्वार पर बैठी कवि चंडीदास का भजन गा रही थी। उनके मन्दिर में भगवान श्री कृष्ण की भव्य मूर्ति थी और उस मूर्ति के बाईं ओर आलिंगन में आबद्ध राधा-कृष्ण का चित्र भी टंगा था जो किसी प्रसिद्ध चित्रकार का बनाया हुआ तैल चित्र था।

धूप की सुगंध से चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था। यत्र-तत्र फूल भी बिखरे हुए थे।

छन्दा भी वहीं जाकर चुपचाप बैठ गई। उसकी आँखें मूर्ति की ओर भक्ति भाव से लगी हुई थीं। धीरे-धीरे वह भी पार्वती के स्वर में अपना स्वर मिलाने लगी।

भजन समाप्त हो गया ।

पार्वती ने एक बार प्रभु को साष्टांग प्रणाम किया । उनके घूमते ही छन्दा ने उसकी चरण-धूलि ली ।

"जीती रहो बेटी ।" कहकर पार्वती मंदिर की सीढ़ियाँ उतरने लगी । उसके पीछे पीछे छन्दा थी ।

दोनों की वार्ता पूर्ववत जारी थी ।

"इतने दिन कहाँ रही ?"

"घर में ही ।"

"क्यों ?"

"मन कहीं पर नहीं लगता है ।"

"बेटी, मन बड़ा चंचल होता हैं उसे लगाया जाता है, उसे बहलाया जाता है । उसे दुखी करने पर वह मनुष्य को अत्यन्त पीड़ा पहुँचाता है । इसलिए उसे सदा ही प्रसन्न रखना चाहिए ।"

"प्रयत्न तो करती हूँ ।" पर यह मन भी अन्तहीन दुखों से मोह नहीं छोड़ता ।"

"वह कैसे छोड़े ? अनुचित प्रयत्न निष्फल होते हैं । मन को एकांत दोगी तो वह तुम्हारा सब से बड़ा शत्रु हो जायगा, इसलिए उसे कोलाहल में रखो व्यस्त रखो, बहलाये रखो ।"

"लेकिन बाबा··········!"

अब तक पार्वती और छन्दा बैठक खाने में आ गई थीं । मखमली गद्दों से सज्जित कुर्सी पर बैठती हुई वह बोली, "तुम्हारे बाबा की मृत्यु का दुख हमें भी है और तुम्हें चरम दुख होगा । सच तो यह है कि दुख ही अन्तहीन हैं । प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है । हमें ऐसी दुर्घटनाओं को प्रभु की लीला समझ कर धैर्य धारण कर लेना चाहिये । 'प्रभु को यही स्वीकार था' यही

हमारी अधीरता और असह्य यातना की दृढ़-शिला है। बेटी ! मृतक का पुनार्गमन असम्भव है। रोना और विलाप करना ये दोनों जी हल्का करने के साधन मात्र हैं। तभी तो मैं तुम्हें कहती हूँ कि यहाँ आ जाया करो मन बहल जाएगा और दुख-स्मृति बार-बार तुम्हें पीड़ित नहीं करेगी।"

पार्वती का वात्सल्यपूर्ण हाथ छन्दा के सिर पर लगा। छन्दा सिसक पड़ी। सिसकते-सिसकते वह बोली, "उस दिन यदि छोटे सरकार गाड़ी दे देते तो बाबा नहीं मरते···।"

"तो तुम समझती हो कि ज्योतिर्मय के कारण ही तुम्हारे बाबा की मृत्यु हुई है?" पार्वती का स्वर क्षण भर के लिए तेज होकर पुन: कोमल हो गया, "तुम्हारा ऐसा सोचना मिथ्या तो नहीं है पर इसे ही दुर्घटना का मूल और एकमात्र कारण मान लेना भी न्यायसंगत नहीं। बिना कारण इस संसार का कोई भी कार्य नहीं होता। 'कारण' ही संसार की गति का मूल है। तुम्हारे बाबा की मृत्यु का कोई व्याधि न होकर मेरा बेटा हो गया। क्यों हो गया, इस पर तुम्हें विवेचनात्मक दृष्टि से सोचना चाहिए। तुम्हारे बाबा लम्बे अर्से से रुग्ण थे। इतने दुर्बल हो गए थे कि अब उनका अच्छा होना कुछ संभव सा नहीं लगता था। और उस दिन दैवयोग से उनको दौरा पड़ा और मेरे बेटे का गाड़ी लेकर जाना हुआ। खून की कै उन्हें कदाचित उसी दिन हुई थी। वह खून ही उनकी मृत्यु था। पर मैं तुम्हें भी गलत नहीं कहती।···और तो और छन्दा बेटी होनी को कौन रोक सकता है?"

पार्वती ने अपने आँचल से उसके अश्रु पोंछे और फिर बात का रुख बदल कर बोली, "तुम्हारा खेत कौन जोत रहा है?"

"अनिल।"

"अनिल कौन?"

"ज्ञानचन्द्र···।"

"अपने ज्ञानचन्द्र का बेटा? यह तुमने बहुत अच्छा किया। ज्ञान का बेटा

अनिल बहुत ईमानदार है । वह तुम्हें तुम्हारा हिस्सा ईमानदारी से दे देगा ।"

पार्वती एकदम चुप हो गई ।

छन्दा संगमरमर के फर्श पर चित्रित चित्रों को ध्यानपूर्वक देखने लगी ।

क्षण भर के लिए गहरा मौन छाया रहा ।

यकायक पार्वती ने कहा, "फिर तुम एक प्रतिज्ञा करो कि यहाँ हररोज आया करोगी ।"

"हररोज ?"

'क्यों ?"

"बात···?"

"बातचीत मैं खूब समझती हूँ । बस, तुम्हें यहाँ आना है । देखो, ऐसा करने से तुम्हारा भी मन बहल जाएगा और तुम मुझे अपने छोटे-मोटे धंधों में सहायता दे दिया करोगी । फिर तू तो जानती है ।" इतना कहकर पार्वती चुप हो गई ।

छन्दा ने उसकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा ।

उसके नयनों के प्रश्न को समझती हुई पार्वती बोली, "अब ज्योतिर्मय का विवाह होगा, उसकी भी तैयारियाँ करनी हैं ।"

छन्दा आने की प्रतिज्ञा करके उठ खड़ी हुई ।

४



अमोलक बाबू की कलकत्ता में अपनी कोठी थी। विशाल पाषाणों की छाती को विदीर्ण करके वह कलात्मक सर्जना निपुण कलाकारों की प्रतीक जान पड़ती थी। कोठी के दो विशाल द्वार थे। उन दो विशाल द्वारों के बाद कोठी का तीसरा-द्वार था जिसके आगे संगमरमर के दो छोटे हाथी बने हुए थे। इन हाथियों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ताज महल की प्राचीरों पर जिस प्रकार विभिन्न रंग के पत्थरों की नक्काशी की गई है ठीक उसी प्रकार उन हाथियों के विभिन्न अंगों की सर्जना की गई थी। हाथियों के बाद दरवाजों के प्राचीरों को खोखला करके द्वार के दोनों ओर दो पत्थर के दरबान निर्मित थे।

भीतर घुसते ही शीशे का एक अद्भुत झाड़फानूस लटक रहा था।

आँगन भी संगमरमर का बना था। आँगन की दीवार लालरंग के पत्थर की भाँति थी।

अभी दोपहर थी।

कड़कड़ाती धूप, इंसान, पसीना और पसीने की भाँति अप्रिय जीवन।

कोठी के ऊपरी हिस्से में एक सुसज्जित कमरा था। उस कमरे में जमींदार साहब अर्ध-शायित से लेटे हुए थे। उनके मुँह में हुक्के की नली थी। उनकी आकृति अत्यन्त गम्भीर जान पड़ती थी। पास में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की

गीतांजली पड़ी थी। कभी-कभी वे गीतांजली को उठाकर एक आधा गीत तरन्नुम से पढ़ने का प्रयास करते थे।

अप्रत्याशित उनके पुराने नौकर पदारथ ने प्रवेश किया।

पदारथ बिहार का रहने वाला था। उसकी आयु लगभग ४०-४५ की थी। रंग अफ्रीका के निवासियों की तरह काला था और आकृति आकर्षण-हीन थी।

जमींदार साहब को नमस्कार करके वह बोला, "सरकार, वह आई है।"

"हैं, कौन ?" अमोलक बाबू ऐसे चौंके जैसे वे स्वप्न से जगे हों। हुक्के की नली भी उनके हाथ से छूट गई।

हुक्के को संभालता हुआ पदारथ कहने लगा, "सरकार, वही लड़की जिसे हमारे छोटे सरकार हर घड़ी साथ रखते हैं।"

इतना कहने के साथ पदारथ की आँखें चमक आईं। चेहरे पर अहम् झलक उठा। उसे लगा कि आज उसकी स्वामी-भक्ति के प्रदर्शन का सुअवसर आया है।

"जाओ, उसे ऊपर भेज दो। देखो, उसे यह मत कहना कि हम ऊपर हैं।" इतना कह कर जमींदार साहब पुनः हुक्का पीने लगे।

आज नमिता ने और दिनों की अपेक्षा अधिक शृंगार किया था। पीले रंग की पोशाक में उसका सौन्दर्य किन्नरियों के सदृश मुखरित हो गया था। यौवन की सौरभ में महकता हुआ उसका मन कभी-कभी इतना मुग्ध हो जाता था कि क्षण भर के लिए वह अपने अन्तर की मादक उर्मियों में अपना ही प्रतिबिंब देख लेती थी। तब वह लोक-लज्जा की परिधि का उल्लंघन करके पल भर के लिए रास्ते में ही ठिठक जाती थी और फिर संभल कर चल पड़ती थी।

नमिता आँगन में खड़ी पदारथ को पुकार रही थी। उसके स्वर में वैसी

ही भावना थी जैसी भावना नवागन्तुक दुल्हिन के स्वर में होती है। कोई प्रत्युत्तर न पाकर वह आक्रोश भरे स्वर में बोली, "पदारथ ! ओ पदारथ।"

उसका स्वर संगीत की तरह था लेकिन अभी टूटी वीणा के तार की तरह झनझना कर रह गया था।

पदारथ भागा हुआ आया। हाथ जोड़कर बिनती भरे स्वर में बोला, "क्या है बीबी जी ?"

"ज्योतिर्मय बाबू हैं ?"

"जी·····।"

"कहाँ ?"

"वे,·· वे ऊपर हैं।"

"ऊपर।"

"जी।"

"क्यों ?"

"उनकी तबीयत ठीक नहीं है।"

"तबीयत ठीक नहीं ?" उसने विस्मय से पूछा।" मैं दो दिन 'वर्द्धमान' चली गई कि पीछे उनकी तबीयत ही खराब हो गई।"

"जी, ऐसी बात तो नहीं है जरा सिर में दर्द है।"

"सिर में दर्द ?" वह प्रीत भरे गुस्से में बोली, "अत्यन्त लापरवाह है।" कहकर वह दो-तीन सीढ़ियाँ चढ़ी, फिर मुड़ कर बोली, "चाय बना ला।"

"जी।"

नमिता गहरी आत्मीयता के भावों को अपनी आकृति पर समेटती हुई उस कमरे में पहुँची जिस कमरे में जमींदार साहब बैठे हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे।

नमिता उन्हें देखते ही सन्न रह गई। उसके तन-बदन में जड़ता आ गई। न चाहते हुए भी उसके मुँह से हठात् निकल पड़ा "आप ?" और उसकी दृष्टि दीवार पर लगे उस तैल-चित्र की ओर उठ गई जिसके बारे में प्रायः ज्योतिर्मय कहा करता था कि नमिता यही मेरे बाबा हैं।

नमिता ने सावधान होकर जमींदार साहब के पाँव छूए।

जमींदार साहब ने अनिच्छा-पूर्वक उसे आशीर्वाद दिया। "जीती रहो बेटी, उठो, बैठ जाओ।"

नमिता गर्दन झुकाए नीचे ही बैठी रही। वह संकोच से मरी जा रही थी। फिर एकाएक उसे ध्यान आया कि आखिर पदारथ ने झूठ क्यों बोला कि ज्योतिर्मय ऊपर है।

"तुम्हारा नाम नमिता है ?" अमोलक बाबू ने गम्भीर मौन तोड़ा।

"हाँ।" नमिता ने गर्दन झुकाए ही हौले से उत्तर दिया।

"तुम ज्योतिर्मय के साथ कालेज में पढ़ती हो ?"

"जी !"

"एक ही क्लास में ?"

"जी।"

"तुम उससे प्रेम भी करती हो ?"

इस बार नमिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने सहमी दृष्टि से जमींदार साहब की ओर देखा। आँखों की भाषा की स्वीकृति जमींदार साहब समझ गए।

"मैं समझ गया कि तुम उसे वास्तव में प्रेम करती हो। कदाचित तुम में उस पर सर्वस्व विसर्जन की भावना भी होगी। तुम उसे एक पल के लिए भी अपनी आँखों से दूर रखना नहीं चाहोगी क्योंकि प्राणियों के आन्तरिक बन्धन प्राणियों को अत्यन्त अधीर कर देते हैं।"

जमींदार साहब ने थोड़ी देर के लिए पुनः गंभीर मौन धारण कर लिया। नमिता आगे की बात सुनने के लिए बेचैन हो उठी।

लम्बा साँस लेकर वे बोले, " लेकिन तुम यह नहीं जानतीं कि ज्योतिर्मय का हृदय कैसा है, उसके विचार कैसे हैं ? वह किस खानदान का है ?"

नमिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन जमींदार साहब को मौन देखकर वह बोली, "जब नारी भावना में बहती है तब वह पुरुष के अवगुणों को नहीं देखती। उसकी दृष्टि और चेतना केवल उस पुरुष के गुणों पर केन्द्रीभूत हो जाती है।"

"और वह भावात्मक दृष्टि जीवन में छल के अतिरिक्त कुछ भी उत्पन्न नहीं कर सकती।" जमींदार साहब का स्वर पूर्ववत् था।

नमिता मौन हो गई।

"बेटी, मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता यही है कि वह विचारों के धरातल को छोड़कर भावना के आकाश में उड़ता है और भावना प्राणी के जीवन के संघर्ष तथा विषमता का साथ नहीं देती। वह छाया की भाँति प्राणी का साथ छोड़ देती है। तब प्राणी विगत के क्षणिक परमसुख को स्मरण करके कल्पनातीत दुख की सर्जना अपने लिए करता है। मेरी तुम्हें राय है कि भावना के पंख शीर्ण होते हैं। वे तुम्हें बीच में ही धोखा दे देंगे अतः अभी ही सम्भल जाओ।"

"मैं आपका तात्पर्य नहीं समझी ?"

"तात्पर्य साफ है। तुम ज्योतिर्मय को भूल जाओ। प्रेम का रूप क्षणिक है।"

नमिता आवेश में भर उठी। व्यग्रता से बोली, "यह सम्भव नहीं है।"

"संभव तो है ही, और सम्भव के साथ सहज भी है.........बेटी !" वे बड़प्पन से बोले, "बन्धन अटूट तभी होते हैं जब दोनों ओर समता हो

अन्यथा वे बड़े कटु होकर टूटते हैं। मैं समझता हूँ कि तुम अभी बन्धन से मुक्त हो जाओगी तो सुख पाओगी अन्यथा यह साधारण जीवन मर्मान्तक पीड़ा देगा।"

नमिता को जमींदार साहब का यह उपदेश बिल्कुल ही रुचिकर नहीं लगा। फिर भी वह संयत स्वर में बोली, "न मालूम क्यों अमीर लोग प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन पूँजी से करते हैं। मनुष्य, उसके विचार, उसकी भावना सभी के परे वे पूँजी को ही महत्व देते हैं जैसे मानवीय बन्धन बन्धन नहीं मानवीय नाते-रिश्ते, नाते-रिश्ते नहीं। जमींदार साहब, प्राणी के जीवन का सर्वोपरी सत्य पूँजी नहीं प्रेम है।"

"है नहीं, था।" जमींदार साहब तिक्त-स्वर में बोले, "वर्तमान युग का सत्य और ईश्वर पूँजी ही है। तभी तो मैं तुम्हें कहता हूँ कि पूँजी की शक्ति को समझ कर कदम उठाओ। जो अप्राप्य है, उसकी ओर मत भागो।...फिर तुम ज्योतिर्मय के अन्तस्थल की कठोरता को भी नहीं समझतीं यह शाब्दिक मृदुलता में पैशाचिक हृदय लिए हुए है।" अब जमींदार साहब का स्वर अत्यन्त कोमल हो गया था, "इसलिए मेरी प्रार्थना है कि तुम इन प्रेम के बन्धनों को तोड़ दो, अपनी अच्छी-सी गृहस्थी बसाओ।"

पदारथ चाय ले आया था। उसके आगमन पर दोनों ने गहरा मौन धारण कर लिया।

नमिता चाय बनाने लगी।

चाय का प्याला जमींदार साहब के हाथ में थमाती हुई बोली, "नारी नदी के समान है जमींदार साहब, वह बढ़ कर पीछे कैसे मुड़ सकती है। उसका समर्पण तो सागर है।"

जमींदार साहब एकाएक झल्ला पड़े, "किन मूर्खों ने इन उपमाओं की सर्जना कर डाली? कोई तुक नहीं। नारी फूल है, नारी नदी है, नारी भावना है। अरी बिटिया, नारी इन सभी उपमाओं से परे एक प्राणी है और

एक प्राणी को शाब्दिक ऐन्द्रिकता से ऊपर उठकर जीवन और ऊपरी वास्त-विकता के प्रति सजग रहना चाहिए। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है।"

नमिता ने अर्थपूर्ण दृष्टि से जमींदार साहब की ओर देखा। उसका चेहरा एकदम उदास था।

जमींदार साहब बड़ी मृदुता से बोले, "हाँ, हाँ! अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। क्षणिक मिलन के बाद जो विछोह होता है उसकी पीड़ा भी क्षणिक ही होती है, समझी ?"

नमिता उस सत्य का उद्घाटन करना नहीं चाहती थी जो सत्य नारी जीवन को नर का गुलाम बना देता है।

पदारथ ने बीच में ही आकर कहा, "सरकार, वकील साहब आए हैं।"

"उन्हें नीचे की बैठक में बिठाओ, मैं अभी चाय पीकर आया। सुनो, उन्हें भी चाय बना कर पिला देना।"

पदारथ चला गया।

नमिता पर अपनी दृष्टि जमा कर जमींदार साहब बोले, "मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से बता देना चाहता हूँ कि यह प्रेम शाश्वत नहीं हो सकता, इसलिए तुम्हें विवेक से काम लेना चाहिए। अच्छा, मैं अभी वकील साहब से मिल कर आया।"

जमींदार साहब मुँह में पान डाल कर नीचे उतर गए।

नमिता ने एक पन्ना फाड़ कर उसमें कुछ लिखा और फिर पदारथ को यह कह कर चल पड़ी कि छोटे बाबू जब आएँ तो उन्हें 'रोज़' रेस्तराँ में भेज देना।

वकील मुखर्जी ने जमींदार साहब को देखते ही प्रणाम किया। उसके मुख पर मुस्कान थिरक रही थी।

"कहिए मुखर्जी मोशाय, क्या हाल है ?"

"सब आपकी दया है।"

"ओ रे पदारथ, वकील साहब के लिए तड़ातड़ी से चाय बना ला।" उच्च स्वर में जमींदार साहब ने कहा कि पदारथ चाय बना कर ले आया।

"देखा वकील साहब, यह है स्वामीभक्त नौकर, पच्चीस साल हो गए हैं बेचारे को काम करते पर मजाल क्या है कि तनिक भी बेईमानी की हो।"

मुखर्जी ने मुस्काने का प्रयास करते हुए कहा, "हाँ बड़े बाबू, पुराने आदमियों का यही गुण-विशेष है।"

पदारथ मन ही मन फूल कर चला गया।

उसके जाते ही वकील साहब ने गंभीर होकर पूछा, "आज मुझे आपने क्यों याद किया है?"

"देखो मुखर्जी, मुझे अपनी एक वसीयत लिखानी है।"

मुखर्जी आश्चर्यचकित रह गया। उसके नेत्र विस्फारित हो गए। चाह कर भी वह दो क्षण बोल नहीं सका।

"तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य हो रहा होगा लेकिन मैं तुम्हें सही कह रहा हूँ कृपा और करुणा का उल्लंघन करने वाला मनुष्य मेरे हृदय पर विजय नहीं पा सकता।" वाक्य समाप्त होते-होते जमींदार साहब की पलकें झुक गई थीं।

"मैं आपका तात्पर्य नहीं समझा?" मुखर्जी की छोटी-छोटी आँखें जमींदार साहब के चेहरे पर जम गईं।

"तात्पर्य यह है कि मेरे जीवन का कोई भरोसा नहीं। कब मैं अपने नेत्र मूँद लूँ और मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरे पश्चात् कोई मेरी सम्पत्ति का दुरुपयोग करे। मेरी प्रजा के रुधिर से प्राप्त हुई सम्पत्ति को कोई आवारा होकर उड़ाए। तुम नहीं जानते मुखर्जी, ज्योतिर्मय धन के उन्माद में कितना दंभी और आतंकी हो गया है। उसने अपने आतंक से मुझे भी पीड़ित कर रखा

है। जब वह दानवी-मुद्रा में मेरे सम्मुख होता है तब मैं भी निःसहाय-सा हो जाता हूँ। अतः मैं उसे अपनी सम्पत्ति से वंचित करना चाहता हूँ।"

"यह आप क्या कह रहे हैं सरकार ? आपका इकलौता बेटा है, ज्योतिर्मय। उसको यदि सम्पत्ति से वंचित कर दिया जाएगा तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।"

"यह सम्पत्ति मैंने अपने प्रेम और गुण से प्राप्त की है। न मैं श्रम करके शिक्षित बनता और न मेरा विवाह पार्वती से होता। और अब, जब मैं उसके श्रम और शिक्षा से प्रसन्न नहीं होता तब मैं उसे अपनी सम्पत्ति का स्वामी क्यों बनाऊँ ?"

मुखर्जी कुछ देर तक चुप रहे। उनके मुख पर गंभीरता की रेखाएँ उभर आई थीं।

वातावरण की शून्यता को भंग करके जमींदार साहब कहने लगे, "आप चुप क्यों हो गए ?"

"प्रश्न एक है कि इस जायदाद में केवल आपका अधिकार भी तो नहीं है। बहू माँ ··।"

"अरे मुखर्जी, तुम उसकी चिंता न करो। मैंने उससे भी स्वीकृति ले ली है। उसे भी चरित्रहीन और कठोर सन्तान पसंद नहीं। पहले तो वह भी बड़ी रुष्ट हुई। कहने लगी कि ज्योतिर्मय का जीवन खराब हो जाएगा। मेरा हठ देख कर उसने विचलित स्वर में कहा, आप उसके पिता हैं इसलिए आप माँ के अन्तर की व्यथा नहीं जान सकते।"

"मैंने उससे पूछा तुमने सर्वप्रथम आँचल की पुलकन का आनंद लिया या ममत्व के पावन क्षणों का ?"

"आँचल की पुलकन का आनंद।"

"तुम सर्वप्रथम माँ बनी या पत्नी ?"

"पत्नी।"

'अब तुम यह बताओ कि तुम मेरी आज्ञा मानोगी या अपने उस पुत्र की जो सम्पदा के कारण साधारण मनुष्यता के परे जीवन को दुष्कर्मों की ओर ले जा रहा है। जो हमारी परम्पराओं का परित्याग करके उच्छृंखलता के वशीभूत हो रहा है।····· पार्वती ! दरिद्रता की पीड़ा का मैंने अनुभव किया है, इसलिए मैं गरीबों के दर्द को पहचानता हूँ। तुम फूलों में जन्मीं, फूलों में पलीं और फूलों में अब तक रही हो, पाषाणों की निर्ममता का अनुभव तुम्हें कहाँ है। मैं नहीं चाहता कि अयोग्य सन्तान के कारण लोग हमारे मुँह पर थूकें। तुम्हारे पूर्वजों की अतुल सम्पत्ति को मेरी नादान सन्तान वैभव-विलास में उड़ाए और बाद में लोग यह कहें कि ज्योति उसका बेटा था जिसने सम्पत्ति का कभी मुँह भी नहीं देखा अथवा ऐसा तो होना ही था, गरीब के पास धन आजाए फिर वह मनुष्य को मनुष्य समझने लगे, यह असंभव है।···· जानते हो मुखर्जी, पार्वती मेरी बात का मर्म जान गई और उसने 'हाँ' भर ली।"

"मैं कहता हूँ कि अभी वह बच्चा है, नासमझ है, अभी उसे कुछ अवसर और देने चाहिएं। ऐसा न हो कि बाद में पछताना पड़े।" वकील चिन्तित स्वर में बोला।

"विवेक से कार्य करने के बाद पछताना शेष नहीं रहता। पश्चाताप भूल का मूल है, अज्ञान की उत्पत्ति है। वकील साहब, आप मेरा कहना मानिए और वसीयत लिख ही डालिए।"

"वसीयत में क्या लिखना होगा ?"

"मैं अभी आपको कुछ कागज लाकर देता हूँ उसी के अनुसार आपको वसीयत लिखनी है।" जमींदार साहब इतना कहकर बैठकखाने से बाहर निकले और फिर कुछ सोचकर बोले, "वसीयत तुम्हें कल दोपहर तक निश्चित रूप से तैयार करके मुझे दे देनी है ताकि मैं तुम्हें दस्तखत करके लौटा दूँ।"

"जी।" वकील ने छोटा-सा उत्तर दिया।

जमींदार साहब ने उससे सम्बन्धित सभी कागज लाकर मुखर्जी को दे दिए।

मुखर्जी के चले जाने के पश्चात् जमींदार साहब वहीं बैठ गए जहाँ थोड़ी देर पूर्व वे नमिता के साथ वार्तालाप कर रहे थे। वे ऐसे बैठे जैसे टूट से गए हैं। एक दीर्घ निश्वाँस लेकर वे नेत्रोन्मीलन कर अर्धशायित हो गए।

मन में विचारों का संघर्ष था। उस संघर्ष के कारण उनके मुख पर आकुलता की उर्मियाँ दौड़ रही थीं।

"यह मैंने अच्छा नहीं किया।" वे अपने आप से बोल उठे, "अपनी सन्तान को अपने अधिकार से वंचित करके मैं न्याय नहीं कर रहा हूँ।........ क्यों नहीं कर रहा हूँ? इसलिए कि पार्वती के कथनानुसार वह अभी तक बच्चा है। छि: पचीस वर्ष का युवक और बच्चा? फिर यह सम्पत्ति न तो उसके बाबा ने अर्जित की है और न वह इस जन्म में इतना धनवान बन सकता था यह तो दैवी-संयोग है। मेरी प्रखर-बुद्धि के कारण पार्वती से मेरा अनुराग हो गया। जाति-भेद न होने के कारण विवाह होने में भी कोई अड़चन नहीं हुई लेकिन ज्योतिर्मय ......?"

"वह सम्पत्ति के कारण उन्मत्त हो गया है। वह चाहता है कि जमींदार 'जमींदार' की भाँति रहें। वह अपनी प्रजा को अपनी सन्तान न समझें। काश! मैं इसी गाँव का वही दरिद्र किसान होता और ज्योतिर्मय घुटने-घुटने तक के जल में खड़े होकर धरती की छाती को विदीर्ण करके अन्न पैदा करता, तब उसे मालूम होता कि जमींदार और उसके किसान की पीड़ा और श्रम में कितना अन्तर होता है?"

विचारों के आन्दोलन में निमग्न जमींदार साहब पड़े रहे।

भगवान भास्कर प्राची के प्रांगण में अपना अन्तिम दर्शन दे रहे थे। कोलाहल एक बार संध्या की धूमिल ज्योत्सना के साथ विशेष मुखरित हो गया था।

पदारथ ने संध्या की चाय जमींदार साहब के सम्मुख रखी । जमींदार चौंक कर कह उठे, "ओह ! संध्या हो गई ? विचारों के आवागमन में समय का ध्यान ही नहीं रहा ।"

पदारथ ने कमरे में प्रकाश कर दिया था ।

प्रकाश के साथ जमींदार साहब की दृष्टि नमिता के पत्र पर पड़ी । वे पदारथ से बोले, "सुन, वह कागज़ देना ।"

पदारथ ने उस पत्र को जमींदार साहब के हाथ में दे दिया । वे चाय का घूंट पीकर उसे पढ़ने लगे—

बाबा !

आपने मुझे कहा कि नारी भावना नहीं होती, नारी फूल नहीं होती लेकिन नारी इसके विपरीत सर्वस्व होती है, इसे मैं अच्छी तरह जानती हूँ। भारतीय इतिहास की नारियों ने कभी भी भावना को मुख्यतः नहीं पूजा । लेकिन यह भी निर्विवाद रूप से सत्य है कि उनमें भावना के साथ उत्सर्ग भी प्रबलतम रूप से रहा है ।

युग के साथ विचारों ने नया मोड़ लिया । नारी की श्रद्धा और विसर्जन की भावना ने अपना मूल्यांकन आधुनिक मानदंडों से किया । उसे प्रतीत हुआ कि उसमें श्रद्धा और भक्ति इतनी अधिक मात्रा में है कि पुरुष उसे मूर्ख समझता है, वह उसका सुन्दर और श्रेष्ठ शाब्दिक शृंगार करके उसकी दुर्बलता को कुरेदता रहा है । वह संभली और उसमें प्रतिशोध की भावना ने जन्म लिया, उसमें अपने सर्व प्रिय के प्रति सबसे अधिक घृणा का प्रादुर्भाव हुआ । आपने अपने जीवन में देखा होगा कि जो व्यक्ति जिसे बहुत अधिक चाहता है यदि वह उससे छल कर लेता है तो उस व्यक्ति के प्रति उसमें उतनी ही तीव्र घृणा उत्पन्न होती है जितना वह उसे प्यार करता था । आज नारियों में इस भावना ने जन्म ले लिया है ।

फिर भी नारी ही क्यों, यह तो प्राणी मात्र की दुर्बलता है कि वह अपनत्व चाहता है । अपनत्व अनुकूल परिस्थिति पाकर गहरा होता है और प्रेम की संज्ञा से पुकारा जाता है ।

सुप्रसिद्ध दार्शनिक खलील जिब्रान ने एक जगह लिखा है—सच्चा सौन्दर्य तो स्त्री और पुरुष के बीच का सम्पूर्ण समझौता है। वह एक क्षण में पूर्णता तक जा पहुँचता है और संसार की सब प्रवृत्तियों से श्रेष्ठ एक प्रवृत्ति का निर्माण करता है। आत्मा की इस प्रवृत्ति को ही हम प्रेम कहते हैं।

मैं और ज्योतिर्मय बाबू उसी प्रवृत्ति का निर्माण कर चुके हैं। उस श्रेष्ठ प्रवृति को ही आत्मा प्रेम कहती है।……बड़े बाबू ! आप समझदार हैं, दयावान हैं, इस एक क्षण की पूर्णता के अन्तर में निहित गुह्य अर्थ को आप समझ गए होंगे। नारी वहाँ से कैसे लौट सकती है ? फिर ज्योतिर्मय बाबू दुश्चरित्र नहीं हैं। उनमें संसार की बुराइयाँ नहीं हैं वे मुझसे सच्चा प्रेम करते हैं। इससे अधिक मैं आपको क्या कहूँ ? प्रणाम !

नमिता

जमींदार साहब उद्विग्न से टहल रहे थे। उनके मस्तिक में 'एक क्षण की पूर्णता' का गुह्य अर्थ गूँज रहा था। प्रेम का वास्ता देकर किसी अविवाहित लड़की से छल करना। हे राम ! मर्यादा, शील और सौजन्य सबको वह छोड़ चुका है।

लगभग घंटे भर जमींदार साहब उद्विग्नता से टहलते रहे। तब उन्होंने अपने नौकर को पुकारा, "पदारथ।"

पदारथ भागा हुआ आया। उसके हाथ मसालों से सने थे जैसे वह सब्जी में मसाले डालता हुआ आया है।

"क्या है सरकार ?"

"तुम नमिता को जानते हो ?"

"हाँ।"

"वह यहाँ कब से आती है ?"

"लगभग दो वर्ष से।"

"तुमने हमें इसकी सूचना क्यों नहीं दी ?"

"बात यह है कि स्वामी······"

"क्या बात है ?" जमींदार साहब कड़क कर बोले । उनकी भौंहें तन गईं थीं ।

"बात यह है कि छोटे बाबू ने मना कर दिया था ।"

"तुम छोटे बाबू के नौकर हो या बड़े बाबू के ? तुमने बहुत बड़ा अपराध किया है, पदारथ ।"

"सरकार ?" वह हाथ जोड़कर सिर झुका कर खड़ा हो गया । उसकी नजरें संकोच से झुक गईं ।

"हाँ ।" जमींदार साहब ने गंभीरता से दृष्टि बदल कर पूछा, "वह कभी रात को भी यहाँ रही है ?"

"हाँ, कई बार ।"

"उसके खानदान से तुम परिचित हो ?"

"जी ।"

"उसके घर में कौन-कौन हैं ?"

"उसकी वेवा माँ और एक भाई । कलकत्ता में ही इनकी छोटी सी कोठी है उसी के किराये से उनके घर का खर्च चलता है ।"

"उसकी माँ को कभी तुमने देखा है ?"

"जी सरकार, कई बार ।"

"कैसे ?" चौंक कर जमींदार साहब बोले ।

"ऐसे कि मुझे नमिता बीबी जी के घर यह कहने जाना पड़ता था कि वह अपनी सखी के यहाँ रह गई हैं ।"

"हूँ ।" जमींदार साहब एकदम गम्भीर हो गये ।

"अच्छा अब तू जा । हाँ, आज ज्योतिर्मय के लिए खाना पकाकर रखना है ।"

"जी नहीं, वे बाहर ही खाकर आयेंगे।"

"अच्छा ?"

पदारथ चला गया।

जमींदार साहब अपने आप बड़-बड़ा उठे, "मैं अपना निर्णय नहीं बदल सकता।"

रात्रि का अंधकार विराट सृष्टि पर आच्छादित हो गया था। चन्द्र था नहीं, इसलिए तारों का मद्धिम प्रकाश झिलमिला रहा था।

जमींदार साहब अब भी रात्रि के नीरव क्षणों को अपनी दीर्घ उश्वांसों से भंग कर रहे थे।

एकाएक कार रुकने की ध्वनि सुनकर उन्होंने बाहर की ओर झाँका।

ज्योतिर्मय गाड़ी से उतर रहा था।

उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे, इसलिए उसको द्वार तक पहुँचाने के लिए एक महिला ने अपने कन्धों का सहारा दिया था। वह महिला नमिता नहीं थी, यह उन्होंने अपने द्वार की रोशनी में पहचान लिया। तब···?

जमींदार साहब का रोम-रोम व्यथा से तिलमिला उठा। रोष के मारे उनके नथुने फुरक उठे। उनके मन में आया कि इस चरित्रहीन को द्वार से धक्का देकर लौटा दूँ पर वे ऐसा नहीं कर सके।

ज्योतिर्मय धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। उसने अपनी हकलाती आवाज में पदारथ को पुकारा।

पदारथ हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

"बाबा सो गए ?"

"हाँ।"

"यह अच्छा ही हुआ। देख, उन्हें यह मत कहना कि मैं शराब पीकर आया था।"

पदारथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

ज्योतिर्मय अपने कमरे में जाकर सो गया।

५



दूसरे दिन वकील नहीं आया।

जमींदार साहब ने पदारथ द्वारा पुछवाया भी था कि वह क्यों नहीं आया? पदारथ ने लौटकर बताया कि वकील साहब कल जाते ही अस्वस्थ हो गए थे, इसलिए वे तनिक भी काम नहीं कर सके।

ज्योतिर्मय एक-दो बार जमींदार साहब के पास आया था, इधर-उधर की चर्चा करके बात का सिलसिला भी बाँधना चाहा पर जमींदार साहब ने उसकी नितान्त अवहेलना कर दी।

भोजन के समय जमींदार साहब ने पदारथ से अत्यन्त सरलता से पूछ लिया, "क्यों पदारथ कल रात ज्योतिर्मय कब लौटा था?"

"लगभग बारह-एक बजे।"

"तुमने पूछा नहीं कि इतनी रात कहाँ रहे थे?"

"मैं कैसे पूछ सकता हूँ, सरकार? मैं आपका नौकर हूँ, भला मैं ऐसा साहस कैसे कर सकता हूँ।" उसके स्वर में सम्पूर्ण रूप से अनुनय भरा था।

"तुम यह नहीं पूछ सकते पर उसके दुर्गुणों को छुपा सकते हो, क्यों?" जमींदार साहब पैनी निगाह से पदारथ को देखकर जल पीने लगे।

पदारथ का बुरा हाल हो गया। वह सिटपिटा कर मद्धिम स्वर में बोला, "बात···बात··· ।"

"देखो पदारथ, मैंने कल ही तुम्हें कहा था कि तुम मेरे नौकर हो या मेरे बेटे के ? यदि तुमने उसके किसी भी दुष्कर्म को छिपाया तो जानते हो उसका परिणाम क्या निकलेगा ?" जमींदार साहब के स्वर में ताड़ना थी।

"बात यह है कि उन्होंने मुझे मना कर दिया था कि मैं आपको यह नहीं बताऊँ कि वे शराब पिए हुए थे।" तब उसका स्वर अत्यन्त पिघल गया। "सरकार, आप नहीं समझते कि दो स्वामियों के नौकर की कैसी नाज़ुक स्थिति होती है ? वह किसी को भी अप्रसन्न नहीं कर सकता है क्योंकि जो भी चाहे उसे निकाल सकता है।"

पदारथ की गर्दन झुकी हुई थी। पलकों के कोयों पर तरलता चमक उठी थी।

"तुम ठीक कहते हो पर तुम्हें मेरा पूरा भरोसा करना चाहिए।.......एक बात बताओगे ?"

" .... ।" पदारथ सिर झुका कर खड़ा हो गया।"

"तुम्हारे छोटे बाबू कितने दिन से शराब पीते हैं ?"

"बहुत दिनों से पर वे घर में कभी नहीं पीते।"

फिर जमींदार साहब अपने आन्तरिक-संघर्ष में डूब गए। पदारथ अपने काम में लग गया।

इस प्रकार वह दिन जमींदार साहब ने संध्या की सैर के बाद शय्या पर सोकर ही बिताया।

रात को ज्योतिर्मय कब आया और वापस गया, इसकी भी सूचना पदारथ ने ही आकर उन्हें दी।

दूसरे दिन सवेरे की चाय पर वकील मुखर्जी आगया।

जमींदार साहब ने उसे आदर-पूर्वक बिठलाकर पूछा, "क्यों मुखर्जी, हमारा काम समाप्त हो गया न ?"

"हाँ, हो गया।"

"क्यों, ठीक रहेगा न ?"

"ठीक !" चौंक पड़ा मुखर्जी, फिर संभल कर रुकते-रुकते बोला, "आप स्वयं समझदार हैं, अपना भला-बुरा मुझसे अच्छी तरह सोच-समझ सकते हैं।"

"तुम ठीक कहते हो, लेकिन वह बाप वास्तव में अपने पुत्र का सबसे बड़ा दुश्मन है जो उसके जीवन के सर्वनाश में सहायक सिद्ध हो।"

"लेकिन···?"

"आप मेरे निर्णय को नहीं बदल सकते। मैंने सारी स्थिति का अत्यन्त विश्लेषण करके यह निर्णय किया है।······मुखर्जी, मेरी मृत्यु के एक वर्ष उपरान्त यह वसीयत खोली जानी चाहिए, बस।"

"जैसी आपकी इच्छा। वकील साहब उठकर जाने लगे तो न मालूम क्या सोचकर जमींदार साहब व्यग्र हो उठे। विकलित स्वर में बोले, "देखो मुखर्जी, तुम मेरे अत्यन्त विश्वास-पात्र वकील हो। तुमने मेरे साथ तनिक भी छल नहीं किया और अब तुम्हारी अग्नि-परिक्षा का समय आ गया है। यदि इसमें तुमने अपना ईमान बेच दिया तो समझ लो मेरी आत्मा मृत्यु के उपरान्त भी शांति नहीं पाएगी।"

"वसीयत आखिर वसीयत होती है।" मुखर्जी धीरे से बोला उसकी आँखों में हल्का अहम् था।

"लेकिन आप यह भी क्यों भूल जाते हैं कि हमारा विज्ञान और हमारी अन्य कलाएँ इतनी प्रगति कर चुकी है कि एक क्या, दस ऐसे ही नए वसीयत-नामें तैयार कर सकती हैं।"

मुखर्जी ने कोई प्रत्युत्तर न देकर मौन धारण कर लिया।

जमींदार साहब अपने आप से बोले, "फिर चलो, इसके सम्बन्धित वैधानिक कार्य समाप्त कर लिए जाएँ।"

दोनों जने अपने आप में खोए बाहर निकले।

६



ज्योतिर्मय जमींदार साहब की प्रतीक्षा कर रहा था उसके हाथ में अंग्रेजी दैनिक था और सामने मेज पर चाय और नाश्ता !

पिताजी को देखते ही वह बोला, "कहाँ चले गए थे बाबा, मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

जमींदार साहब कुर्सी पर बैठते हुए बोले, "मैं ऐसी जगह गया था, जहाँ मेरे जीवन की परीक्षा थी। बेटा, कुछ व्यक्ति अपने सत्कर्मों से अपने भाग्य-तारे को दीप्त करते हैं और कुछ व्यक्ति अपने दुष्कर्मों से अपने भाग्य-तारे को बुझा देते हैं। बस, यही चक्र है विधि-विधान का।"

"और यह वकील साहब क्यों आए थे ?"

"अरे वही दीप्तिराय की जमीन का मामला है न, उसी की सारी छान-बीन करने।" अमोलक बाबू ने बात को बदल दिया।

एकाएक जमींदार साहब कठोर हो गए। अपनी दृष्टि को ऊपर की ओर उठाते हुए बोले, "तुम शराब कब से पीने लगे ?"

"मैं, मैं शराब नहीं पीता।"

"और यह युवतियों का चक्कर क्या है ?"

"युवतियाँ, कैसी युवतियाँ ?"

"यह नमिता कौन है ?"

"नमिता ?" वह एकदम चौंक गया।

"देखो बेटा, पाप वाणी का साथ नहीं दे सकता। दुष्कार्य जब प्रगट होते हैं तब व्यक्ति के तन में कम्पन्न उत्पन्न हो जाता है। इसलिए साफ-साफ कहो कि यह नमिता कौन है ?"

"यह मेरी फ्रेन्ड........"

"फ्रेन्ड .... ?" बीच में ही जमींदार साहब कड़क कर बोले।

"फ्रेन्ड से मेरा तात्पर्य यह है कि वह मेरे साथ पढ़ती है। हम दोनों में गहरी सहानुभूति है।" ज्योतिर्मय का स्वर काँप रहा था।

"वह तुम्हारे साथ पढ़ती है, वह तुम्हारे साथ खाती है और वह तुम्हारे साथ ही रात्रि-बेला में यहाँ रहती भी है। और वह नादान युवती अपने घर मिथ्या-भाषण कहलाती है। क्यों यह सब सच है न ?"

ज्योतिर्मय की आँखें संकोच से झुक गईं।

जमींदार साहब बोलते रहे, "मनुष्य को मनुष्यता की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। नमिता ने तुम्हें सर्वस्व दान किया है इसलिए मेरी राय है कि तुम उसे अपनाकर जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को गंभीर बनाओ।"

ज्योतिर्मय के होठों पर इस बार फीकी मुस्कान थिरक उठी। उसने एक बार जमींदार साहब को देखा और बाद में कहा, "वह एक अत्यन्त चतुर युवती है। उसकी ऐन्द्रिकता बड़ी रहस्यपूर्ण होती है। मैं आपको सच कहता हूँ कि वह मेरे पास रात्रि को रहती जरूर थी पर न तो उसने मर्यादा का उल्लंघन किया और न ही मैंने इस बात का प्रयास ही किया। हम दोनों मित्र के रूप में रहते थे और रह भी रहे हैं।"

जमींदार साहब गुस्से में भर उठे। नथुनों को फुरकाते हुए बोले, "इसका मतलब यह हुआ कि नमिता झूठ बोल रही थी। वह मुझसे छल कर रही थी।"

"हाँ !" ज्योतिर्मय दृढ़ता से बोला, "दरिद्र और अभावग्रस्त प्राणी क्या नहीं कर सकता है ? बाबा ! नमिता बहुत अच्छी लड़की होने के साथ-साथ बड़ी खतरनाक और चतुर भी है। आप उसकी भोली सूरत देखकर चक्कर में आ गए, पर ······?'

"पर······?"

"पर मैं उससे विवाह नहीं करूँगा। मेरा उसका मुकाबिला क्या ?"

"हाँ, तुम्हारा और उसका मुकाबिला कैसा ? सच ही कहते हो कि तुम्हारी और उसकी समता कैसी ? तुम्हारा बाप एक साधारण किसान था, भाग्य की बात समझो कि पार्वती याने तुम्हारी माँ उसके सद्‌गुण और व्यवहार पर मोहित हो गई। अध्ययन और पठन-पाठन के प्रति तुम्हारे बाप की सदा से अभिरुचि रही थी। फिर भी विरोध-प्रतिरोध उत्पन्न हुए पर पार्वती अपने बाप की इकलौती सन्तान थी, अतः तुम्हारे बाप की विजय हो गई वर्ना आज तुम खेत की मिट्टी में खड़े उसी दुख से अभिभूत होकर जमींदार को कोसते, जिस अपार दुख से हर किसान उन्हें कोसा करता है।"

"भूत की पीड़ा से आप अपने को पीड़ित कर सकते हैं मैं सम्पन्न हूँ, मुझे कोई अभाव नहीं, फिर मैं भविष्य की सुखद कल्पना क्यों नहीं करूँ ?"

"सुखद कल्पना में मनुष्य को इतना तन्मय नहीं होना चाहिये कि वह भले-बुरे का ज्ञान भी खो बैठे।"

इस बार ज्योतिर्मय का स्वर तनिक कठोर हो गया, "बाबा ! आप अतीत की कटु स्मृतियों में उस 'सत्य' को भी विस्मृत कर रहे हैं जिस 'सत्य' से स्वामीत्व की भावना पनपती है। आपकी यह उदारता कभी न कभी मुझे निर्धन करके ही छोड़ेगी।"

"तभी तुम्हारे कौशल और बुद्धि की परीक्षा होगी।"

"फिर आप एक बार परीक्षा लीजिये न ?"

"इसी प्रयत्न में हूँ। अच्छा, मैं किसी कार्यवश बाहर जा रहा हूँ शाम को पाँच बजे के बाद लौटूंगा। हाँ, उस समय तुम्हारा यहाँ होना अत्यन्त आवश्यक है।"

"लेकिन..........।"

"लेकिन-वेकिन मैं कुछ नहीं जानता।" कह कर जमींदार साहब कपड़े बदलने चले गए।

ज्योतिर्मय कुछ देर तक किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा खड़ा रहा और अन्त में अपने कमरे की ओर चला। कमरे में घुसते-घुसते उसने सुना कि जमींदार साहब चाय के लिए पदारथ को कह रहे हैं।

७



ज्योतिर्मय शय्या पर निढ़ाल सा पड़ गया। उसे लग रहा था कि उसके पिता जी उससे बड़े असन्तुष्ट हैं और उनका कलकत्ता आना अवश्य किसी विशेष कार्य की ओर संकेत करता है। लेकिन वह चाह कर भी इस रहस्य को नहीं जान सका। मुखर्जी से भी एक बार उसने पूछा था लेकिन मुखर्जी ने उसे

वही उत्तर दिया जो उत्तर उसे उसके पिता जी द्वारा मिला था। वह उद्विग्न सा पड़ा-पड़ा बिस्तर पर करवटें बदल ही रहा था कि उसे किसी की पदचाप सुनाई पड़ी। उसने समझा कि पिता जी बाहर जा रहे होंगे।

लेकिन पदचाप धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ती गई। वह सजग होकर बैठ गया। देखा तो सन्न रह गया। पदचाप और किसी की नहीं थी नमिता की थी।

वह नमिता को देखते ही घबरा कर बोला, "तुम यहाँ? अरे बाबा नीचे बैठे हुए हैं।"

"तो क्या हुआ। क्या तुम्हारे बाबा मेरे बाबा नहीं?"

"हैं, पर तुम तो जानती हो कि वे जमींदार हैं। अमीर हैं, दंभी हैं। कहीं वे अभी ही भड़क गए तो बना-बनाया काम बिगड़ जाएगा।"

"काम नहीं बिगड़ेगा ज्योति, तुम बाबा से कह करके तो देखो। वे बड़े अच्छे और देवता-समान हैं।"

"ये सब बड़े लोग देखने में देवता की तरह ही लगते हैं पर होते हैं सब के सब देवता की पाषाण-मूर्ति की भाँति कठोर ही।" ज्योतिर्मय विकलित स्वर में कहने लगा, "कल बाबा के समक्ष मैंने तुम्हारी चर्चा चलाई थी। सच कहता हूँ, वे तुम्हारा नाम सुन कर भड़क उठे। क्रुद्ध होकर बोले, पाजी, हरामी, विवाह तुम्हारा मैं जहाँ निश्चय करूँगा, वहाँ होगा। खबरदार, इस प्रकार बेसिर-पैर की बातें भविष्य में कभी कीं तो? मैं अपमान की आग में जल-भुन कर अपने कमरे में आ गया।"

नमिता को हँसी आ गई। वह मुस्कराती हुई बोली, "तुम नाटक के अभिनेता अच्छे बन सकते हो। मैं तुम्हें सलाह दूँगी कि तुम किसी फिल्म-कम्पनी में सम्मलित क्यों नहीं हो जाते?"

"क्या तुम मेरी बातों को..........?"

बीच में ही नमिता बोली, "मैं कल बाबा से मिली थी। मेरी उनसे बहुत देर तक बातें हुईं। सच कहती हूँ—वे इतने पवित्र और देवरूप हैं कि मैंने सारा रहस्य उनके समक्ष प्रकट कर दिया केवल एक के ?"

नमिता इतना कह कर बिलकुल शांत होगई।

"वह एक क्या है ?" ज्योतिर्मय बिल्कुल शांत होगया।

"मैं कैसे बताऊँ ?"

"अरे, ऐसी कौन सी बात है ?"

"फिर सुनो, मैं माँ बनने वाली हूँ।"

"माँ!" ज्योतिर्मय का रोम-रोम काँप उठा। उसे लगा कि उसके जीवन में बड़ी हल-चल मच गई है।

"तुमने मुझे पहले क्यों नहीं कहा ?"

"मैं लज्जा के मारे ········।"

"देखो नमिता, तुमने मुझे बड़े संकट में डाल दिया है। चलो, आज मैं तुम्हें डाक्टर के ········।"

"मैं डाक्टर के पास नहीं जाऊँगी।"

"क्यों ?"

"तुम मुझ से विवाह करलो न, आखिर वह हमारा बच्चा है।"

"विवाह, देखो नमिता वह सम्भव नहीं है।" उसने केवल अपनी ही बात कही।

"कैसे सम्भव नहीं, मैं अभी तुम्हारे बाबा को··········।"

ज्योतिर्मय गुस्से में भर उठा। नमिता का हाथ पकड़ कर बोला, "तुम चुप होवोगी कि नहीं। जाओ अभी मैं शाम को तुम से मिल लूँगा।········ बस जाओ, जाओ न।"

नमिता गीले नयनों को पोंछती हुई चली गई।

पदारथ ने आकर घबराए हुए स्वर में ज्योतिर्मय से कहा,"बड़े सरकार की तबीयत एकाएक खराब हो गई है।"

ज्योतिर्मय भागता हुआ गया।

जमींदार साहब अपने हृदय को पकड़े बैठे थे। वे रह-रहकर सिसक रहे थे।

ज्योतिर्मय के चेहरे पर करुणा के भाव उभर आये। वह अमोलक बाबू के सन्निकट बैठता हुआ, आज्ञाभरे स्वर में बोला, "पदारथ, जा डाक्टर सरकार को बुला ला।"

जमींदार साहब ने कलेजे को पकड़ते हुए कहा, "नहीं डाक्टर की कोई आवश्यकता नहीं है, पदारथ मुझे गाँव ले चलो। मैं इस नर्क में एक क्षण भी रहना नहीं चाहता।"

ज्योतिर्मय को यह समझते देर नहीं लगी कि उसके पिता जी ने उन दोनों की बातें सुन ली हैं।

वह धीरे से उठा। चलने को उद्यत हुआ, फिर रुका और अत्यन्त संयत स्वर में बोला, "आप नारी की चारित्रिक विचित्रता से परिचित नहीं हैं। आधुनिक युग में वह जिस तेजी से नाटक के कुशल कलाकार का अभिनय करती है उसे देख कर अच्छे-अच्छे नारी-चरित्र के विशेषज्ञ धोखा खा जाते हैं।...... पदारथ, बड़े सरकार को मोटर पर ले जाने का बन्दोबस्त कर दो। मैं यहाँ से जाता हूँ अन्यथा इनका रोग बढ़ जाएगा।"

ज्योतिर्मय की आँखों से अश्रु ढुलक पड़े पर जमींदार साहब ने इन आँसुओं को देखा नहीं। वे बड़ी कठिनता से नीचे उतरे और गाँव की ओर चल पड़े।

गाँव पहुँचते-पहुँचते जमींदार साहब की तबीयत बहुत खराब हो गई। पार्वती विकलता से इधर-उधर भागने लगी। पदारथ को वापस दौड़ाया कि वह डाक्टर को बुलाकर लाए।

तभी ज्योतिर्मय आ गया। उसके साथ डाक्टर सरकार थे। उन्होंने रोगी की देखभाल की। इन्जेक्शन लगाए। काफी देर बाद जमींदार साहब को होश आया।

संध्या ने रात्रि के अंक में अपना अस्तित्व समाप्त कर दिया था। गाँव में जमींदार साहब की बीमारी को लेकर बहुत जोरों की चर्चा थी। छन्दा बहू माँ की मदद कर रही थी। ज्योतिर्मय भी शांत निश्चल बैठा था।

जमींदार साहब की आँखें खुलते ही वह उठकर चला गया। पार्वती ने उसे जाते देख कर पूछा, "कहाँ जा रहे हो, ज्योति ?"

ज्योति क्षणभर मौन रह कर धीरे से बोला, "बाबा, मुझसे रुष्ट हैं। इसलिए मैं बाहर जा रहा हूँ।"

पार्वती उसके इस कथन का तात्पर्य नहीं समझी। वह उसे अपलक अर्थ-भरी दृष्टि से देखती रही। अचानक बोली, "सुनो तो।"

ज्योतिर्मय रुक गया।

"ऐसी हालत में तुम अपने बाबा को छोड़ कर जाओगे ?"

"चाहता तो मैं भी नहीं हूँ पर मेरा यहाँ से जाना ही श्रेयस्कर है। मेरी उपस्थिति बाबा को परेशान कर देगी।" ज्योतिर्मय कमरे से बाहर आ गया।

पार्वती ने जमींदार साहब के सिर पर हाथ रख कर पूछा, "अब आपकी तबीयत कैसी है ?"

"पारो, मैं अब मुक्त होना चाहता हूँ। मृत्यु-द्वारे अपनी समस्त अभिलाषाओं को समर्पण करके मैं एक चीज माँगूँगा कि वह मेरे बेटे को सद्-बुद्धि दे।"

"आप अभी चुप रहिए।" पार्वती ने उन्हें रोका। कमरे में धूप कर दिया गया जिसकी सौरभ से कमरा सुवासित हो गया।

कमरे में अब केवल पार्वती और अमोलक बाबू ही थे। पार्वती एकदम सिसक पड़ी। अमोलक बाबू ने हैरानी से पूछा, "क्या बात है पारो, तुम रो क्यों रही हो ?"

"नहीं तो।" कह कर पार्वती ने तुरन्त अपने अश्रु पोंछ लिये। स्नेह-सिक्त स्वर में बोली, "अशुभ बातें न चाहते हुए भी मन में पीड़ा का संचरण करती रहती हैं। ऐसी-ऐसी दुष्कल्पनाएँ मन में उठ रही हैं कि हृदय बिना रोए रह नहीं सका।"

अमोलक बाबू ने पार्वती का हाथ अपने हाथ में ले लिया। थोड़ी देर मौन रह कर वे बोले, "ये दुष्कल्पनाएँ अर्थहीन नहीं होतीं। ये हमारे समस्त आत्म-लोक पर धीरे-धीरे अपना अधिकार स्थापित करती हैं। तब लगता है कि 'वह' जरूर होगा और जब 'वह' पूर्ण हो जाता है तब हम कहते हैं कि इसकी आशंका हमें पहले ही थी। पवित्र आत्मलोक हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति का ज्ञाता होता है।"

"ऐसे अमंगल-कर्त्ता सत्य से परिचय न कराइए। आप कदाचित् विस्मृत कर बैठे हैं। आपने प्रारंभिक प्रणय-निवेदन के समय कहा था कि हम एक-दूसरे के जीवन भर अवलम्बन बन कर रहेंगे। आप अपनी उस प्रतिज्ञा को याद रखिएगा।"

"पारो, तुम्हारा असीम अनुराग ही मुझे जीवित रख रहा है। मैं तो कभी का चल बसता, पर तुम्हारा स्नेह-बन्धन कहाँ जाने देता है। यदि मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा को पूर्ण न कर सकूँ तो समझना कि मेरे प्रणय में पवित्रता नहीं थी।"

पार्वती ने अमोलक बाबू के मुँह पर हाथ रख दिया। दो बूँद अश्रु उनके न चाहते हुए भी ढुलक पड़े। पार्वती ने अपने आँचल से उन्हें पोंछा, "इतने अधीर होने की आवश्यकता नहीं है। पुरुष का प्रणय प्रायः प्रवंचनाहीन नहीं होता लेकिन आप उनमें अपवाद हैं। मैं समझती हूँ कि आपका प्रेम ही इतना अटूट था कि कृषक के बेटे ने जमींदार की आत्मा को जीत लिया।''' उन यौवन के पवित्र क्षणों की स्मृति जब कभी भी आती है, हृदय जीवट से भर आता है; इच्छा होती है कि हमारी सृजना करने वाला ब्रह्म एक पल के लिए हमें हमारा वह जीवन वापस दे दे।"

"अतीत स्मरण करने के लिए होता है। स्मृति सुखद होती है। ये पल सुखदायक हैं।""पारो, क्या मेरी मृत्यु के बाद ज्योति तुम्हारे अन्तर का मर्म समझ सकेगा ? वह निष्ठुर वृत्ति का प्राणी तुम्हारी आत्मा को बड़ा दुख देगा।"

"आप में उसके प्रति एक पूर्वाग्रह है। युवक यौवन के प्रवाह में औचित्य को भूल जाते हैं। फिर ज्योतिर्मय आपका बेटा है। क्या रक्त-सम्बन्ध कुछ तात्पर्य नहीं रखता ?" पार्वती अश्रुभीगी मुस्कान के साथ बोली, "वह भी आपकी भाँति दयालु और विनयी बनेगा।"" "अभी तो आपकी आयु भी क्या हुई है ? आप खुद अपनी आँखों से उसकी सज्जनता देख लेंगे।"

बातचीत जरूरत से अधिक हो चुकी थी। पार्वती अमोलक बाबू के सन्निकट बैठी रही। न मालूम कब उसे नींद आ गई ? निद्रा की गोद में निमग्न पार्वती को किसी के कराहने की अस्पष्ट आवाज सुनाई पड़ी। उसे लगा कि कोई उसे अत्यन्त अनुकम्पा से पुकार रहा है। वह हड़बड़ा कर उठी। उसने अमोलक बाबू को देखा। वह सन्न रह गई। अमोलक बाबू की आँखों में मृत्यु की छाया नाच रही थी। पार्वती आकुलता के मारे चीख पड़ी, "ज्योतिर्मय बेटा ज्योतिर्मय, ओ पदारथ ज्योतिर्मय !"

ज्योतिर्मय भाग कर आया।

"क्या है माँ ?"

"तुम्हारे बाबा ।"

ज्योतिर्मय बाबा की आकृति देख कर काँप गया। उसने झपट कर दवा पिलाने की कोशिश की। अमोलक बाबू ने दवा को हाथ से झटका देकर गिरा दिया। अस्पष्ट स्वर में बोले, "मुझे जाने दो, जाने दो,""मुक्ति""माँ मुक्ति !"

अमोलक बाबू ने इस पार्थिव तन से मुक्ति पा ली।

पार्वती फूट-फूट कर रो पड़ी।

दाह-संस्कार के बाद ज्योतिर्मय एक कोने में बैठा-बैठा आँसू बहा रहा था कि पार्वती उसके पास आई। जमींदार साहब की चाबी उसे संभालकर बोली, "आज से उनका काम तुम्हें संभालना होगा। वे मुझे कह गए है कि मैंने एक वसीयत की है, उसे एक वर्ष के बाद खोलना।"

ज्योतिर्मय ने चाबियाँ ले लीं पर उसने कोई उत्तर नही दिया।

८



गाँव की देख-भाल के लिए कभी-कभी वकील मुखर्जी आया करता था। ज्योतिर्मय ने पढ़ना छोड़ कर गाँव में ही डेरा जमा दिया। छन्दा उससे पहले से ही आतंकित थी। जब उसने देखा कि ज्योतिर्मय अब गाँव में ही रहेगा, तब वह बड़ी चिन्तित हुई। एक दिन वह हवेली में आई।

ज्योतिर्मय अपने कमरे में था नहीं। पार्वती से पूछने पर विदित हुआ कि वह शिकार खेलने गया है। छन्दा आश्वस्त हो गई। पार्वती श्वेत वस्त्रों में वैष्णवी-सी लग रही थी। चन्दन चर्चित उसका दीप्त भाल था और अधरों पर अमिट, अभेद मनोहारी स्मित।

"बैठो छन्दा", पार्वती ने कहा।

छन्दा ने गले के चारों ओर अपने आँचल का पल्लू लपेटा। ठाकुर का मन्दिर ! भगवान श्री कृष्ण-राधा की युगल मूर्ति ! छन्दा ने साष्टांग प्रणाम किया। तब बोली, "मैं शहर जा रही हूँ। कलकत्ता में मेरा ममेरा भाई असीम रहता है। अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ है। कल अचानक मामी का देहान्त हो गया, इसलिए असीम ने मुझे बुलाया है।"

"वापस कब तक आओगी ?"

"जल्दी ही। मैं तो वहाँ जाना भी नहीं चाहती लेकिन लोक-लज्जा के मारे रुक नहीं पा रही हूँ। फिर अपने-परायों का ख्याल रखना ही पड़ता है।"

"रोकना मैं तुम्हें नहीं चाहती लेकिन लौटकर आने में तड़ातड़ी अवश्य करना। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।"

चरण-धूलि लेकर छन्दा लौट पड़ी। हवेली से बाहर निकलते ही ज्योतिर्मय मिल गया। लापरवाही से बोला, "क्यों छंदा, माँ जी से मिल आई ?"

"जी हाँ।" उसके स्वर में उत्तेजना थी।

"अरे, डर क्यों रही है। माँ जी कह रही थीं कि तुम मुझसे अभी तक रूठी हुई हो। भला क्यों ? मुझसे कोई अपराध हुआ है तुम्हारा ?"

छन्दा अपने मानसिक उद्वेलन पर काबू नहीं कर सकी। घृणा की तूफानी लहरें उसके मस्तिष्क में उठ रही थीं। वह अपलक ज्योतिर्मय को देखकर बोली, "अपराध की व्याख्या मैं नहीं कर सकती पर मैं इतना जरूर जानती हूँ कि तुम्हारे कारण मेरे बाबा की मृत्यु हुई।"

"इस कारण की महत्ता से कदाचित् तुम अपरिचित हो। जब ईश्वर ने मृत्यु की सर्जना की तब उसने भी ईश्वर से यही प्रार्थना की थी कि मुझे 'कारण' न बनाइए। यदि आपने मुझे कारण बना दिया तो लोग मुझे घृणा की पीड़ा पहुँचा-पहुँचाकर मार डालेंगे। तब ईश्वर ने आधि-व्याधियों की रचना की। तुम्हारे बाबा मेरे निमित्त नहीं गए परन्तु वास्तविकता यह है कि तुम्हारे बाबा की आयु समाप्त हो गई थी। जन्म के बाद मृत्यु निश्चित है।"

छन्दा की आँखों में आँसू आ गए। वह आँसुओं को छुपाती हुई बोली, "तुम उचित ही कहते हो कि मृत्यु निश्चित है। किन्तु रोटी के अभाव में क्षुधा की अपरिसीम व्यथा लिए कोई मर जाए, उसे मृत्यु का निमन्त्रण नहीं कह सकते। वह अभाव में मरा या भूख ने उसे मार दिया। उसकी तो हत्या हुई है।"

"तो तुम समझती हो कि तुम्हारे बाबा की हत्या हुई है?"

"मैं यह समझ कर अपने मन को परितोष दे देती हूँ, किन्तु जिसने हत्या की है, उसे किंचित लखाव नहीं। वह छन्दा के अन्तर के दुख को समझे बिना ही उसके अनुराग को प्राप्त करना चाहता है।"

"अनुराग की बात ठीक नहीं है। यदि तुम यह समझती हो कि उपचार के अभाव में तुम्हारे बाबा की मृत्यु हुई है और उसका जिम्मेवार मैं हूँ तो मैं उसका प्रायश्चित करना चाहता हूँ। इसीलिए मैंने कल रात नौकर को भेजा था।"

"प्रायश्चित करके उऋण होना चाहते हो?" उसके मुख पर अन्तस का रोष प्रकट हो गया। वह तनिक तीव्र स्वर में बोली, "छोटे सरकार, कुछ पाप ऐसे होते हैं जिनसे कभी भी उऋण नहीं हुआ जाता। बाबा की मृत्यु के बाद जो दुष्कामनाएँ तुम्हारे प्रति मेरे मन में हैं, वे कैसे मिटेंगी? सबसे पहले उनका उपचार करना होगा।"

"इसीलिए मैं चाहता हूँ कि अब तुम हवेली में आ जाओ। माँ को संगिनी की आवश्यकता है। एकांत में वह बाबा को याद कर-करके रोया करती हैं। तुम सांसारिक झंझटों से मुक्त हो जाओगी।"

"इससे तो मेरी व्यथा और बढ़ जाएगी। मुझे तुम्हारा सामीप्य नहीं चाहिए। मैं उन कटु स्मृतियों को भूलाना चाहती हूँ जो मेरे हृदय में नाटक के सम्वादों की भाँति गूँजती रहती हैं।"

"तब?"

"मैं कलकत्ता जा रही हूँ।"

"छन्दा ! तारुण्य का वैधव्य एकांत आत्म-निवेदन से ही नियन्त्रित रखा जा सकता है। शहर के वासनापूर्ण जीवन में तुम अपने आपको प्रसन्न नहीं रख पाओगी।"

छन्दा उसके इस कथन से उत्तेजित हो गई। बोली, "अपना धर्म अपने हाथ है। लेकिन मैं उस दुख को आनन्द से अधिक सुखप्रद समझूँगी क्योंकि यहाँ मेरी सुरक्षा के साधन उस व्यक्ति के हाथ में हैं जो स्वयं मेरे सौन्दर्य का भूखा है।"

ज्योतिर्मय कुछ बोलता, इसके पहले ही छन्दा चली गई। उसकी आँखें अश्रुओं से छलछला आई थीं। उसकी आत्मा की गहराइयों में यह बात बुरी तरह बस गई थी कि ज्योतिर्मय उसके सौन्दर्य पर आसक्त है और यही कारण है कि वह उसे यहाँ रखना चाहता है। माँ तो केवल उपलक्ष्य मात्र है। उसे यहाँ से शीघ्र चले जाना चाहिए।

छन्दा उसी दिन कलकत्ता रवाना हो गई।

६



छन्दा के जाने का दुख ज्योतिर्मय को आवश्यकता से अधिक हुआ। हालांकि इसके पहले उसने छन्दा पर, उसके रूप पर, उसके स्वाभाव पर विशेष ध्यान नहीं दिया था। लेकिन उसको अपने से दूर पाकर उसकी स्थिति वाचाल-सी हो गई। सहजता से उपलब्ध होने वाली वस्तु दुःसाध्य की ओर उसके देखते-देखते बढ़ गई, इसे वह अपने मन की मूर्खता समझता था। तब ज्योतिर्मय के मन में अपनी घनिष्ठ परिचित और तनिक जान-पहचाने वाली युवतियाँ नाच उठीं। वह उन्हें कैसे अपने प्रेम-जाल में आबद्ध कर सका, इसको क्रमबद्ध स्मरण करके वह अपने आपको सुख देने लगा। अप्रत्याशित उसके बदन में उत्तेजना-सी दौड़ गई। उसे महसूस हुआ कि छन्दा के बिना सब व्यर्थ है। वह विधवा है। असहाय और भोली। उससे वह घृणा यूँही कर बैठी। प्रायश्चित करके उसे अपनी ओर कृपालु बनाया जा सकता है।

तब उसे कलकत्ता की स्मृति बड़े प्रखर रूप में आई।

कलकत्ता के उन्मादित क्षणों के साथ नमिता!

नमिता ने भी अब तक कलकत्ता छोड़ दिया होगा। प्रसव की वेदना, यदि उसने डॉक्टर का सहारा नहीं लिया है तो अपनी चरम सीमा पर होगी।

न जाने क्यों ज्योतिर्मय के मुख पर काली स्याही-सी पुत गई। उसके विचार-लोक में नमिता कुहरे की धुंध-सी घनीभूत होकर छा गई। वह अल्प-

काल के लिए सिर पकड़ कर बैठ गया। जब वह उठा तब वह अपने आपको अस्वस्थ पा रहा था।

संध्या के आगमन से कुछ पूर्व ही ज्योतिर्मय पार्वती के पास गया। पार्वती रामायण का पाठ कर रही थी। जमींदार साहब की मृत्यु के उपरान्त उसका मुख्य कार्य भगवद्-अर्चना रह गया था।

"माँ।" ज्योतिर्मय ने पुकारा।

"क्या है ज्योति ?"

"मैं कलकत्ता जा रहा हूँ ?"

"यह अचानक विचार कैसे हो गया ?"

"बाबा की मृत्यु के बाद मैं चाहता था कि तुम्हारे पास ही रहता। तुम्हारे सुख का ध्यान रखता पर माँ, इधर दो दिन से मन उदास-उदास रहता है। कहो तो कुछ रोज के लिए कलकत्ता रह आऊँ ?"

"हाँ-हाँ ! किन्तु एक बात का ध्यान रखना। बेटा, तुम्हारे बाबा एक वसीयत छोड़ गए। मुखर्जी के पास वह वसीयत रखी हुई है। न मालूम एक साल के बाद उसमें क्या लिखा होगा ? मुझे विश्वास है कि तुम्हारी चरित्र-हीनता के कारण ही तुम्हारे बाबा तुमसे नाराज हो गए थे और यह वसीयत बना गए।"

"यदि बाबा ऐसा कर गए हैं तो मुझे उनकी सम्पत्ति की कोई चिन्ता नहीं। मैं ऐसी सम्पत्ति पर लात मारता हूँ।"

"ना, ना, बेटा, कुल-गौरव क्षणिक उत्तेजना में नहीं गँवाना चाहिए।" पार्वती के नेत्रों में चिन्ता के भाव प्रगट हुए। ज्योतिर्मय के कन्धों पर हाथ रखती हुई स्नेहसिक्त स्वर में बोली, "तुम्हें मुखर्जी से मिलना चाहिए, उस भेद का पता लगाना चाहिए।"

ज्योतिर्मय गुस्से में भर उठा। नादान बच्चे की भाँति अपना एक पाँव पटकता हुआ बोला, "तुम तो जानती हो माँ, कि मुखर्जी कैसे आदमी हैं ?

जिस किसी को विश्वास दे देते हैं, उसे किसी भी कीमत पर निभाने का प्रयास करते हैं। उनसे रहस्य जानने से अच्छा है कि मैं असाध्य की साधना करूँ ? पाषाण प्रार्थना से पिघल जाएँगे पर मुखर्जी नहीं पिघलेंगे। उनकी पत्नी भी इसी सत्य के लिए कभी-कभी अभाव में उन्हें कलियुग का 'युधिष्ठर' कह देती है।"

"प्रयास करना बुरा नहीं है। कम-से-कम इससे मुखर्जी इस बात के लिए तो मानेंगे कि लड़का वसीयत के बारे में जानने का इच्छुक है। मेरी समझ में इसीलिए उन्होंने तुम्हें गाँव में रहने के लिए कहा है।"

"और यदि मैं गाँव में नहीं रहूँ तो ?"

"मैं समझती हूँ कि कोई अहित हो जाएगा।"

"फिर मैं मुखर्जी से मिल लूँगा। उनसे वसीयत के बारे में जानने की चेष्टा करूँगा लेकिन आशा बहुत ही कम है।"

"खुशामद से न बनने वाले काम भी बन जाते हैं।"

"जैसी तुम्हारी आज्ञा।"

"लौटकर कब तक वापस आ जाओगे ?"

"यही पन्द्रह-बीस दिन में।"

"हाँ, शरीर की देखभाल रखना। सुना है कि कलकत्ता में हैजे का प्रकोप है, भोजन आदि का बंदोबस्त ठीक से रखना।''''''''डाभ जरूर पीना।"

ज्योतिर्मय ने कलकत्ता आते ही अपनी शराब की बोतल सँभाल ली। पदारथ अब ज्योतिर्मय का उतना ही स्वामीभक्त नौकर था जितना पहले अमोलक बाबू का था।

एक बार बात ही बात में ज्योतिर्मय ने उसे पूछ लिया था, "क्यों पदारथ, पहले तू मेरी बातें बाबा को क्यों बता दिया करता था ?"

पदारथ चरण-स्पर्श करके खिसियानी हँसी के साथ बोला, "हुजूर, मैं ठहरा नौकर, उस समय ऐसा नहीं करता तो मुझे आपकी सेवा का मौका कैसे मिलता ?"

कुछ भी हो, 'मिस स्टिक' छिपे रूप में ज्योतिर्मय का साथ करने लगी । मुखर्जी को इस बात का पता लग गया था । उसके द्वारा वसीयत के बारे में जरा भी संकेत न मिल जाने के कारण ज्योति का गर्व ऐंठ गया । उसने मुखर्जी को कह दिया, "मैं दाल-रोटी में ही अपना जीवन व्यतीत कर दूंगा ।" इन शब्दों का मुखर्जी पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा पर कार्य नितान्त इन शब्दों के विपरीत हुए । ज्योतिर्मय शराब पीने लगा । वेश्यागामी उसका दैनिक स्वभाव बन गया था । मिस स्टिक रखैल के रूप में थी ही ।

छन्दा को ज्योतिर्मय नहीं पा सका । हालाँकि वासना की इस उत्तेजना-मयी सृष्टि में पूंजी के बदले नारी सहजता से प्राप्त हो सकती थी फिर भी छन्दा का इन सबसे पृथक् अस्तित्व था। सहस्रों सुन्दर मुखों के मध्य छन्दा का दीप्त-शांत आनन उसके कल्पनालोक में प्रचंड व्यक्तित्व-सा कभी-कभी उभर आता था । तब वह पराजय की पीड़ा से वाचाल हो उठता था । उसकी इच्छा होती थी कि वह शराब की बोतलों को तोड़ दे, प्यालों को फेंक दे और इन शरीर बेचने वाली नारियों को तिरस्कृत करके निकाल दे ।

छन्दा, पावन अग्नि की भाँति उज्ज्वल और दीप्त !

तब वह वहाँ से उठकर विस्तृत मैदान के उस छोर पर जाकर बैठ जाता था जहाँ वह ऐसा महसूस करता कि वह संज्ञाहीन है । जहाँ वह कठिन प्रयत्न करता कि वह सब कुछ भूल कर शांति का अनुभव करे । उसे किसी प्रकार की उद्विग्नता और बेचैनी न हो ।

तब उस चरित्रहीन और शराबी की आँखों से अनायास ही अश्रु उमड़ पड़ते थे ।

× × ×

१०



एक दिन वह नमिता के घर गया।

भय से आक्रान्त उसने नमिता की माँ से पूछा, "मैं नमिता से मिलना चाहता हूँ।"

"नमिता" का नाम एक अपरिचित व्यक्ति के मुख से सुनकर नमिता की माँ वसुधा कठोर हो गई। कुछ क्षण पूर्व उसके चेहरे पर जो सौम्यता थी, वह उसके बड़े-बड़े नेत्रों में घृणा बन कर नाच उठी। ज्योतिर्मय के ललाट पर स्वेद कण चमक उठे। उसे लगा कि उसका सारा शरीर काँप रहा है। बस अब अनिष्ट होने वाला है।

वसुधा बोली, "उसकी सेहत अच्छी नहीं है, इसलिए वह पहाड़ पर गई है।"

"ऐसी बात तो मैंने कभी नहीं देखी माँ, वह मेरे साथ पढ़ती थी।"

"तो क्या तुम्हारा ही नाम ज्योतिर्मय है।··· आओ बेटा, बैठो···दुलाल, जा, अपने दादा के लिए चाय बना ला।"

ज्योतिर्मय का विचित्र हाल था। वह जितना जल्दी हो सके वहाँ से भाग जाना चाहता था, पर उसे कोई अवसर ही नहीं मिल रहा था। वह उतावली

से बोला, "चाय के लिए कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मैं फिर कभी आऊँगा।"

"ऐसा कैसे हो सकता है ? तुम्हें चाय पीकर ही जाना होगा। दुलाल तड़ा-तड़ी करना।" वसुधा ने हाथ पकड़ कर ज्योतिर्मय को बैठा दिया। ज्योतिर्मय ने एक बार वसुधा की बड़ी-बड़ी कोटरशायिनी आँखों को पढ़ना चाहा। भाव-भंगिमा से ऐसा कोई अनुमान नहीं लगाया जा सका कि वसुधा उसके बारे में कुछ अधिक जानती हो, पर ज्योतिर्मय को अपने पर विश्वास नहीं हो रहा था। कहीं वह बात ही बात में ऐसी चर्चा कर बैठे जिसका नमिता की सेहत से सम्बन्ध है, फिर तो उसकी खैर नहीं। इसलिये उसने भाग जाना ही उत्तम समझा।

"सुनिए, मुझे बहुत ही जरूरी कार्य है। मैं फिर कभी आऊँगा; आपसे बातचीत करूँगा। हाँ, नमिता का पत्र आए तो मेरा नमस्कार लिख देना।"

"जरूर लिख दूँगी। तो तुम नमिता के साथ पढ़ते थे ?"

नया प्रश्न सुन कर ज्योतिर्मय ने झल्ला पड़ना चाहा पर शिष्टता का ख्याल करके वह चुप रहा। संयत-स्वर में बोला, "हाँ, हम दोनों एक ही कक्षा में पढ़ते थे।"

"सेहत के कारण नमिता परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सकी। तुम्हारा अध्ययन तो अच्छी तरह चल रहा है न ?"

उसके स्वर में क्षणिक उत्तेजना आ गई, "नहीं माँ, मेरे भी बाबा परमात्मा की शरण चले गए..... ।"

"हे राम, यह तो अत्यन्त बुरा हुआ। ईश्वर तुम्हें शांति प्रदान करें, क्या आयु थी उनकी ?"

"यही ४५ के लगभग।"

"फिर तो उन्हें वृद्ध भी नहीं कहना चाहिए। बेटा, गृह-स्वामी के बिना अनेक यातनाएँ उठानी पड़ती हैं। मैं तो अब उनके बिना इतनी थक गई हूँ

कि कई बार उनसे रात्रि के नीरव क्षणों में प्रार्थना करती हूँ कि वे मुझे अपने पास बुलालें किन्तु उस लोक में जाने के बाद वे मुझसे बदल गए हैं, निष्ठुर और कृपण हो गए हैं। मेरी प्रार्थना पर ध्यान ही नहीं देते। इस पर परिवार की आपदाएँ, छिः-छिः····।"

"माँ, मैं चला, पौने छः बज रहे हैं और आज गाँव से मेरी माता जी आने वाली हैं!" ज्योतिर्मय ने तुरन्त उनके भाषण में अवरोध उत्पन्न किया। बात का प्रसंग परिवार की ओर उन्मुख हो रहा था। परिवार के परिवेश में नमिता को लेकर गंभीर चर्चा का प्रारम्भ हो जाना कोई असंभव नहीं था और यह भी संभव ही था कि बहुत बातूनी यह वसुधा पहाड़ पर जाने का रहस्य भी खोल दे जिसको वह कदापि सुनना पसंद नहीं करता। वह तो केवल इस बात का पता लगाने आया था कि नमिता ने यदि गर्भपात करा लिया हो तो वह उसे अपने अतीत के सुखमय क्षणों की स्मृति दिलाकर पुनः उसके अनुराग को उपलब्ध करेगा उसे अपने पर यह पूर्ण विश्वास था कि वह उसे रो-धोकर मना लेगा। इसमें उसका कुशल कलाकार बड़ा सहायक सिद्ध होता था। परन्तु वसुधा नमिता की चर्चा के साथ उसका हाथ पकड़ कर बोली, "नमिता के रोग से तुम परिचित नहीं हो।"

ज्योतिर्मय ने अपने हृदय की दुख-भरी धड़कनों को दाबने के लिए अपने हृदय को पकड़ लिया ताकि कुछ कष्ट कम हो जाए। उसने तुरन्त बाहर को झाँका जैसे वह यह प्रकट करना चाह रहा हो कि उसे नमिता की चर्चा में जरा भी सम्मोह नहीं है। उसने तत्क्षण ईश्वर से प्रार्थना भी की कि मुझे इस आपत्ति से बचा दे। क्षण भर के चैन के लिए दुलाल चाय ले आया था। दुलाल को देखकर ज्योतिर्मय किलक कर बोला, "लड़का भाग्यशाली लगता है। शुभ्र ललाट, गंभीर नेत्र, कौन-सी कक्षा में पढ़ते हो?"

"दादा, क्या आप पॉमिस्ट्री जानते हैं?"

"हाँ-हाँ, थोड़ी बहुत।"

"फिर जरा यह तो बतादो कि यह हमारा भवभंजनकारी बनेगा कि नहीं?" वसुधा बीच में बोली।

"यह मैं कल बताऊँगा।" वह चाय तश्तरी में उड़ेल-उड़ेल कर तुरन्त पी गया। उठता हुआ बोला, "कल दोपहर को मेरी प्रतीक्षा करना दुलाल, मैं निश्चित आऊँगा।"

"अच्छा भैया, पर आपका नाम क्या है ?"

"ज्योतिर्मय," कहकर वह इस तरह भागा जैसे पुलिस को देखकर चोर भागता है। नमिता के घर से काफी दूर निकल जाने के बाद ज्योतिर्मय ने धैर्य की साँस ली।

"नमिता पहाड़ पर गई है।" उसने सड़क पर चलते हुए विचारा। उसके चेहरे पर एक अपराधी के चेहरे की आवेशपूर्ण उदासी छा गई। आत्म-ग्लानि के मारे उसकी मानसिक स्थिति अत्यन्त व्यग्र हो उठी, "नमिता पहाड़ पर गई है।" उसने इस वाक्य को फिर दोहराया, "क्यों गई ? प्रसव करने ? नहीं-नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ? उसने जरूर डाक्टर से उपचार करा लिया होगा ? यह एक कुमारी लड़की के लिए कैसे संभव है कि वह अपने पेट के बच्चे की रक्षा करे अथवा उसे पनपने दे ? फिर वह पहाड़ पर क्यों गई ?" वह अवश हो उठा। सड़क पर चलने वाली एक लड़की से वह टकराता-टकराता रह गया। उसने धीरे से यह भी कहा, "देख कर चलो, मोशाय।"

ज्योतिर्मय ने टैक्सी ली और चल पड़ा।

सरदार जी ने पूछा, "कहाँ सेठ ?"

"धर्मतल्ला," कहकर उसने गंभीर मौन धारण कर लिया। "वह पहाड़ पर क्यों गई ?" उसने इस वाक्य के अन्तर्हित मर्म से परिचित होने के लिए अपने मस्तिष्क पर जोर दिया पर वह असफल ही रहा। तब उसने अन्त में निश्चय किया कि वह 'स्टिक' के यहाँ जाकर शराब पिएगा। शराब पीने से उसे जरूर आराम मिलेगा।

११



उस दिन असीम बड़ा हैरान था। अपने किराए के कमरे में वह चहल-कदमी कर रहा था। उसके मुख पर आक्रोश स्पष्ट रूप से झलक रहा था। समीप ही बिस्तर पर पड़ी छन्दा सिसक रही थी।

असीम सोच रहा था कि मनुष्य को अपना सुखमय जीवन क्यों नहीं पसन्द है। जरूर प्राणी के मस्तिष्क में पागलपन के तत्व मौजूद हैं जो समय-समय पर गम्भीर रूप में प्रकट होकर प्राणी को क्षणिक पागल बना देते हैं। तब वह ऐसे कार्य कर बैठता है जिसकी हम कभी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। यह अति करुणा, दया, क्रोध, घृणा, प्रेम इत्यादि उसी पागलपन के लक्षण हैं। ''''''''अब इस छन्दा को ही देखो, गंगा-स्नान करने गई थी और एक संकट ले आई ? पाप को धोने गई थी और महापाप ग्रहण कर लाई। उसके ललाट पर सलवटें पड़ गईं। वह चीख पड़ा, "आखिर तुमने यह सब कैसे कर लिया ?"

छन्दा सिसक कर बोली, मैं नहीं जानती ? मैं तुम्हें ऐसे ही समझा सकती हूँ कि निःसहाय पर प्रत्येक का करुण-उद्रेक हो सकता है।"

"यह स्वाभाविक है।' वह अधीर सा उनके सन्निकट आया। उसके हाथ को जोर से दबाकर असीम बोला, 'किन्तु उस करुणा के बाद जो यातनाएं उत्पन्न होंगी, उनकी भी कल्पना है ? तुम खुद निराश्रय हो, अर्थ का अभाव है, ऐसी दशा में किसी पर करुणा करना सिवाय मूर्खता के और क्या हो

सकती है।"

"मैं मूर्खता कर चुकी हूँ, अब क्या हो सकता है ?"

"अब यही करना होगा कि कल तुम्हें पुनः इस बच्चे को वहीं पर छोड़ कर आना होगा। न मालूल कौन है यह ?" घृणा के कारण असीम की आँख अर्धोन्मीललत हो गईं।

"यह संभव नहीं है।"

"क्या कहा ?" वह इतने जोर से चीखा कि पड़ोसी के कान खड़े हो गए।

"मैं इस बच्चे को किसी भी सूरत में वापस नहीं कर सकती।"

"तुम पागल हो गई हो ? तनिक सोचो तो सही कि इस बच्चे को लेकर तुम्हें कितनी विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ेगा ?"

"मैं उसकी परवाह नहीं करती। इस बच्चे के पोषण के लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। पर पहले तुम मुझे एक बात का जवाब दो कि क्या तुम मुझे अपने साथ रख सकते हो या नहीं ?" उसने अपने आँसू पोंछे।

"और यह बच्चा ?"

"उसका मैं प्रबन्ध कर लूंगी। अपनी जमीन बेचकर मैं सारे रुपये बैंक में जमा करवा दूंगी और उसका जितना भी ब्याज आएगा वह इस अनाथ बच्चे के लिए काफी है।"

"ओह ! तो तुम इस बच्चे के लिए अपने ममेरे भाई को भी त्याग सकती हो ?"

"अवश्य !"

"तुम वास्तव में पागल हो गई हो, छन्दा।"

वह जितना उत्तेजित था, वह उतनी ही विनम्र होकर बोली, "तुमने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारी दासी बनकर रहूँ, आखिर तुम्हें भी एक ऐसी नौकरानी की आवश्यकता रहेगी जो तुम्हें खाना बनाकर खिलाए और जब तुम काम करते-करते थक जाओगे तब वह तुमसे किसी भी तरह की बातचीत करके तुम्हारी थकान मिटाये। मैं समझती हूँ कि क्लर्क जैसा नीरस जीवन किसी का भी नहीं होता। फिर एकाउण्ट-सेक्शन का

क्लर्क तो वास्तव में दया का पात्र होता है। उसे एक साथी की नितान्त आवश्यकता रहती है। क्या तुम केवल भोजन के बदले मुझे नहीं चाहोगे ? इस पर मैं तुम्हारी बहिन भी हूँ।" छन्दा की आँखों में प्रश्न नाच रहा था।

असीम अपने सिर को दोनों हाथों से पकड़ कर बोला, "उफ ! तुमने मुझे यह भाषण केवल इस लिये दिया कि तुम इस बच्चे को अपने साथ रखना चाहोगी।"

"अवश्य रखना चाहूँगी।" छन्दा ने दृढ़ता से कहा, "इस पर भी तुम मुझे अपने साथ रखना नहीं चाहोगे तो मैं कहीं और काम ढूंढ लूँगी।"

इस बार असीम शान्त रहा। उसने अपने नेत्र साभिप्राय बन्द किए। उसका बायाँ पाँव जमीन पर यंत्र की भांति गिर-उठकर थप्-थप् की ध्वनि कर रहा था।

वह विस्मय से अनुप्रेरित स्वर में बोला, "आखिर तुम इससे कौन से उद्देश्य की प्राप्ति करोगी ?"

"यह मैं नहीं जानती।"

"फिर तुम्हारा यह काम निःसन्देह मूर्खतापूर्ण है।"

"हो सकता है। क्या यह जरूरी है कि हर व्यक्ति अच्छा ही कार्य करे ? मूर्खता इतनी बुरी वस्तु नहीं है, जितनी तुम अनुभव कर रहे हो। कभी-कभी मूर्खता भी सुफल दे जाती है।

"खैर, तुम मेरी बहिन हो, इस हेतु मैं तुम्हें यहाँ से जाने के लिए नहीं कहता किन्तु मुझे तुम्हारा यह कार्य जरा भी पसन्द नहीं।"

असीम बाहर जाने को उद्यत हुआ। छन्दा ने उसे रोका, "कहाँ जा रहे हो भैया ?"

"चाय खाने।"

"मैं अभी बना देती हूँ।"

"नहीं, मैं बाहर जाकर पाऊँगा।" इतना कहकर असीम बाहर चला गया। वह मन ही मन सोचने लगा, "अधिक देर तक मेरा यहाँ ठहरना झगड़े को जन्म देगा।

गली वाली छोटी सी चाय की दुकान में उस समय चार व्यक्ति बैठे थे।

असीम भी उनमें जाकर चुपचाप बैठ गया। उन चारों की बात बहुत गर्म थी। देश में चल रहे साहित्य पर।

एक बढ़ी हुई दाढी वाले महाशय यह कह रहे थे कि बंगाली साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव गहरे रूप से पड़ रहा है। मैंने शेक्सपियर पढ़कर ,डी० एल० राय' को पढ़ा तो ऐसा लगा कि उनका प्रत्येक नाटक उमसे अनुप्रेरित है।

एक धोती ओढ़े महाशय गर्ज कर बोले, "अनुप्रेरित साहित्य की मौलिकता नष्ट नहीं हो जाती। हर व्यक्ति एक दूसरे की कृति से प्रेरणा लेता ही आया है।"

बात बढ़ती गई। शरतचन्द्र पर आ कर रुकी। सभी ने एक स्वर में कहा, "शरत् शरत् है।"

फिर बात हिन्दी के गल्प पर चली। उस तरुण ने नाक भौं सिकोड़ कर कहा, "मैं हिन्दी जानता हूँ। मैंने राहुल सांकृत्यायन की 'वोल्गा से गंगा' पढ़ी। भाई, अपने ढंग की एक अद्भुत पुस्तक है। शेष रुचिकर नहीं।" हिन्दी साहित्य पर उन्होंने बात करना अच्छा नहीं समझा। बात अंग्रेजों पर आकर रुक गई। उन्हें डट कर गालियाँ दी गई।

असीम चुप था। वैसे अंग्रेजों को गालियाँ देने में वह भी पीछे रहने वाला नहीं था। वास्तव में उन दिनों अंग्रेजों को भला-बुरा कहना देश के तरुणों के लिए गौरव का विषय समझा जाता था। असीम भी गोरी हकूमत के विरुद्ध एक छोटा-मोटा भाषण देकर गौरान्वित होने में तनिक भी पीछे नहीं रहता था। लेकिन इस समय वह इतना अशान्त था कि यदि भाषण देने का दुस्साहस कर लेता तो वह मर्यादा का उल्लंघन कर अंग्रेजों को बड़ी निम्नकोटि की गालियाँ बक देता जिन्हें पुस्तक में लिखना कठिन है। इसलिए वहाँ पर अधिक देर तक नहीं ठहर सका। उठकर पुनः घर आ गया। छन्दा भात बना रही थी। बच्चा जाग गया था। छन्दा ने उसके बैठते ही कहा, "एक काम तो कर दो असीम दा।"

"हाँ, बोलो।"

"इस बच्चे के लिए विलायती दूध ला दो।"

"देखो छन्दा, मुझे इस बच्चे के लिए कुछ भी काम न कहा करो। मैं तुम्हें स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूँ कि इस बच्चे के कारण कभी मुझमें और तुम में भयंकर संघर्ष हो जाएगा ।"

"छि: छि: ! यह कैसी प्रवृत्ति है ? बड़ी ही दुष्भावना और नीचता है तुम में ! इस बच्चे के प्रति घृणा ? हाय-हाय असीम तुम्हारी आत्मा के निर्माण में घृणा की भावना को विशेष रूप से रखा गया है। यह अबोध बच्चा जो अपने कोमल हाथों से किसी के स्नेह का वरदान माँग रहा हो, उस निर्दोष के प्रति ऐसी क्रूरता अत्यन्त ही अमानवीय है। जाओ, भगवान के लिए इतने कठोर न बनो ।"

झुंझलाया हुआ असीम बाजार की ओर चल पड़ा। मन में आया उसके कि इस झंझट को ही समाप्त कर दूँ पर वह ऐसा नहीं कर सका। छन्दा के समक्ष उसकी कठोरता क्षणिक है। यदि यह क्षणिकता स्थायित्व की ओर अग्रसर होती तब छन्दा रो पड़ती थी और असीम विवश आज्ञाकारी शिष्य की तरह उसकी आज्ञा-पालन में दत्तचित हो जाता था।

वह दूध लेकर लौट आया था। आते ही उसने नाराजगी के स्वर में कहा, "चाहे मैं कठोर मिट्टी का बना हूँ लेकिन ईश्वर के वास्ते मुझे बच्चे के लिए तंग न करो ।"

"नहीं करूँगी, सुनो गली के छोर पर जो दास-गुप्ता की कपड़े की दुकान है, उससे बस दो रेडी-मेड कुर्त्ते ला दो ।"

"वह भी इस बच्चे के लिए ?"

वह स्नेह-दीप्त मुस्कान के साथ बोली, "तो क्या कुर्त्ते मैं पहनूँगी ?"

"तुम इतनी निष्ठुर क्यों हो रही हो ?"

"किसी के हित में सोचना यदि निष्ठुरता है, फिर सहृदयता किसे कहोगे ?" छन्दा उसके समीप आई। चुहलबाजी से बोली, "तुम भी विचित्र प्राणी हो, व्यर्थ ही इस बच्चे के प्रति रुष्टता व्यक्त कर रहे हो ? देखो न

कैसे मुस्करा रहा है ? क्या निश्छल मुस्कान की इतनी भी कीमत नहीं कि दो कदम जाकर तुम इसके लिए दो कुर्ते ला दो।"

असीम फिर पूर्ववत झुंझलाहट के साथ गया और आया। वह अत्यन्त अवश हो उठा। उसके विचारों में आन्दोलन सा मच गया "यह अप्रत्याशित एक अपरिचित बच्चे के प्रति अतुल ममता का हो जाना पागलपन के सिवाय और क्या हो सकता है ? कोई बात नहीं ? प्रयोजनहीन कार्य नदी के ज्वार की भाँति होते हैं जो उठते हैं और शाँत हो जाते हैं। दो दिन में जब छंदा इसकी सेवा सुश्रुषा से शाँत हो जाएगी तब अपने आप ही इस बच्चे से घृणा करने लगेगी। प्रायः हर प्राणी में पहले-पहल नवीन वस्तु और कार्य के प्रति बड़ा ही उत्साह और दिलचस्पी पाई जाती है। बाद में जब कठिनाइयाँ और परेशानियाँ आती हैं तब वह उसके प्रति चिड़चिड़ा हो जाता है। यह मानव-स्वभाव है अतः मुझे धैर्य और सहानुभूति के साथ प्रतीक्षा करनी चाहिए।

>

१२



अभी सूरज की सहस्त्र रश्मियों ने संसृति को आलोकित करना प्रारंभ नहीं किया था। सर्दी के कुहरे सा अन्धकार छाया हुआ था। छंदा नित्य की भाँति गंगा-स्नान के लिए निकली।

कुछ मारवाड़ी स्त्रियाँ सिर पर बड़े-बड़े कीमती सोने के 'बोर' बांधे, मीराँ के गीत गुनगुनाते गंगा-स्नान करने जा रही थीं। विधवा बंगालिनें बड़ी शांत-मुद्रा में जाती थीं। एक बिहारी जमादार तेज स्वर में कोई मैथिली-गीत गा रहा था।

छंदा इन सब की अभ्यस्त थी। वह सदा निर्भय और निश्चिंत होकर गंगा-मैया की ओर जाती थी। रूपवती होने के कारण कभी-कभी वह भक्तों के मन को क्षण भर के लिए अवश्य विचलित कर दिया करती थी।

गंगा-स्नान से निवृत होते-होते सूर्य-देवता उदित हो गए थे। उज्ज्वल प्रकाश से गंगा-मैया का रेतीला जल दीप्त हो उठा। लहरों पर किरणों का नृत्य मनोहारी लग रहा था। छन्दा ने आज जैसे भास्कर प्रभु को अर्घ्य चढ़ाया वैसे ही उसे चिंता का झटका लगा। यह कितनी व्यग्र करने वाली बात है कि एकाग्रिता की चेष्टा में प्रयत्नशील रहने पर उसमें अवरोध उत्पन्न हो जाए। निर्वेद की अराधना में संसारिक व्याघात ! छन्दा तिलमिला उठी।

उसने अपने मन की शक्तियों को संचित किया। पलके बन्द की। समाधिस्थ होना चाहा। बीस-पचीस क्षण रही भी। पर उसके अन्तर के एक कोने से किसी बच्चे का करुण-क्रन्दन उठा। उसे लगा कि कल जिस गंगा मैया ने उसे प्रसन्न होकर पुत्र दिया है, आज उसकी अर्चना में उस बच्चे की चिंता अवरोध उत्पन्न कर रही है। वह चंचल हो उठी। उसने झट से चन्दन की बिन्दियां लगाईं और घर की ओर चल पड़ी।

रास्ते में ही उसे ज्योतिर्मय मिल गया।

"छन्दा।"

छन्दा एकदम ठिठक कर खड़ी हो गई। "देखा-ज्योतिर्मय।" स्नेह सिक्त स्वर में बोली, "अरे ज्योतिर्मय बाबू आप, क्या आप यहीं पर हैं ? बहू माँ कहाँ हैं ?"

"गाँव।"

"सब अच्छे तो हैं ?"

"ईश्वर की दया से।" ज्योतिर्मय छन्दा के सन्निकट आ गया। छन्दा ने निर्दोष मुस्कान के साथ कहा, "गाँव का हाल-चाल कैसा ?"

"मैं क्या जानूं ? मैं भी इधर गाँव गया ही नहीं। माँ की चिट्ठी आ जाती है, उससे मंगल की खबर मिलती रहती है।"

"आप गाँव में कैसे रह सकते हैं ? भले ही बेचारी बहू माँ आपकी स्मृति में दुखी रहा करे। स्वामी के वियोग का संताप संतान के कारण ही विस्मृति के आवरण में डाला जा सकता है ? बेचारी बहू माँ, आप चले जाइए न छोटे सरकार।"

"माँ तुम्हें वहाँ बुलाना चाहती है ? हर चिट्ठी में कुछ न कुछ तुम्हारे बारे में होता ही है।.....छन्दा. गाँव वापस चलो न ?"

"मैं अब गाँव वापस नहीं जा सकती। असीम-भैया मुझे छोड़ना नहीं चाहते।"

"सच कहती हो, भला तुम्हें छोड़ना कौन चाहेगा ?

"नमस्कार ! देर हो रही है फिर आपको भी गंगा-स्नान करने जाना है। इधर आने से आपकी धार्मिक-प्रवृत्ति बदल गई है।" जाते-जाते छन्दा ने नया प्रश्न किया।

"नहीं तो, मैं तुम्हारा पता लगाने आया था।"

"कैसे ?"

"मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि बंगाली-विधवा गंगा-स्नान किए बिना कैसे रह सकती है ? यह अनुकूल ऋतु है, यदि शिशिर की हिमानी हवाएँ चलती रहें, वह जरूर गंगा में डुबकी लगा कर अपने मन के देवता को पवित्र करेंगी।"

छन्दा ने उसकी चतुराई पर मुस्करा भर दिया।

"मेरे घर चल कर चाय नहीं पियोगी ?"

"ना, ना, सवेरे-सवेरे प्रभु को स्मरण किए बिना भला कैसे कोई विधवा चाय पी सकती है ? फिर मुझे जल्दी भी जाना है।"

"क्यों ?"

वह चलती हुई बोली, "बच्चा, रो रहा होगा।"

"बच्चा ?" वह लपक कर छन्दा के समीप आया। आवेश में बोला, "बच्चा, किसका बच्चा ?"

"मेरा बच्चा।"

"तुम्हारा बच्चा !" ज्योतिर्मय को लगा कि उसे तुरन्त चक्कर आने वाला है।

"मेरे घर आ जाना, यही नीमतल्ला घाट स्ट्रीट पर लाल कोठी।"

विस्मयाभिभूत ज्योतिर्मय देखता ही रहा। छन्दा उसकी आँखों से ओझल हो गई।

उसके चले जाने के बाद ज्योतिर्मय सीधा अपने घर आया। रास्ते भर वह महसूस करता रहा कि इस छन्दा को क्या हो गया है ? वह सीधी-सादी और भोली-भाली। उसके बारे में स्वप्न में भी ख्याल नहीं किया जा सकता कि यह इतना बडा पाप कर सकती है ? धीरे-धीरे उसके उद्विग्न चेहरे पर कामुकता जनित विकृतियाँ उभरती गईं। वह घर आकर एकांत में खिलखिला कर हँस पड़ा। पदारथ चाय बना कर ले आया था। चाय पीकर उसने वस्त्र बदले और चला।

छन्दा अपने घर पर पहुँची। उसने जैसे ही घर में कदम रखा वैसे ही असीम घृणा से नेत्र तरेरता हुआ बोला, "आखिर तुम मुझ से क्या चाहती हो ? इस शांति के शत्रु को छोड़ कर आओगी कि नहीं ? तुम्हारे जाते ही इसने घर को सिर पर उठा लिया था।"

छन्दा के अधरों पर सदा की भाँति अपूर्व धैर्य झलक रहा था। वह स्निग्ध मुस्कान के साथ कमरे में प्रविष्ट हुई। हाथ के लोटा को रख कर बोली, "जब यह रोने लगा तब तुमने क्या किया ?"

"किया क्या ? एक बार गुस्से में पागल होकर सोचा कि कम्बख्त को सड़क पर फेंक दूँ ? किन्तु तुम्हारे भय से ऐसा नहीं कर सका।"

छन्दा इस बात पर हँस पड़ी।

"तुम हँस क्यों रही हो ?" वह हठात उसकी ओर मुखातिब होकर बोला, "मेरी आत्मा इस बच्चे के कारण संकट में पड़ी हुई है और तुम""।" उसने बच्चे को तुरन्त जमीन पर लिटा दिया।

"अरे रे""तुम ऐसा क्यों कर रहे हो ? सड़क पर फेंकने के लिए क्या अभ्यास करना पड़ता है ?"

उसका इतना कहना था कि असीम ने झट से बच्चे को अपनी गोद में पुनः उठा लिया।

छन्दा उससे बच्चा लेकर बोली, "फिर तुमने उसे मेरी तरह सीने से चिपका लिया। पुचकारा और चूमा। इस पर भी चुप नहीं हुआ तो तुमने इसे

लाखों गालियाँ दीं। दुष्कामनाएँ कीं। फिर अवश्य राजा मुन्ना-राजा बेटा कहा। सुलाने की प्राणप्रण से चेष्टा की और अंत में इसे गोदी में लेकर टहलने लगे।" छन्दा ऐसे यकायक मौन हो गई कि जैसे कमरे में कोई है ही नहीं। निस्पंद-नीरव क्षण असीम के लिए असह्य हो उठे। उसके मन की समस्त वाचालता केवल हाथों की अंगुलियों में संचित हो गई थी। उसकी अंगुलियाँ उसकी अपनी जाँघों पर इस तरह नर्तन कर रही थीं जिस तरह तबला-वादक की तबले पर अविराम गति से नाचती हैं।

तुम्हारे दया के लोक में इस बच्चे के प्रति अनुराग की एक अजस्र धारा है। उस धारा का प्रथम प्रवाह घृणा में भीग कर हमारे बीच प्रकट हुआ है। यह शुभ ही है। अनागत मंगल का सन्देशवाहक है।"

"तुम्हारा यह मनोविश्लेष उचित नहीं है, मैं इस बच्चे के कारण बड़ा ही परेशान रहता हूँ। कहीं मुझे घृणा का उन्माद सवार हो गया तो अनर्थ हो जाएगा। मैं इस फूल से कोमल बच्चे की निर्मम हत्या कर दूँगा।"

छन्दा मुस्करा पड़ी। उसकी मुस्कान का वर्तमान परिस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं था। उसका अस्तित्व भयानक वातावरण से नितान्त पृथक था।

"तुम इसकी हत्या कर सकते हो, यह मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकती? मुझे विश्वास है और ईश्वर तुम्हें सद्बुद्धि दे कि तुम इस बच्चे को इतना प्यार करो, जितना तुम अपने आपको कर रहे हो? चैतन्य महाप्रभु तुम्हारी करुणा को जगाएं।...देखो बच्चा सो रहा है, अब तुम शांति से बैठ जाओ, मैं तुम्हारे लिए चाय बना देती हूँ।"

"नहीं, मैं चाय बाहर पीऊँगा।"

"असीम दा, इतने निष्ठुर क्यों बन रहे हो? हर प्राणी को हर खिलौना पसंद नहीं आता। प्रत्येक का अपना अलग-अलग क्रीड़ा-स्थल होता है। भिन्न-भिन्न क्रीड़ाएँ होती हैं। किन्तु हमें इतना सहिष्णु बनना ही चाहिए कि हम एक-दूसरे की इच्छा पर आघात न पहुँचाएँ। फिर तुम मेरे बड़े भाई हो? क्या

तुम मेरी इतनी आकांक्षा भी पूर्ण नहीं कर सकते ? लोग कहते हैं कि भाई अपनी बहिनों की बड़ी-बड़ी आशाओं को पूरा कर देते हैं।" छन्दा रो पड़ी।

असीम प्रशंसा सुन कर ठंडा हो गया। आदमी प्रसंशा से तुरन्त झुका दिया जाता है। बड़े-बड़े आफिसर से यदि आपको कोई कार्य कराना हो तो जाकर इतना कह दीजिए श्रीमान् जी, यह आपके बाएँ हाथ का खेल है। फिर देखिए, वह कितने उत्साह से कार्य करता है।

असीम पिघल गया। वह क्षुब्ध वातावरण को समझौते के स्वर से मधुर करने लगा। "छन्दा ! इस बच्चे ने मुझे बहुत परेशान किया था। मैं कहता हूँ कि यदि मेरी जगह तुम भी होतीं तो क्षुब्धा हुए बिना नहीं रह सकतीं। ऐसे चिल्ला रहा था जैसे मैं इसे चुटकियाँ भर रहा हूँ। अब तुम रोना बन्द कर दो, भविष्य में मैं किंचित भी गुस्सा नहीं करूँगा।"

"फिर इसे संभालो, मैं तुम्हारे लिए बढ़िया चाय बना देती हूँ।"

असीम ने बच्चे को ले लिया। अब उसके मन में हल्की सी खीझ अवश्य थी।

छन्दा देखते-देखते चाय बना लाई।

असीम को देकर बोली, "तुम व्यर्थ ही गुस्से होते हो। देखो न, बच्चा कितना सुन्दर है!"

"सुन्दर जरूर है।"

"फिर एक चुम्बन लो न ?"

"मैं चाय पी रहा हूँ।"

"फिर तो मजा आ जाएगा, तुम्हारे बाप जब मैं इस 'प्रसन्न', हाँ, इसका नाम प्रसन्न ही ठीक रहेगा, को चूमूँगी तब वह बड़ा मधुर लगेगा।"

असीम को प्रसन्न का चुम्बन लेना ही पड़ा। छन्दा के मुख पर प्रसन्नता की अपार रेखाएँ देख कर असीम के मुँह से हठात् निकला, "तुम ऐसे खुश हो रही हो जैसे यह तुम्हारा अपना बेटा है ?"

छन्दा विह्वल हो गई। अपनी आँखों को कमरे के फर्श पर जमाती हुई, बिल्कुल धीमे स्वर में बोली, "मैं विशेष पढ़ी-लिखी नहीं हूँ, शास्त्रों में भी मैंने रामायण, महाभारत का अध्ययन किया है। हाँ, बाबा जातक-कथाएँ ले आए थे, उन्हें भी मैंने पढ़ लिया।... इन सब में नारी का चरित्र ही विविध रूप में चित्रित हुआ है। ऐसा लगता है कि नारी का गुण-अवगुण विशेष ही हमारे जीवन का सार है? नारी सदा से घृणा और प्यार की अधिष्ठात्री रही है। संघर्ष की विभीषिका में शांति का उद्घोष और शाँति के क्षणों में युद्ध का तुमुल नाद करती है। उस नारी की एक सखि या एक लघुता किसी अपरिचित बच्चे पर असीम स्नेह दान कर दे, तब किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिए।...आखिर यह भी किसी पुरुष का पौरुष है और नारी के महासमर्पण का दान।" छन्दा ने यह कह कर ज्योंही चाय के प्याले को मुँह से लगाया त्योंही असीम शीघ्रता से बोला, "अरे....अभी तुमने पूजन कहाँ किया है?"

यह निश्छल हंस-हंस कर बोली, "आज से जीवन्न देवता का पूजन जो आरम्भ कर दिया है, निष्प्राण की प्रतिष्ठा से सप्राण का अर्पन अधिक हितकर हो सकता है।"

वह चाय पीने में निमग्न हो गई।

कुछ देर दोनों चुप रहे। कदाचित अपने-अपने विचारों में खो गए हों। तभी नीचे से ज्योतिर्मय ने पुकारा, "छन्दा!"

"आइए, ज्योतिर्मय बाबू!"

ज्योतिर्मय के लिए सुन्दर आसन का प्रबन्ध किया गया।

'चाय।" छन्दा ज्योतिर्मय के हाथ में चाय का प्याला थमा कर बोली, "असीम, यह हैं ज्योतिर्मय, हमारे बड़े सरकार के लाडले बेटे। वैसे आदमी बड़े अच्छे हैं पर कठोरता आवश्यकता से अधिक मात्रा में आ गई है। हठ ऐसा जैसा कि दुर्वासा का।"

असीम ने परिचय प्राप्त करते ही कहा, "मैं सरकारी नौकर हूँ, क्लर्क !"

"छन्दा को मेरी माँ बहुत प्यार करती हैं।"

इस छोटे से वाक्य ने असीम के मन में सदा की भाँति आज भी जबरदस्त प्रतिक्रिया की। वह वैसे ही शांति और एकांत को पसंद करने वाला था। जब उसकी माँ का देहाँत हुआ तब उसे दुख के साथ आनन्द भी हुआ था। उस समय उसके अश्रुमुखी हृदय का पोस्टमार्टम अत्यन्त जरूरी था क्योंकि कुछ अनुभूतियों को और इच्छाओं को जब तक चीरेंगे नहीं तब तक उसके सत्य से परिचित नहीं हो सकेंगे।

असीम की माँ बड़ी बातूनी थी। बातूनी भी ऐसी, जैसी भोली बुढ़िया जिसको बातचीत में यह ख्याल भी नहीं रहता कि जो वह कह रही है, उसका प्रसंग ठीक है या नहीं, वह उसकी प्रतिष्ठा अनुकूल है या नहीं, वह उसके पुत्र के जीवन को आगे बढ़ाएँगी या घटाएँगी ? कहीं बातों ही बातों मे वह अपनी दरिद्रता का इतिहास तो नहीं खोल रही है ? असीम की माँ इस श्रेणी की इमानदार स्त्री थी। मिथ्या भाषण उसे तनिक भी नहीं रुचता था। असीम उससे परेशान रहता था। वह उसे समझाया भी करता था कि वह उसके बाबा के जीवन पर अधिक प्रकाश न डाले। तब वह जानती है कि उसका पति अत्यन्त चरित्र-हीन और सस्ती वेश्याओं के यहाँ जाया करता था। परन्तु असीम की माँ अपने वचन पर दो दिन से अधिक नहीं रहती थी। तीसरे दिन उसका भोलापन ऐंठने लगता था और फिर वह पुनः उन्हीं चर्चाओं में तन्मय हो जाती थी।

असीम को बहुत बुरा लगता था। कभी-कभी वह माँ से झगड़ कर एक-दो दिन के लिए अपने मामा के यहाँ चला जाता था। मामा के यहाँ से उसे जल्दी ही लौट आना पड़ता था। एक तो उसके मामा उपदेश देने में बड़े पटु थे। फिर मानव-कर्त्तव्य पर उनकी अपनी दलीलें। इस पर मामा की चार-चार पुत्रियाँ ! वह अशांत होकर भाग आता था।

माँ आते ही रोकर पूछती, "इतने जल्दी कैसे आ गए ? यदि तुम दो दिन और नहीं आते तो मैं जहर खा लेती।"

असीम रोने लगता।

चार दिन के लिए सभा समाप्त हो जाती।

ऐसे व्यक्ति 'प्यार' शब्द पर निरर्थक विवेचन करते ही रहते हैं। उनमें एक अविश्वास रहता है। यह अविश्वास उन्हें मानसिक यातना देता रहता है।

असीम कठिनता से अधरों पर स्मित-रेखा लाता हुआ बोला, "यदिस्वामिनी अपनी दासी को प्यार नहीं करेगी तो फिर किसे करेगी।"

"नहीं असीम भैया, माँ इसे अपना समझ कर प्यार करती है। मेरे बाबा भी इसके बाबा के घनिष्ठ मित्र थे।"

असीम के मन को तुरन्त खतरा हुआ। ज्योतिर्मय ने 'भैया' शब्द किसी भावना से प्रेरित होकर कहा हो पर असीम को लगा कि यह उससे मित्रता गाढ़ी करके यहाँ आने-जाने का रास्ता खोलना चाहता है।

इसलिए वह झट से बोला, "बात यह है कि आप का आगमन कुछ ठीक समय नहीं हुआ है, मुझे दफ्तर जाना है और छन्दा को भोजन पकाना है। आप इसे हमारा अनुचित व्यवहार मत समझ बैठिएगा, क्यों छन्दा ?"

छन्दा मुस्करा कर बोली, "ये रईस लोग ठहरे। मोटर पर बैठकर फिर आजाएँगे लेकिन कभी इनसे घनिष्टता बढ़ाने का प्रयास मत करना ?"

ज्योतिर्मय कुछ समझ नहीं पा रहा था। इनके कथनों में व्यंग की मात्रा अधिक है या किसी का अपमान करना चाहते हैं ? तो भी वह अनचाही हँसी के साथ बोला, "मुझसे मित्रता क्यों नहीं बढ़ानी चाहिए ?"

छन्दा तपाक से बोली, "तुम अमीर लोगों के मन का भेद पाना अति दुर्लभ है। छोटा आदमी आपके सद्व्यवहार के कारण आपसे बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए बैठा रहता है। दैनिक-सम्बन्धों पर वह यह सोचता है कि आपसे जो

माँगेगा, मिल जाएगा लेकिन जब वह सहायता माँगने आता है तब आप उसे सहायता इसलिए नहीं देते क्योंकि वह गरीब है। गरीब से आप सैद्धान्तिक रूप से भी घृणा करते हैं।··· क्या बता सकते हैं कि इस बार आपने कितने किसानों के खेत कुड़क कराए?"

ज्योतिर्मय अभी इन सब बातों के लिए तैयार होकर नहीं आया था। छन्दा बहुत दिनों में मिली थी इसलिए वह अपनी समस्त चेतना के साथ छन्दा से ही बात करने का इच्छुक था। उसे यह अप्रासंगिक चर्चा रुचिकर नहीं लगी। फिर छन्दा को संतोष देना जरुरी ही था। अपनी करुणा के परिचय का ख्याल रखता हुआ वह झूठ बोला, "बाबा की मृत्यु के पश्चात् मेरी कठोरता समाप्त हो गई है। मैंने अपना काया-कल्प कर लिया है। अब मैं, कुड़क कराने का विचार भी नहीं कर सकता। यह कृत्य अत्यन्त पाशविक है। ····छन्दा! प्राणी सदा एक सा नहीं रहता।"

"यदि यह सत्य है तो मैं ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ।"

वह कृतिम गंभीरता का परित्याग करके पुलक कर बोला, "छन्दा! क्या तुम और असीम भैया मेरे घर खाना खाने नहीं आ सकते?"

असीम का मानस ज्योतिर्मय के कारण आतंकित हो रहा था। वह छन्दा के परवाह किए बिना ही तुरन्त बोला, "नहीं-नहीं, हम नहीं आ सकते। 'प्रसन्न' को कौन रखेगा? छन्दा का यह लाड़ला छन्दा को एक पल के लिए भी छोड़ने को तैयार नहीं है। आप हमें इसके लिए क्षमा करें।"

असीम जिस भावावेश में बोला था, उसने दोनों को आश्चर्य में डाल दिया। छन्दा उस पर अपनी पैनी दृष्टि जमा कर बोली, "क्या असीम यह ठीक रहेगा कि हम इनकी जरा-सी बात न मानें। हम दोनों आएँगे ज्योतिर्मय बाबू।" छन्दा उसकी ओर उन्मुख हो गई, "यह बच्चा भी हमारे साथ ही रहेगा। इसको मैं किसी दूसरे के भरोसे पर नहीं छोड़ सकती।"

असीम उठता हुआ बोला, "मुझे क्षमा कीजिए, मैं आने में सर्वथा असमर्थ हूँ।"

ज्योतिर्मय गंभीरता से बोला, "छन्दा, निश्चय करो न, तुम अकेली आओगी या असीम भैया भी ?"

"यदि असीम भैया नहीं आएँगे तब मैं अकेली ही आऊँगी।" वह दृढ़ता से बोली।

"ठीक पाँच बजे ?"

"निश्चय।"

ज्योतिर्मय कुछ देर तक विचार-विमुग्ध सा बैठा रहा। छन्दा उसे अर्थभरी दृष्टि से निहारती रही। असीम द्वार के बाहर खड़ा इस दृश्य को देखकर अपनी आकृति को गंभीरतम बना रहा था। वह जहाँ खड़ा था वहाँ छन्दा और ज्योतिर्मय की दृष्टि नहीं पहुँच सकती थी। वह साँस रोककर अगले वार्तालाप की प्रतीक्षा कर रहा था परन्तु उसके हाथ निराशा ही लगी। छन्दा और ज्योतिर्मय खोए से निश्चल बैठे थे।

अन्त में सकुचाते हुए ज्योतिर्मय बोला, "यह बच्चा किसका है ?"

"इसका मुख किससे मिलता है ? क्या मेरे चेहरे की इससे समता नहीं है ? कम से कम नाक मेरी नाक से बिल्कुल मिलती है।" छन्दा का इतना कहना था कि प्रसन्न मुस्करा पड़ा।

छन्दा पुलकित हो गई। उसकी ठोड़ी पकड कर हिलाती हुई, ज्योतिर्मय से बोली, "देखो, यह मेरी तरह हँस भी रहा है।"

ज्योतिर्मय ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। वह चलने लगा। बोला, "मैं पाँच बजे तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।"

असीम ने गौर से ज्योतिर्मय को देखा। उसका मुख इतना उदास था जितना जूए में हारा कोई बड़ा खिलाड़ी।

"जरूर यह छन्दा को प्यार करता है।" उसने मन ही मन कहा और छन्दा के समीप आकर विनीत स्वर में बोला, "छन्दा, मुझे यह व्यक्ति अच्छा नहीं लगता। हम उसके यहाँ भोजन करने नहीं चलेंगे।"

'हमारा' का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? मैं अकेली ही जाऊँगी ।"

"क्यों, क्या तुम मेरा इतना भी कहना नहीं मान सकती ? मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम वहाँ किसी भी आग्रह पर न जाओ । उसकी आँखों में कुछ और था और मन में कुछ और ।"

छन्दा सदा की भाँति मुस्करा पड़ी, "अब तुम अन्तर्यामी भी हो गए । दूसरों के मन की बात भी जानने लगे ?" छन्दा के स्वर में उपहास था । असीम नादान बालक की भाँति उसे एकटक देख रहा था । असीम ने एक बार पुनः प्रार्थना की, "यह छोटा सा कहना मेरा भी मान लो ।"

"आखिर क्यों ? पहले तुम्हें 'प्रसन्न' अच्छा नहीं लगा और अब तुम्हें ज्योतिर्मय बाबू और कल फिर तुम्हें कोई और ? क्या तुम्हारे हृदय में दूसरे के प्रति घृणा के अलावा और कुछ भी है ?"

असीम गुस्से में भर उठा । कुछ बोला नहीं ।

× × ×

१३



नमिता स्वास्थ्य-लाभ करके लौट आई थी। उसका शरीर क्षीण हो चुका था। सौन्दर्य की आभा पर चिर अवसन्नता का आवरण पड़ चुका था।

वसुधा नमिता को देखकर हर समय अज्ञात शक्ति के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती थी। जिस नमिता के प्रति उसके अन्तर का समस्त आलोक अनुराग बन कर भासित था, वहाँ अब केवल विवशता भरी करुणा। नमिता इसे सहन नहीं कर सकती थी। वह भीतर ही भीतर घुलती रही, जलती रही।

आज अचानक माँ ने बात ही बात में ज्योतिर्मय की चर्चा छेड़ दी। वसुधा नमिता से बोली, "जमींदार अमोलक बाबू का लड़का दो बार आया था। तुम्हारे बारे में पूछ रहा था। क्या तुम उन्हें कहकर किसी नौकरी का बंदोबस्त नहीं कर सकतीं?"

नमिता समझ गई कि माँ उसे अपनी आँखों से दूर करना चाहती है। उसे अब उसका कलंकित चेहरा सह्य नहीं। वह चाहती है कि नमिता कम से कम उसके सम्मुख रहे।

नमिता ने शांत स्वर में उत्तर दिया, "वे बड़े लोग हैं माँ, जितने ऊपर से करुणामय दिखते हैं, उतने ही हृदय के कठोर होते हैं। उनके पास संसार की महान् वस्तु है–धन! धन के कारण उनकी क्रूरता, नीचता, और पाशविकता

से हम परिचित नहीं हो सकते। वास्तव में वे स्नेह के पात्र तक नहीं हैं। हमें चाहिए कि इन विलास के कीड़ों को पाँवों से कुचल दें, इनसे अमिट घृणा करें, इनसे गहरा द्वेष रखें।"

वसुधा क्षण भर के लिए बेटी की बात सुनकर सन्न रह गई। उसकी आँखों में निमेष दीखा। बोली, "आज तुम क्रान्तिकारियों सी बात क्यों करने लगी ?"

"क्यों न करूँ ? ज्योतिर्मय जैसे ही एक धनाढ्य व्यक्ति ने मुझे छला। माँ, मैंने अपने हाथों अपने पुत्र का त्याग किया। एक नारी के लिए इससे बड़े दुर्भाग्य की बात और क्या हो सकती है ?"

वसुधा ने तड़प कर कहा, "चुप हो जाओ। हजार बार कह दिया है कि अतीत को स्मरण न करो। यह अतीत तुम्हारे भविष्य को अजगर की भाँति निगल जाएगा।"

नमिता माँ से अधिक नहीं टकराती थी क्योंकि उसका परिणाम बड़े अश्लील गालियों में निकलता था। माँ अपना धैर्य तुरन्त विस्मृत कर देती थी।

वसुधा कड़ककर बोली, "ज्योतिर्मय ऐसा नहीं है।"

"अजगर की दो जात नहीं होतीं। बिच्छू अपने स्वाभाव का त्याग थोड़े ही कर सकता है। वह डंक मारेगा ही।"

"तुम उसके पास जाओ और परखो।"

"जाँच सोने की होती है, लोहे की नहीं। लोहा, लोहा ही होता है।"

माँ झल्ला पड़ी, "फिर कुछ करती क्यों नहीं। इतना दीर्घ जीवन कैसे काटोगी ?"

समस्या ज्वलंत थी। नमिता चुप हो गई। उसकी अँखियों में व्यथा अश्रु बन कर तैर उठी। वह उठी और एकांत में आकर बैठ गई।

दीर्घ जीवन धूल धूसरित और बन्ध्या धरती का करुण-क्रन्दन ! दूर, अनंत तक निराशा के भटकते प्राण। वह कैसे जीएगी ? वह कैसे स्वयं को पालेगी ?

बंगाल में ऐसी कितनी ही युवतियाँ हैं, उनका क्या मूल्य ? सामाजिक विषमताओं के बीच वह दया के सदृश है।

तब नमिता को अपनी सहेली अनुसूइया की याद हो आई। यह अनुसूइया नहीं होती तो उसके बच्चे को वह मौत के मुँह में नहीं डालती। इसी अनुसूइया ने ही कहा था, "सूर्य भगवान के प्रताप का परिणाम 'महारथी कर्ण' के रूप में जब निकला तब कुन्ती समस्त ममत्व का परित्याग करके कर्ण को फेंक आई थी। ... कबीर की भी कुछ इसी प्रकार की चर्चा है। मेरा ऐसा विश्वास है कि इस प्रकार के उपेक्षित तिरस्कृत बच्चे जब मेधावी बनते हैं तब उनके समानान्तर कोई भी नहीं चल सकता। कबीर अद्वितीय हुआ और कर्ण की कोई समकक्षता नहीं।"

नमिता रोमांचित हो गई। विस्मृति के गर्भ में छिपी स्मृतियाँ उभरने लगीं।

अनुसूइया कौन थी, क्या थी, यह आज तक साकार और निराकार की भाँति विवादास्पद था। कुछ का कहना था कि वह मराठिन है और कुछ का कहना था कि वह बंगालिन है। एक दिन 'मधुरिमा' ने नया रहस्य खोला कि अनुसूइया पटना की रहने वाली है और कुछ ही दिनों के बाद उसके प्यार के उम्मेदवार 'श्रीकृष्ण' ने निश्चयात्मक स्वर में कहा कि वह उत्तर प्रदेश की है, अतः वह उसे ही प्यार करेगी। आखिर संस्कृति-सभ्यता और रहन-सहन की एकरूपता भी दो हृदयों के सम्मिलन में कम महत्व नहीं रखती। लेकिन सेठ बिशनदास के सुपुत्र किसनदास की दलील भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी। उसने एक दिन गर्वित-मुस्कान के साथ कहा कि अनुसूइया मारवाड़िन है, आज मैंने उसके घर में 'बोर' देखा। यह बोर मारवाड़िनों के अलावा दूसरा कोई पहनता ही नहीं। उसका मारवाड़िन होना किसन के लिए कम गौरव की बात नहीं थी।.......जितने मुँह उतनी बातें और जितने मन उतने विचार।...... उपन्यासकार को इससे कोई वास्ता नहीं। वह उसे एक युवती के रूप में जानता है। वह जानता है कि अनुसूइया एक विचित्र

किस्म की युवती है। घृणा, क्रूरता, द्वेष, क्रोध, विरक्ति, अनुरक्ति, स्नेह, प्यार और स्वतंत्रता सभी गुणों का मिश्रण। अत्यन्त स्पष्टवादी और प्रसन्न-बदन!

नमिता से उसकी भेंट ज्योतिर्मय ने कराई थी। ज्योतिर्मय ने कहा था कि वह एक रहस्यमयी है। तुम उसे समझ नहीं सकोगी। वैसे उसकी जागरूकता को देख कर यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह थोड़े रूप में भी विक्षिप्त है।

एक दिन नमिता और ज्योतिर्मय उसके घर गए।

अनुसूइया ने मधुर-मुस्कान से उनका स्वागत किया।

ज्योतिर्मय ने छूटते ही कहा, "आज तुम बड़ी सुन्दर लग रही हो?"

अनुसूइया ने बिना संकोच के साथ स्पष्ट शब्दों में कहा, "आपको मैं अच्छी लगी, इसके लिए शुक्रिया।"

नमिता उसे भौंचक्की सी देखती रही। उसके मन ने तुरन्त प्रश्न किया, कि नारी-सुलभ लज्जा कहाँ? अनुसूइया के मुख पर पौरुष झलक रहा था।

वे तीनों भीतर आ गए। कमरे में विभिन्न चित्रकारों के चित्र टँगे हुए थे। उनमें एक चित्र राजस्थान के प्रसिद्ध चित्रकार द्वारकाप्रसाद (बीकानेर) का था तो कुछ रामकुमार के भावना-प्रधान चित्र थे जो विभिन्न समाचार-पत्रों से काटकर मढ़ा लिए गए थे। एक चित्र यूरोप के सुप्रसिद्ध चित्रकार पॉल गागिन के नग्न चित्र की अनुकृति थी और एक चित्र में स्त्री-पुरुष के आलिंगन पर उत्तेजित मांस-पेशियों का चित्रण था।......सुधीर खास्तगीर, नन्दलाल बोस, आर्यन के विभिन्न शैलियों के चित्र! मुलगाँवकर के आधुनिक शिव-पार्वती! ये सब चित्र उसकी उस रुचि का प्रतिनिधित्व करते थे जिन्हें ललित कला-रुचि सहजता से कहा जा सकता है।

नमिता ने भरपूर दृष्टि से उन चित्रों को देखा और पूछा, "क्या आप चित्रकारी भी करती हैं?"

"जी नहीं, ये चित्र मैंने कमरे की सजावट के लिए लगाए हैं।"

"परन्तु इन नग्न-कृतियों से ऐसा लगता है कि आप को....।"

"बात यह है कि मेरे यहाँ सब तरह के व्यक्ति आते रहते हैं। इनमें दो ३५-४० वर्ष के भी हैं। उनको ये चित्र बड़े प्रिय लगते हैं क्योंकि प्यार की बात वे मुझसे कर नहीं सकते थे, क्योंकि उनके मेरी उम्र की लड़कियाँ हैं, युग को वे भला-बुरा इसलिए नहीं कह सकते चूँकि उनमें युग के सभी दुर्गुण मौजूद हैं, आधुनिक सभ्यता को वे इसलिए घटिया नहीं कह सकते क्योंकि उन दोनों ने कब्र की मंजिल को देख कर होटलों में शराब पीना शुरू किया है।······मेरी उन दोनों से भेंट भी बड़े विचित्र ढंग से हुई थी। मैं अपने मित्र के साथ यहाँ की प्रसिद्ध होटल 'ग्रेट ईस्टर्न' में खाना खाने गई थी। खाना खाने के बाद मुझे कुछ पीने की इच्छा हो गई। वे मित्र पीने से परहेज रखते थे। उनका कहना था कि पीने से उनकी पत्नी सख्त नाराज होती है।······मैं अकेले पीने लगी। हमारे पास दो कुर्सियाँ खाली पड़ी थीं। वे दोनों हमसे आज्ञा लेकर बैठ गए और पीने में आनन्द लेने लगे।······थोड़ी देर के बाद मेरी उनसे दोस्ती हो गई। पहले-पहल उन्होंने मुझे बाजारू औरत ही समझा। इसी गलतफहमी के कारण उन्होंने मुझे दो-चार बार गन्दे संकेत भी किए। एक बार एक ने मेरा हाथ भी पकड़ लिया।"

"आपने विरोध नहीं किया ?" बीच में ही नमिता ने पूछा, "वे अत्यन्त अशिष्ट-असभ्य थे। किसी पर-स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार करना सर्वथा अनुचित है।"

"मैंने कुछ विरोध नहीं किया। क्योंकि मेरा ऐसा ख्याल है कि मेरा सौन्दर्य ऐसा नहीं है कि हाथ लगाने भर से वह कलंकित हो जाए अथवा नारी-धर्म इतना कच्चा नहीं है कि पुरुष-स्पर्श से टूट जाए।······मैं भी उनके संग आनन्द लेने लगी। मेरे मित्र को यह बुरा लग रहा था। मैं उसकी चिंता किए बिना ही उनसे मित्रता बढ़ाने लगी। अन्त में वे दूसरे दिन मुझसे घर मिलने की इच्छा प्रगट करके चले गए।······मैंने देखा कि मेरे मित्र का मुँह उदास है। उसने उठते हुए मुझसे पूछा, क्यों अनु, क्या कल मेरे साथ तुम्हारा प्रोग्राम नहीं रहेगा ?"

मैंने उत्तर दिया, "नहीं, बिल्कुल नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मेरे मित्रों की संख्या इतनी अधिक है कि मैं कल का कोई भी निश्चित-प्रोग्राम नहीं बना सकती ? न मालूम कल तुम्हारे आने के पूर्व मैं कहीं और चली जाऊँ ? हाँ, भेंट हो गई तो अवश्य कोई प्रोग्राम बनेगा।"

वह बेचारा तिरस्कृत प्राणी सा चला गया।

दूसरे दिन वे दोनों मेरे घर आए—तड़के ही। मैं सोई हुई थी। उनके द्वारा पुकारने पर मैं उठी। द्वार खोला।

"आइए।" मैंने उन्हें कहा।

वे आए। आकर बैठ गए।

"आपका घर बहुत अच्छा है।"

"और मैं ?"

अचानक मेरे इस प्रश्न पर वे सकपका गए। जिज्ञासु बालक की भाँति उनकी दृष्टि मुझ पर जम गई।

मैंने पुनः मुस्कराकर पूछा, "क्या आप रात भर सोए या आप सो नहीं सके ? सच सच बताइएगा ?"

मैं आपको पहले ही बता चुकी हूँ कि वे मुझे बाजारू औरत ही समझते थे। उन्हें देखकर मुझे मेरी एक तवायफ सहेली का कथन याद हो आया। उसने यों ही अपनी दुर्दशा का रोना रोकर कहा था कि अब तवायफों में न तो गायिकाएँ पैदा होंगी और न नृतिकाएँ ही। क्योंकि अब भले घरों की औरतों ने हमारा पेशा छीन लिया है। वह इतना कह कर चुप हो गई, पर उसकी व्यथा भरी आँखों में एक प्रश्न और झाँक रहा था। उस प्रश्न को वह जहर का घूँट समझ कर पी गई। पर मैं अपने स्वभाव की हत्या नहीं कर सकी। बोल ही पड़ी, 'क्यों बहन, इस भ्रष्टाचार ने तुम्हारे पेशे को जरूर ठेस पहुँचाई होगी ?' अब वह दृढ़ता से निर्मम होकर बोली, 'बात कड़वी जरूर है पर इन सोसायटी-

गर्ल्स ने हमें तबाह कर दिया.......शराफत की आड़ में इनकी लीलाएँ अधिक असर वाली होती हैं।'.......उन दोनों ने मुझे वैसी ही लड़की समझी थी। मेरे इस प्रश्न से उनकी इस भावना को बड़ा प्रोत्साहन मिला।' एक उचक कर बोला, 'मुझे आपकी बड़ी याद आई।' दूसरे ने उसके वाक्य को बड़ी नाटकीयता से दोहराया। उन दोनों को देखकर मुझे फिल्म के हंसोड़े याद हो आए। मैं हँस पड़ी। इसके बाद मैंने उनसे पूछा, "आप विवाहित हैं ?"

दोनों ने एक साथ उत्तर दिया—'हां।'

'एक एक बोलिए।'

पहला परीक्षार्थी की भाँति सचेत हुआ।

'आप के कितने बच्चे हैं ?'

'चार।'

'लड़कियाँ ?'

'तीन।'

'फिर आप भूल से भी किसी औरत की ओर मत देखिए, नहीं तो आपकी चरित्रहीनता आपकी लड़कियों को आवारा बना देगी। क्यों सेठ जी क्या मैंने झूठ कहा है ?.......शराबी बाप अपने बेटे से यह आशा कैसे रख सकता है कि वह शराब न पिए ?'

सेठ जी चुप। साथी लज्जित।

इसके पश्चात् वे अक्सर आकर इन दोनों चित्रों की आलोचना करते हैं और इन्हें बड़ी पैनी दृष्टि से देखते हैं और मैं इन चित्रों के कारण उन मूर्खों की व्यर्थ की बकवास से बच गई। अब वे अधिक यहाँ बैठना भी पसन्द नहीं करते हैं क्योंकि मैं उन में जरा भी दिलचस्पी नहीं लेती। वे मुझ से कुछ नाराज भी रहते हैं, फिर भी इन चित्रों को देखने के लिए उन्हें यहाँ आना ही पड़ता है। सात बच्चों का पिता अपने घर में नग्न चित्र नहीं लगा सकता, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ।

अनुसूइया के चरित्र के बारे में भी लोगों की भिन्न-भिन्न राय थी । कुछ उसे वास्तव में चरित्रहीन और आवारा कहते थे तथा कुछ उसे साध्वी कहते थे । साध्वी पर इसलिए कम विश्वास होता था क्योंकि ऐसा कहने वाले वे ही प्राणी थे जिन्हें अनुसूइया ने सड़े-गले कुत्ते समझ कर दुत्कार दिया था । वे निराश प्रेमी प्रायः कहा करते थे कि अनुसूइया जिस प्रकार अपने शारीरिक सौन्दर्य के बारे में बार-बार प्रश्न करके पुरुषों के आगे भ्रमजाल रचती है, उसी प्रकार पुरुष का सान्निध्य-सुख प्राप्त होते ही वह पाषाण-सी कठोर बन जाती है। पर है वह सच्चरित्र ही । उन मूर्खों को अब भी विश्वास है कि कभी न कभी वह पुनः उनकी ओर आकर्षित हो ही जाएगी ।

प्रेम-मार्ग की जितनी भी हरकतें हैं उन्हें वह अवश्यम्भावी रूप से कार्य में लाती है और जब उसका मूड खराब होता है तब वह एक ही दिन में सारे बन्धन तोड़ डालती है ।

कुछ भी हो नमिता के लिए वह देवी स्वरूप थी । जीवन के पीड़ा-जनक क्षणों में न जाने क्यों नमिता को अनु की याद हो आई । वह माँ बनने वाली थी । ज्योतिर्मय ने उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जैसा एक मालिक अपने गुलाम के साथ करता है । बड़ी संकट-बेला थी । माँ उसे बार-बार कहती थी कि तू अपने पेट में पनपने वाले प्राणी को समाप्त कर दे । परन्तु डॉक्टर ऐसा नहीं कर सका ।

तब वह विवश होकर अनु के पास गई ।

उस दिन अनु कुछ अस्वस्थ थी । अलीपुर में स्थित उसकी बाड़ी में दो-तीन क्रिश्चियनों के अलावा कोई नहीं था । ये दोनों क्रिश्चियन बूढ़े थे ।

नमिता ने जैसे ही उसके कमरे में प्रवेश किया, वैसे ही अनु ने किंचित् रोष भरे स्वर में कहा, "आपको इस तरह बिना पूछे मेरे कमरे में नहीं आना चाहिए ।"

नमिता ने नमस्कार करके कहा, "मुझ से गलती हो गई ।"

"गलती की सजा यही है कि आप यहाँ से चली जाएँ, मैं आज पूर्ण रूप से आराम करना चाहती हूँ।"

"आप आराम कीजिए। मैं द्वार के बाहर बैठी आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। जब आप आराम कर चुकें, तब मुझे अवश्य पुकारिएगा।"

अनु ने चौंक कर उसे अर्थ भरी दृष्टि से देखा।

"आप मुझ से पहले भी मिली थीं ?"

"हाँ, ज्योतिर्मय बाबू के साथ।"

"अरे, उस शराबी और आवारा के साथ।" वह क्षण भर के लिए घृणा में भर कर कोमल स्वर में बोली,······"कहिए, मैं आपकी क्या मदद कर सकती हूँ। अवश्य, उसने आपके साथ छल किया होगा ?"

नमिता ने अश्रुपूरित दृष्टि से अनु की ओर देखा।

"बात क्या है ?" अनु ने गंभीरता से पूछा।

नमिता ने संक्षेप में सारा किस्सा कह सुनाया। अन्त में उसके चरण-स्पर्श करती हुई बोली, "आप मेरी बड़ी दीदी हैं, मुझे इस संकट से बचाइए।"

"बड़ी दीदी और छोटी दीदी कह कर तुम मूर्खों को राजी कर सकती हो। स्वार्थ के वशीभूत होकर प्रत्येक की प्रशंसा करना अथवा उसे महान्-दयालु और अपना संरक्षक बताना सर्वथा प्रकृति के प्रतिकूल है। साफ-साफ क्यों नहीं कहती कि मेरा गर्भपात करा दो।" अनु कठोरता से बोली, "अब ऐसा युग आ गया है कि नारी को स्वच्छन्द विचरण करना होगा। इससे भारतीय संस्कृति और परम्परा को आघात जरूर लगेगा परन्तु पूँजीवादी युग की जितनी भी कुत्सित भावनाएँ और विचार हमारे जीवन में घुल रहे हैं, उनमें हमें जीवित रहने के लिए इन थोथी मान्यताओं का परित्याग करना ही होगा। हमें अरुचिकर सत्य बोलना होगा। पहले वह जरूर अटपटा लगेगा, कइयों को इससे पीड़ा भी होगी लेकिन फिर धीरे-धीरे सब उसके आदी हो जाएँगे।"

नमिता को अनु की ये बातें जरा भी पसन्द नहीं आईं। परवशता के कारण वह निरुत्तर रही। सोच कर बोली, "आप सत्य-भाषण पसंद करती हैं और मैं उसकी आदी नहीं। मैं चाहती हूँ कि नारी की कोमलता ही उसका सबसे बड़ा गुण है और त्याग ही उसके जीवन का आनन्द है।""मैं आपके सिद्धान्तों को जरा भी नहीं मान सकती। लेकिन मैं यह जानती हूँ कि आप में दुस्साहस है, निर्भयता है और असंभव को संभव करने की क्षमता है इसलिए मैं आपके पासआई हूँ। ज्योतिर्मय के साथ क्षणिक भेंट के बाद आपका विचित्र चरित्र मेरे मानस पर अमिट की भाँति अंकित हो गया। मैं चाहती हूँ कि आप केवल इस संकट में मेरी सहायता करें।"

"फिर चलो, मैं तुम्हें एक ऐसे डाक्टर के पास ले चलती हूँ जो केवल मुख्यतः गर्भपात का ही काम करता है।"

"लेकिन अब गर्भपात संभव नहीं है। इससे मेरे प्राण पर संकट आ जाने का भय है।"

"तब ?"

"मैं चाहती हूँ कि जब तक बच्चा हो, तब तक संसार की दृष्टि से छुप कर आपकी शरण में रहूँ।"

"तुम्हें बच्चे से इतना मोह है ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"मुझे अपने प्राणों से मोह है। मैं मरना नहीं चाहती। बच्चा जिए या मरे, इसकी मुझे तनिक भी परवाह नहीं।"

"तुम्हारे प्राणों के मोह से गर्भपात का क्या सम्बन्ध ?"

"डाक्टर ने कहा है कि आपरेशन करके बच्चा निकालना होगा और आपरेशन करने पर..........।"

"ओह !" कहकर अनु कुछ देर विचारमग्न खड़ी रही। फिर न जाने वह क्यों बाहर निकली ? आकाश में एक दो बादल के टुकड़े कागज की नाव की भाँति नीले पानी में तैर रहे थे। वह उन्हे निष्प्रयोजन निहारती रही ! फिर भीतर आई। नमिता कुर्सी के हत्थे पर सिर रखे बैठी थी। उसका मुख उदास था। नेत्रों से करुणा उमड़ रही थी।

वह आकर स्वास्तगीर के चित्र पर दृष्टि जमा कर बोली, "यह संभव नहीं हो सकता। वैसे मैं अधिक व्यक्तियों से मिलना पसंद करती हूँ पर कोई इस घर में चौबीस घंटे मेरे साथ रहे, यह मैं पसंद नहीं करती। यदि तुम्हें गर्भपात कराना है तो मेरे साथ चली आओ।"

नमिता कुछ क्षण शांत रही। बोली, "दीदी, मुझे निराश न करो, आपकी निराशा मुझे आत्महत्या करने के लिए विवश कर देगी।"

अनु झुंझला कर बोली, "इस संसार में कितने ही व्यक्ति हर रोज आत्म-हत्याएँ करते हैं इसका ठेका किस किस ने ले रखा है ? सेठ की हवेली के नीचे भूख से तड़प कर मरने के उदाहरण सभी जगह मिल जाएंगे लेकिन इससे उन सेठों ने अनाज बंटाना थोड़े बन्द कर दिया फिर मुझे स्वार्थ से उत्पन्न प्यार स्नेह, सम्बन्ध, दया और करुणा से बड़ी चिढ़ है। मैं तुरन्त में विश्वास रखती हूँ। करके सब कुछ भूल जाती हूँ जैसे सूर्य अस्त और मजदूर-मस्त। यदि मैं तुम्हारी सहायता कर सकती तो अवश्य कहती।"

"तुम्हें स्त्री का जन्म किसने दिया ?" वह गुस्से में भर कर बोली। वह तन कर बैठ गई थी।

अनु मंद मुस्कान के साथ धैर्य से बोली, "यह प्रश्न मेरे माँ-बाप से किया होता तो अति उत्तम होता।"

"बेशर्म।" वह धुआँ-फुआं होकर धीरे से बोली।

"अरे वाह, तुम तो मुझ से भी अधिक स्पष्टवादी हो गई। नमिता एक काम के बदले में तुम्हारी सहायता कर सकती हूँ।"

"वह क्या ?" नमिता ने तुरन्त पूछा।

"तुम अभी बच्ची हो। जीवन का अनुभव तुम्हें शून्य के बराबर है यह ज्योतिर्मय मनुष्य देह में दैत्य है यदि किसी भी तरह इसे तुम जहर दे दो तो मैं तुम्हें आश्रय दे सकती हूँ।"

इस भयानक विचार से नमिता एकदम ठंडी हो गई पर उसे स्थिर दृष्टि से देखने लगी।

"तुम्हें मेरी यह शर्त स्वीकार है ?"

"नहीं।"

"फिर मैं मजबूर हूँ।"

नमिता उठ कर चली गई। वह सारे रास्ते यही सोचती जा रही थी कि हो न हो अनु एक अत्यन्त व्यभिचारी और दुश्चरित्रा है। उसमें नारी स्वभाव के किंचित लक्षण नहीं। वह हत्या की बात करती। हे प्रभु........। नमिता के ललाट पर पसीना आ गया। जब वह ट्राम में बैठी तब उसे यह भी ख्याल नहीं रहा कि वह जहाँ बैठी है, उसके दाएं-बाएं दो युवक बैठे हैं।

धीरे धीरे उसकी व्यग्रता कम हो गई। हठात् उसके हृदय में नया भाव जागा। उसके होटों पर अफसोस भरी मुस्कान थिरक उठी, "अवश्य उसने ऐसी कड़ी शर्त मुझे टालने के लिए रखी है। यह सर्व विदित है कि उसका चरित्र एक पहेली बना हुआ है। वह किसी भी समय बिना सोचे-समझे जो कुछ मूँह से निकल गया, बड़ी निर्भयता से कह देती है। कह कर फिर वह पछताती नहीं। उसके पश्चाताप न करने की आदत के कारण लोग भ्रम में भटक जाते हैं।

वह घर गई। बसुधा भात बना कर बैठी हुई कोई बंगला पुस्तक पढ़ रही थी। नमिता को देखते ही बोली, " यह एक हजार रुपये ले ले और वृंदावन चली जा, सुना है कि देवताओं की नगरी में ही पापिनों का उद्धार होता है।"

नमिता निरुत्तर रही। अश्रुभरी दृष्टि से उसने माँ की ओर देखा। माँ बड़ी उद्विग्न जान पड़ रही थी। वह घृणा भरे स्वर में कहने लगी, "अब तुम्हें

शीघ्र ही लककत्ता छोड़ देना चाहिए, यहाँ रह कर तुम कुलको कलंकित कर दोगी।"

नमिता ने न चाहते हुए कहा, "बहुत अच्छा।"

रात्रि के शून्य-नीरव क्षणों में नमिता अपने मन को भाँति-भाँति दिलासा देकर अनु के यहाँ पहुँच गई। अनु के कमरे से वार्तालाप की ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी।

"सुनो परेश, मैंने एक बार तुम्हें ज्योतिर्मय की हत्या करने के लिए कहा था, उस पर गंभीरता पूर्वक नहीं सोचना। तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि मैं बिना सोचे समझे बोल जाती हूँ।··· ·······परेश रात अधिक हो गई है, अब तुम्हें चले जाना चाहिए, अन्यथा तुम्हारी पत्नी महाभारत छेड़ने में देर नहीं करेगी।"

परेश ठहाका मार कर हँस पडा। हँसता हुआ बोला, "अब वह बिलकुल सीधी हो गई है। पहले-पहल मैं भी उससे जरुर घबराता था। वह बात बात में रो रो कर मोहल्ला एकत्रित कर लेती थी। लोग मुझे बहुत दुत्कारते थे। एक दिन मुझे गुस्सा आ गया। उसे इतना पीटा कि सारा मोहल्ला उसे छुड़ाने के लिए आ गया। उन्हें देख कर उसने जोर से चीखना-चिल्लाना प्रारंभ कर दिया। मैं और गुस्से में भर उठा। लगा उसे पीटने। उसका परिणाम यह निकला कि लोग झुँझला कर चले गये। ये शब्द मैंने अन्य लोगों के अपनी पत्नी के भीषण आर्तनाद में भी सुने कि इन पत्नी-पति का झगड़ा सूरज अस्त होने के साथ शुरू होता है और उगने पर समाप्त। कौन पडे नित्य की लड़ाई में।···फिर क्या था ? मैंने अपना प्रचंड रूप धारण कर. लिया। ·······एक दिन बीता और फिर दूसरा। अब मैं खुलम-खुल्ला अपनी पत्नी के समक्ष बोतल खोल कर पीने लगा।

तीसरे दिन वह मेरे समक्ष आई। प्रार्थना करके बोली, "तुम ऐसा क्यों करते हो, आखिर इतने बड़े जीवन में कब आपत्ति आजाए और हमें रुपयों की आवश्यकता पड़ जाए।"

मैंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया।

उसने मेरे चरण छू लिए। मैंने उसके लात मार दी।······अनु वह दिन प्रतिदिन मुझ से प्रार्थना करने लगी और मैं कंस की तरह निर्दयी होता गया, अरी अनु, तुम्हें आश्चर्य होगा कि वह नितांत सीधी हो गई। कम से कम मैं अपनी पत्नी के अनुभव से जान पाया हूँ कि नारी के प्रति तुम जितने कठोर बनोगे, वह तुम्हारे प्रति उतनी ही विनम्र होगी। तुम उससे जितनी ही घृणा करोगे, वह तुम्हें उतनी ही चाह करेगी। यह नारी का मनोविज्ञान है।

अनु ने परेश के आगे पड़ी चाय में स्याही उंड़ेल दी और तिक्त स्वर में बोली, "मैं तुम्हारी पत्नी के बिल्कुल विपरीत हूँ। तुम यहाँ मेरा सम्मान पाने आए थे और मैं तुम्हें चप्पल मार कर निकालूँगी। तुम मेरी चप्पल खाने को तैयार हो जाओ।"

परेश का बुरा हाल हो गया। उसकी आंखें फट गईं। वह कुछ कहना चाहता था लेकिन शब्द उसके गले में आकर अटक गए।

तब अनु खिलखिला कर हँस पड़ी, "परेश, अपनी भूल पर सुधार कर लो नारी के प्रति तुम्हारी जो धारणा थी, वह गलत साबित हो गई। वह मनो-विज्ञान एकांकी रह गया।··········बैठो तुम्हारे लिए दूसरी चाय बनवा देती हूँ।"

लेकिन परेश इतना गुमचुम हो गया था कि उसकी विचार शक्ति मरणा-सन्न हो गई। बड़ी देर तक वह निश्चल सा बैठा रहा जैसे कोई अनहोनी घटना घट गई हो। फिर वह उठ कर बोला, "मैं जा रहा हूँ, मैं चाय नहीं पीऊंगा।"

अनु ने उसे रोका नहीं। उसने आगे बढ़ कर उसे रास्ता दिखा दिया।

उसके जाने के बाद अनु पढ़ने में लीन हो गई। नमिता 'जाऊँ या न जाऊँ' पर विचारती रही।

थोड़ी देर के बाद नमिता साहस करके भीतर घुसी। पदचाप सुन कर अनु के कान खड़े हो गए। उसने घूम कर देखा, "तुम!" उसकी भवों में बल

पड़ गए। नमिता ने उत्तर नहीं दिया। अनु उसके समीप आई। उसके चेहरे को पर्यवेक्षण दृष्टि से देख कर कहा, "अब क्या कहने आई हो ?"

"मैं आपके पास ही रहूँगी। मेरा इस जीवन में दूसरा सहारा कोई नहीं है।"

"खूब ! तुम भी अपनी विवशता मुझे इस तरह सुना रही हो जैसे मैं तुम्हारी माँ, बड़ी बहिन अथवा अन्य बुजुर्ग हूँ। यह सब तुम अपनी माँ को क्यों नहीं बता देती ?"

"माँ सब कुछ जानती है सिवाय इसके कि यह बच्चा किसका है ?"

"तब मैं तुम्हारी माँ को बता दूँगी कि इसके पेट में कोई धनवान संतान है। जमींदार की पुत्री या पुत्र ! घबराओ नहीं, मैं और तुम्हारी माँ उस नीच को ठीक कर देंगे।"

"नहीं, नहीं, मैं माँ को उसका नाम नहीं बता सकती।"

"घबराती क्यों हो ? मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि कुछ स्त्रियाँ स्वयं अपने पाप को दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं कर सकतीं, उसे अन्य स्त्रियाँ बड़ी गम्भीरता की मुद्रा बना कर आनंद की अनुभूति के साथ प्रकट कर देती हैं। चलो, आज मैं उस स्त्री का अभिनय कर लूँगी।" उसने यह सब बड़ी तेजी से कहा। नमिता पुनः हैरान हो गई।

अपने आप से कहने लगी, "अनु, किसी बात पर गंभीरता से विचारती क्यों नहीं किसी के मुँह से कोई प्रश्न निकलना चाहिए, अनु तुरन्त उसका उत्तर दे देती है। प्रिय या अप्रिय।

अनु बोली, "तुम मुझे व्यर्थ में ही परेशान न करो। मैं वही करूँगी, जो मुझे अच्छा लगेगा।"

नमिता उस विवश प्राणी की भाँति दयनीय थी, जो किसी बलिष्ठ और उच्छृंखल तबीयतवाले युवकों के बीच फंस गया है और वे सेउ कुरेद-कुरेद कर तंग करते हैं। अन्त में नमिता सिसक पड़ी।

"सचमुच तुम नारी नहीं हो। यह बार-बार रोना नारियों को जरा भी शोभा नहीं देता। नारी को दूसरों के दुख में आनंद लेना चाहिए।"

नमिता ने आगे बढ़कर अनु के चरण पकड़ लिए।

अनु चिढ़ गई, "चरण पकड़ कर तुम मुझे विवश क्यों कर रही हो ? क्यों नहीं ज्योतिर्मय के पाँव पकड़ती ! जिस नीच ने तुम्हारे जीवन को सर्वनाश की भट्टी में झोंक दिया, उसके चरणों में लोट कर सिर को फोड़ क्यों नहीं लेती ? सुनते हैं कि प्यार की व्यथा लेकर जब लाल रक्त बहेगा, वह तुम्हारे विस्मृत प्यार को पुनः जगा देगा। यदि वह न माने तो उसे विष दे दो। प्यार के चरमोत्कर्ष अभिनय के साथ उसे मृत्युसे आलिंगन करा दो। उसे कहो, बच्चे के जन्मते ही मैं उसका गला घोंट दूँगी। मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हारी रहूँगी। अगर तुम्हें ऐसे संवाद याद नहीं है, फिर कोई हिन्दी का चित्र देख आओ। प्रेयसी जिस हाव-भाव से बोलती है, तुम उसी का अनुकरण करो। कहो, संसार की कोई शक्ति मुझे तुमसे अलग नहीं कर सकती। तुम मुझे जितनी घृणा करोगे, मैं तुम्हें उतना प्यार करूँगी। आओ प्रिये, आओ, मेरा पवित्र चुम्बन लो, ''मुझे अलिंगन में बांधो और मेरे हाथ से शराब का प्याला पिओ। उस शराब में जहर मिला देना। वह मर जाए तो उसे ठोकर मार कर आ जाना। ''लेकिन यह कार्य चतुर चोर की भाँति होना चाहिए। साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।"

"तुम पागल तो नहीं हो ?" नमिता के मुँह से यह वाक्य उसकी आज्ञा लिए बिना ही निकल गया।

"यहाँ के दस्तूर के मुताबिक हर सच्ची बात कहने वाला पागल ही होता है''''नमिता, मेरी समझ में एक बात नहीं आई कि नारी बुद्धि और युग-धर्म का सम्बल क्यों नहीं लेती ?" आज हर आदमी किसी भी तरह 'स्व' का सुख चाहता है।"

वह शांति से बोली, "मैंने आपको कहा न कि मैं आपके सिद्धान्त को नहीं मानती। मुझे आपकी विचारधारा में श्रद्धा नहीं। आपको संसार, समाज

और अपनों से कोई लगाव नहीं। मैं चाहती हूँ कि अपनी इस भूल का प्रायश्चित अपने आपको पीड़ा पहुँचा कर करलूँ। मुझे अशांति पसंद नहीं। मैं उससे थक गई हूँ।" नमिता प्रश्न भरी दृष्टि से उसे देखती रही। बोली, "मेरे पास एक हजार रुपए हैं। मेरा आप कहीं प्रबन्ध कर दीजिए।"

"फिर तुम कहीं भी रह सकती हो।...ऐसा करने से तुम्हें बहुत सुख मिलेगा।...नगर के बेलियाघाट पर एक मकान ले लो। विधवा का ढोंग करो। इस बात का प्रचार करना कि अभी-अभी तुम्हारे पति का देहान्त हुआ है। हाँ, पास-पड़ोस वालों के सामने इन हजार रुपयों का प्रदर्शन करती रहना। यह हजार रुपए शांति का वातावरण बनाए रखेंगे।"

"लेकिन मेरी देखभाल कौन करेगा?"

"देखभाल करने की जरूरत ही क्या है? जब बच्चा होने का समय आए तब अस्पताल चली जाना।"

"नहीं, मैं अकेली वहाँ नहीं रह सकती। तुम्हें वहाँ आने की शपथ खानी होगी वर्ना मैं यहीं बैठ जाऊँगी। मैं जानती हूँ कि इससे तुम मुझे भला-बुरा कहोगी, अपने दरबान से धक्का मार कर निकलवा दोगी पर मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं। दीदी मेरी अन्तरात्मा को केवल तुम्हारा विश्वास है। केवल तुम्हारी आस्था है। केवल तुम्हारी भक्ति है।...अपनी माँ से मुझे भय लगता है। उसके पेट में कोई बात ठहरती नहीं। वह अपनी बदनामी की कहानी स्वयं कहने लगती है। हर छोटी बात को लेकर वह अपने को बहुत अशांत कर लिया करती है। इस अवसर पर केवल तुम ही मेरी हो।"

अनु क्रोध में छटपटा कर बोली, "यह संभव नहीं।"

"फिर मैं यहीं भूखी-प्यासी बैठी रहूँगी। प्राण दे दूँगी पर जाऊँगी नहीं।" नमिता के चक्षु अश्रु से छलछला आए।

अनु कुछ देर तक विचारती रही, फिर बोली, "मैं सदा नहीं आ सकती लेकिन तुम्हारी देख-भाल जरूर करती रहूँगी।"

नमिता के अधरों पर अश्रुभरी मुस्कान थिरक उठी।

गृहिणी वसुधा ने चीख कर कहा, "इस तरह कब तक बैठी रहोगी ? चलो कुछ खा पी लो।" नमिता अतीत को बीच में ही छोड़कर उठ गई।

× × ×

१४



संध्या के समय छन्दा ज्योतिर्मय के यहाँ जाने को तैयार हुई। नई साड़ी पहन कर उसने दर्पण में अपने मुख को निहारा। सूना ललाट उसे अपने जीवन की महान् ट्रेजडी के रूप में लगा। उसने एक पल के लिए विचारा कि वह अपने ललाट पर बिन्दी क्यों नहीं लगाती ? फिर वह मनसा-पाप से विचलित होकर चंचल हो उठी। उसने चन्दन की बिन्दी लगाई।

तभी असीम आ गया।

"तुम इतने जल्दी कैसे आ गए ?"

"यूँ ही, मैं भी चलूँगा ज्योतिर्मय बाबू के यहाँ।"

"क्यों ? तुम्हारे जाने का विचार ही नहीं था ?"

"अब हो गया, सोचा कि तुम्हें अकेले जाने में बड़ा कष्ट होगा ? इस प्रसन्न के बच्चे को कौन संभालेगा ?" उसके स्वर में उपहास स्पष्ट रूप से झलक रहा था।

"मुझे कोई कष्ट नहीं होगा ? किसी भी तरह जा सकती हूँ। जाओ, तुम्हें स्वतंत्र किया।"

"अभी ऐसा कहती हो, बाद में दस बातें सुनाओगी।"

छन्दा सहसा गंभीर हो गई। बोली, "मैं तुम्हें बातें क्यों सुनाऊँगी ? तुम्हें जो अच्छा नहीं लगता है उसके लिए मैं विवश नहीं करती।"

"मैं चलूँगा।" उसने दृढ़ता से कहा।

छन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह प्रसन्न को नए वस्त्र पहनाने लगी। असीम का मन छन्दा की विरक्तिपूर्ण बातों से कुछ उन्मन हो गया। वह अपने बालों में अपने दोनों हाथों की अंगुलियाँ उलझा कर बैठ गया।

"कपड़े नहीं बदलोगे ?" छन्दा ने भुँह चढ़ा कर पूछा।

"नहीं, मैं नहीं चलूँगा।" उसने गुस्से में उत्तर दिया।

"अरे क्यों ?" उसने होठों पर हंसी लाने का यत्न किया।

"तुम्हें पसन्द नहीं है न। तुम एकान्त में न जाने क्या-क्या ज्योतिर्मय से आत्म निवेदन करना चाहोगी ?"

छन्दा ने तुरन्त उत्तर दिया, "कुछ नहीं। मुझे उससे कोई विशेष बातें नहीं करनी हैं। मेरे गाँव का है। दादा जैसा है। उसने विनम्र अनुरोध किया है, उसके यहाँ चलना चाहिए। आखिर नाते-रिश्ते भी कोई वस्तु होते हैं।"

असीम कुछ नहीं बोला। छन्दा भी चुप रही।

असीम कुछ देर के उपरान्त बोला, "हमारे सम्बन्ध के बीच हमारे अन्तर का अहम् सदा बाधक बना रहता है। अहम् के समक्ष सम्बन्ध हार जाते हैं।···

ज्योतिर्मय बड़े लोगों में से हैं। क्या वह तुम्हारे सम्बन्धों पर गर्वित होगा जबकि वह प्रकृति-प्रवृत्ति से निष्ठुर है।"

छन्दा झुंझला उठी। प्रसन्न को गोद में लेकर बोली, "मुझे तुम्हारी यह वकालत पसन्द नहीं है। चलना चाहते हो, चलो ?"

असीम कुछ नहीं बोला। उसने मन ही मन निर्णय किया कि वह नहीं जाएगा पर वह किसी अज्ञात शक्ति से प्रेरित होकर चला जा रहा था। छन्दा प्रसन्न को लेकर अपने चलने में दिक्कत महसूस कर रही थी अतः असीम उसे अपनी गोद में लिए चल रहा था।

फिर वे दोनों एक रिक्शे में बैठे और चल पड़े।

ज्योतिर्मय अपनी बाड़ी में उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। छन्दा ने गृह-प्रवेश किया। पदारथ ने दौड़ कर सूचना दी। ज्योतिर्मय पुलकित बदन नीचे आया और अपनेपन के साथ बोला, "मुझे विश्वास था कि तुम आओगी। आने में कोई अड़चन तो नहीं हुई ?"

असीम को ज्योतिर्मय ने नमस्कार नहीं किया, इसलिए उसकी आँखें सजल हो उठीं। अपमान का घूँट वह विष की भाँति पीकर, प्रसन्नता से बोला, "कष्ट और संकट इसको क्यों होगा ? एक नौकर जो इसके साथ है। लीजिए, अपने इस लाडले को ,"

छन्दा ने मुस्कराकर प्रसन्न के गाल का चुम्बन लिया और असीम पर अपनी गहरी दृष्टि जमा कर कहा, "वैसे असीम दादा, तुम मेरे आदरणीय हो। तुम्हारी प्रतिष्ठा ही मेरा सुख है किन्तु वैसे एक छोटी बहिन के नाते तुम मेरे बिना मूल्य के दास भी हो, सच्चे और चिर दास ! बहिन का ऋण इस लोक से नहीं, परलोक से सम्बन्ध रखता है, असीम ! उस ऋण से तुम शीघ्रता से कैसे उऋण हो जाओगे ?"

असीम अबोध सा उसे देखता रहा।

ज्योतिर्मय बीच में ही तेज स्वर में बोला, "भाई-बहिन के सम्बन्धों की विस्तृत व्याख्या बाद में कर लेना। चलो, तुम्हें अपना घर दिखा दूँ।"

घर देखने के बाद उन लोगों ने भोजन किया। असीम उन दोनों के बीच अपने को एक दीवार-सा समझ रहा था। ज्योतिर्मय बार-बार उस पर व्यंग कस देता था। छन्दा को भी ज्योतिर्मय का यह व्यवहार अप्रिय लगा। अन्त में असीम उठ कर चित्र देखने का बहाना बना कर चला गया।

एकांत पाकर ज्योतिर्मय दिन भर की दबी शंका को प्रकट करके बोला, "छन्दा, सच सच बता, यह बच्चा किसका है ?"

छन्दा मुस्करा कर बोली, "तुम्हें मुझ पर विश्वास क्यों नहीं होता, कह दिया न, बच्चा मेरा अपना है। किसका है यह मैं तुम्हें बताने में असमर्थ हूँ।"

"मुझे विश्वास नहीं होता ?"

"यह कोई नई बात नहीं। यदि चोर चौराहे पर खड़ा होकर कहने लगे, सुनो नगरवासियो, अमुक जमींदार की चोरी मैंने की है तब प्रत्येक सुनने वाला उसे पागल कह कर आगे बढ़ जाएगा। सत्य का उद्घाटन यहाँ श्रेयस्कर देखा गया है।" कह कर छन्दा अनिमेष दृष्टि से ज्योतिर्मय को देखने लगी। ज्योतिर्मय का चेहरा सफेद हो गया।

"फिर तुम इसीलिए कलकत्ता आई थी ?" वह टूटते स्वर में बोला।

"हाँ ?"

"लेकिन क्यों ?"

"इसलिए कि तुम्हारी निष्ठुर प्रवृत्ति का नंगापन मैं न देखूँ ? तुम बाज की तरह तीव्र-दृष्टि वाले हो। स्त्री की दुर्बलता को पकड़कर तुम उसको अपने वश में कर लेते हो। इस पर बाबा की मृत्यु के आघात को मैं किसी भी मूल्य पर भूल सकती। मुझे तुमसे प्रेम नहीं, घृणा है और घृणा की ग्रन्थि संसार में समस्त सम्बन्धों से प्रबलतम होती है प्रेम भी घृणा के सामने गौण है।" छन्दा का स्वर विकलित हो गया। नेत्र छलछला आये।

ज्योतिर्मय ने कहा, "छन्दा, भूल मनुष्य से होती है। अपराध जाने-अनजाने होते ही रहते हैं। इन गलतियों को लेकर हम जीवन भर की कटुता में जलते रहें यह अच्छा नहीं।"

छन्दा ने उत्तर दिया, "वक्त का आघात अविस्मरणीय होता है। क्षणिक व्यस्तता या अतिरेकता में हम उन्हें भले ही भूल जाएं पर हृदय-पट से उसे अमिट कैसे कर सकते हैं? तुम मेरे घर आए, मैंने तुम्हारा सम्मान रखा। तुमने निमन्त्रण दिया, मैंने इसलिए स्वीकार किया कि तुम्हारी प्रतिष्ठा को आघात न लगे। असीम यह न समझे कि मैंने घर आए प्रतिष्ठित-रईस अतिथि का स्वागत नहीं किया। पर इन सबका यह तात्पर्य नहीं होता कि मैं यह भूल गई हूँ कि मेरे बाप की मृत्यु तुम्हारे कारण हुई। बड़े लोग सदा छोटे लोगों को ठगते आए हैं। उन्हें वे कहते हैं कि तुम विगत को भूल जाओ, वर्तमान की ओर आसक्त न हो और स्वयं मिथ्याभिमान में छोटे लोगों के प्राणों से खेलते रहते हैं। मैं और सारा गाँव तुम्हारे उस आतंक और अत्याचार को कैसे भूल सकते हैं जो क्षुधा से पीड़ित प्राणियों पर किया गया है।"

"तुम समझती हो कि मुझ में तनिक भी परिवर्तन नहीं आया?"

"भयानक भूचाल ने आकर तुम में परिवर्तन ला दिया हो तो मैं भी विश्वास कर सकती हूँ अन्यथा पहाड़ में कौन परिवर्तन ला सकता है?"

वातावरण विषाक्त होता जा रहा था। ज्योतिर्मय रोष में भर उठा। परिवर्तन की बात करने के कारण वह विवशता वश शांत रहा।

छन्दा ने मुस्करा कर कहा, "मेरा बेटा तुम्हें पसन्द नहीं आया?"

"बहुत सुन्दर है।"

"ठहरो, इसे चूमो मत।"

"क्यों?"

"यूँ ही।·· अरे असीम दा कहाँ हैं?"

"आप चित्रों का अध्ययन कर रहे हैं। असीम भैया, क्या हम लोगों से आप नाराज हैं। आइए न ?"

असीम मौन धारण करके बैठ गया। उसे यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। वह छन्दा को केवल अपने घर में देखना चाहता था। वह चाहता था कि छन्दा उसके अलावा न किसी से मिले, न किसी से सम्पर्क स्थापित करे और न कहीं जाए। छन्दा जब जब उसकी आज्ञा का उल्लंघन करती थी, तब तब उसे हार्दिक संताप होता था। उस क्लेश से वह अपने आपको अत्यन्त पीड़ित करता था। कभी-कभी वह छन्दा को भला-बुरा भी कहता था तब वह रूठ जाती थी। जाने को उद्यत हो जाती थी तब असीम उसकी मिन्नते करता था। वह छन्दा का विछोह नहीं सह सकता था। इसलिए जब छन्दा 'प्रसन्न' को गंगा-मैया का महाप्रसाद समझ कर ले आई तब असीम उससे सम्बन्ध विच्छेद चाह कर भी नहीं कर सका। तब भी वह आज्ञाकारी शिष्य की तरह उसकी प्रत्येक बात का इच्छा या अनिच्छापूर्वक पालन करता था।

ज्योतिर्मय के यहाँ से लौटने पर असीम सारे रास्ते चुप रहा। छन्दा भी गंभीर रही। केवल प्रसन्न एक-दो बार रोया था।

रिक्शा में जब वे दोनों बैठे थे तब छन्दा ने यह विचारा कि उसकी कठोरता के कारण अब ज्योतिर्मय उसे कभी नहीं बुलाएगा और असीम ने सोचा कि अब छन्दा को उससे विरक्ति हो रही है।

× × × ×

१५



अपने बच्चे के जन्म के बाद नमिता उसकी हत्या नहीं कर सकी। ममता समाज, धर्म और लोक-भय सबको तिलांजली देकर वह अनु से कह उठी, "मैं अपने बच्चे को कैसे छोड़ सकती हूँ। माँ ममता की हत्या कैसे कर सकती है? तुम तो संसार की समस्त नारियों से विचित्र हो। न तुम्हें किसी की मृत्यु से दुख होता है और न किसी के जन्म पर खुशी।"

अनु क्रोध में भर उठी। कुर्सी के हत्थे पर जोर से हाथ पटकती हुई वह बोली, "इसलिए मैं किसी की भलाई नहीं करती। दया नहीं दिखाती। इसका परिणाम विपरीत ही मिलता है। सब के सामने झूठ बोल कर मैंने कहा कि यह मेरी विधवा ममेरी गरीब बहिन है। तुम······तुमने मुझे वचन दिया कि मुझे होने वाले बच्चे से कोई मोह नहीं रहेगा और अब······?"

नमिता अधीर हो उठी। रोदन भरे स्वर में बोली, "तुम बड़ी निष्ठुर हो। एक माँ से अपने बच्चे को मारने के लिए कहती हो?"

"मारने के लिए कौन कहता है, मैं छोड़ने के लिए कहती हूँ। कुन्ती ने जीवन को सुखमय बनाने के लिए कर्ण जैसे महाबली को छोड़ दिया था।······तुम्हें भी अपने जीवन और भविष्य के लिए अपने बच्चे को

छोड़ना पड़ेगा। नही तो इस बच्चे का असह्य बोझ तुम्हें जगत की समस्त यातनाओं से बिंध देगा।" अनु क्षण भर चुप रह कर बोली। "प्रकृति भी तुम्हारे विरुद्ध है। ज्योतिर्मय के बाप की वसीयत खुल गई है। उसने अपनी समस्त सम्पत्ति का लोक-कल्याणकारी ट्रस्ट बना दिया है। ज्योतिर्मय के ट्रस्टी भी उसके चाचा का एक लड़का समरेश। वकील मुखर्जी और अन्य सज्जन हैं। उसके लिए उन्होंने एक पैसा भी नहीं छोड़ा, माँ पार्वती के लिए सौ रुपये माहवार जरूर रखे हैं। अपने पिता के इस नृशंस व्यवहार से ज्योतिर्मय को बहुत बड़ा आघात लगा है। वह बिलकुल आवारा बन गया है। उसकी शक्ल-सूरत से ऐसा प्रतीत होता है कि उस पर कोई भयानक संकट आने वाला है। उसके जीवन का महा अनिष्ट होने वाला है।"

नमिता करुणा भरे स्वर में बोली, "भगवान उसे शांति दे, सद-बुद्धि दे।"

"नहीं, भगवान उसे नरक की यातना दे। मैं समझती हूँ कि वह एक दिन दाने-दाने के लिए मुँहताज हो जायगा।"

"ऐसा शाप क्यों देती हो ?"

"इसलिए कि उस नीच ने तुम्हारे सतीत्व को लूटा और तुम्हारे भविष्य को अन्धकार में ढकेल दिया। आज तुम उसके खून की रक्षा में लगी हो ताकि साँस के साथ मिलने वाला सुख भी तुम्हारा समाप्त हो जाए। फिर यह ज्योतिर्मय जैसा व्यभिचारी हो गया तब ?"

"यह क्या कहती हो ?" नमिता ने नेत्र फाड़ कर कहा।

"सच कहती हूँ, सदा अमीरों का साँप गरीबों का दूध पीकर पलता है और बड़ा होकर गरीबों को डस लेता है। यह तुम्हारा दूध पीकर बड़ा होगा, तुम इसके दूध के लिए सहस्र लांछनाएँ, दुत्कारें, यहाँ तक कि अपने आप को बेचोगी।"

"मैं ऐसा क्यों करूँगी ? अब ज्योतिर्मय.......?"

"क्या तुम अन्तिम बार अपनी भाग्य-रेखा का चमत्कार देखना चाहती हो ?" अनु चिढ़ गई, "खाता-पीता साँड जब बिगड़ता है तब और भयानक हो जाता है।"

"कुछ भी हो, एक बार मैं अपने भाग्य की परीक्षा फिर करूँगी । नारी का जीवन इतनी पाषाणवत भाव शिला पर आधारित नहीं होना चाहिए । जहाँ तक हो सके उसे अपने व्यक्तित्व को एक ही पुरुष तक सीमित रखना चाहिए । यह संभव न हो सके तब उसकी विवशता समझनी चाहिये । जीवन को ढोने के लिए फिर मन और आत्मा की विवशता से परिस्थितियों से समझौता करना ही पड़ता है । परन्तु नारीत्व की महानता और उज्वलता इसी में है कि वह जिसे प्रेम करे, उसे सर्वस्व देकर मिट जाए।"

अनु सव्यंग बोली, "प्राणी कष्ट और पीड़ा से मुक्त होते ही उपदेश देने लगता है । उसके उपदेश में महान जीवन और उत्सर्ग का तीव्र घोष होता है। एक दिन तुम ज्योतिर्मय के प्रति तीव्र घृणा लेकर आई थी और आज उसी के प्रति श्रद्धा के शब्द प्रकट कर रही हो ? तुम उस दुष्ट व्यक्ति से जाकर याचना करोगी जिसने एक दिन नारी का धर्म लेकर उसे खुजली ग्रस्त कुतिया की तरह दुत्कार कर निकाल दिया था। छिः छिः यह कितने दुर्भाग्य की बात है ? इस पर भी उसने तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया तब ?·······मैं समझती हूँ, तुम्हें आत्मग्लानि से बचने के लिए आत्महत्या करनी होगी। उस असह्य अपमान को लेकर नारी कैसे जी सकती है ? हाँ, यदि फिर भी वह जीवित रहती है तब समझना चाहिए कि वह बहुत घटिया किस्म की बाजारू औरत है।"

नमिता उसके पाँव पकड़ कर चीखी, "भगवान के लिए मुझ पर दया करो। ऐसी तीखी बातें सुना कर तुम मुझे क्यों गुस्से में भर रही हो ? मैंने तुमसे पहले ही कह दिया है कि मैं तुम्हारे विचारों से सहमत नहीं हूँ । मैं जरूर जाऊँगी ज्योतिर्मय के पास । मैं अन्य पुरुष की कल्पना भी उसका उत्तर सुने बिना नहीं कर सकती । आखिर कुछ भी हो, उसने मुझे प्रेम करके छला

है। चाहे वह प्रेम झूठा ही क्यों न हो, अभिनय मात्र ही क्यों न हो ? लेकिन प्रेम तो है।"

अनु के लिए अब वहाँ ठहरना सर्वथा असंभव हो गया। वह इस प्रकार की वर्तमान परिस्थिति से अभिज्ञ स्त्री के प्रति किंचित भी सहृदय नहीं बन सकती। जाती हुई बोली, "मुझे पूर्ण विश्वास है दो चार दिन में तुम अपना अन्तिम सम्मान भी खोकर मेरे पास आओगी। तब मैं तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार करूँगी जैसा एक राजा अपनी दासी के साथ करता है।"

अनु वहाँ से चली गई।

नमिता अपने बच्चे को देखते-देखते रो पड़ी। नारी के समस्त जीवन का सार और व्याख्या उसकी दो वस्तुओं में लक्षित होने लगी, आँखों के आँसुओं में और आँचल के दूध में ? नारी, आँसू और आँचल ! दुख, पीड़ा और मोह ! एक सा आवर्तन और एक सा आर्त्तनाद ! नारी, नारी तू बड़ी दयनीय है !

× × ×

१६



पदारथ ने आकर कहा, "बीवी जी आई है।"

"कौन बीवी जी ?" ज्योतिर्मय कड़ककर बोला, "कह दो, यहाँ किसी भी बीवी का स्वामी नहीं रहता।"

"नमिता बीवी······।"

"कौन नमिता ? कह दो, सरकार को फुर्सत नहीं है।"

पदारथ ने आकर कहा, "सरकार आप से अभी नहीं मिल सकते ? वे बड़े ही व्यस्त हैं।"

"वे मुझसे मिल नहीं सकते ?······पदारथ, मुझे एक बार उनके पास जाने दो। मैं उनसे दो बातें करना चाहती हूँ।"

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आप नहीं समझती कि बड़े सरकार की मौत के बाद वे कितने बदल गए हैं। किसी से अच्छी तरह बोलते तक नहीं। गुस्से में आकर गालियाँ बकने लगते हैं। मुझे दो-तीन बार पीट भी दिया। और तो और, अपने चाचा के लड़के समरेश बाबू तक को गालियां निकाल दी। समरेश बाबू बड़े देवता पुरुष हैं। बेचारे कुछ नहीं बोले, सुनते रहे।"

नमिता कुछ देर तक खड़ी रही ।

ज्योतिर्मय ने जोर से पुकारा, "सुनते नहीं पदारथ ?"·······फिर वह अपने पर झल्ला कर बोला, "भाग्य के भी क्या खेल हैं ? सम्पत्ति के साथ सम्मान भी गया।···ओ बे पदारथ के बच्चे !"

"आप जाइए वर्ना मैं मारा जाऊँगा।" कहकर उसने द्वार बन्द कर लिए।

नमिता अपमान के कारण तिलमिला उठी। उसने गुस्से में पागल होकर अत्यन्त अशिष्ट स्त्री की तरह मन ही मन ज्योतिर्मय के प्रति दुष्कामनाएँ कीं। अब उसे बिना सोच-विचार कर बोलने वाली अनु की बातों में सार लगा। उसने विचार कर कहा, "सच इस अपमान से अच्छा है कि मैं विष खाकर आत्म-हत्या कर लूँ।"

दुख, क्रोध, ग्लानि और पीड़ा के मारे नमिता सिसक पड़ी। उसकी उभरती हुई सिसकियाँ सुन कर गृहिणी वसुधा ने उसके अतीत के स्वप्न को भंग कर दिया।

"क्या बात है ? यह रो-रोकर सबको क्यों सता रही है ? पहले ऐसे काम ही क्यों किए।" वसुधा कड़क कर बोली।

नमिता ने तुरन्त अपनी सिसकियों को रोक लिया।

इसके बाद नमिता अर्द्धविक्षिप्त सी अपने बच्चे को लेकर ज्योतिर्मय के घर से लौट आई। तब वह अपने बोलिया घाट वाले घर में नितांत अकेली थी।

अंगिया का दूध अमृत की तरह बूंद-बूंद गिर रहा था। ममता रो रही थी। कुन्तु सिसक रही थी।

तब वह दो दिन बाद भोर की नई किरण के उदय होने के साथ ही अनु के घर गई। पता चला कि अनु दिल्ली चली गई है।

आज अनु को दिल्ली गए चार माह हो गए हैं। इस बीच नमिता के पास उसकी एक ही चिट्ठी आई थी। वह चिट्ठी यह थी कि भगवान की असीम

कृपा से तुमने वह दंड भोग लिया होगा ! 'भगवान' शब्द का प्रयोग इसलिए कर रही हूँ कि इससे तुम जैसी स्त्रियों को बड़ी सांत्वना मिलती है। इससे तुम्हें कड़वी से कड़वी बात मधुर लगती है।

अनु ने आगे लिखा-प्राणी की अन्तरात्मा अपने हर कार्य के परिणाम से परिचित होती हैं। तुम जानती थी कि ज्योतिर्मय तुम्हारे साथ क्या व्यवहार करेगा, फिर भी तुम उसके पास गई ? मेरा भी कहना नहीं माना ? अपमानित होकर लौटी। जीवन की अंतिम आशा को मिटाकर। उस क्रोध की चरमोत्मर्षी पर तुमने मानवीयता का भी परित्याग कर दिया। इतनी कठोर और निर्मम बन गई कि तुमने अपने बच्चे को भी मृत्यु के मुख में ढकेल दिया। ऐसा तुम्हें नहीं करना चाहिए। समाज के उस अत्याचार को तुमने समाप्त करके अच्छा नहीं किया। मैं चाहती थी कि वह जिन्दा रह कर चोर-डाकू और आवारा बनता और समाज के लोगों पर अत्याचार करता। फिर किसी की हत्या करके फाँसी के तख्ते पर चढ़कर मर जाता। तुम सोचो न, इस प्रकार के उपेक्षित और तिरस्कृत बच्चों से क्या उम्मीद हो सकती है। यदि वह मर गया, तब समझ लेना कि समाज को एक सताने वाला मर गया। ··· मैं तुम्हें जो बार-बार बच्चे को फेंकने के लिए कहती थी, वह इसीलिए कि अनुचित संतान कर्ण व कबीर अथवा ईसा बड़ी मुश्किल से बनती हैं। प्राय: वे चोर, डाकू और लुटेरे ही बनते हैं। मैं समझती थी कि ममता का आँचल बच्चे से दूर होते ही वह बुराइयों को अपना मित्र बना लेगा और तब समाज के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों को सताएगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मैं तुम्हें उसके महान् बनने की झूठी बातें कहती थी। मैंने यह भी कहा कि वह महान् मेधावी होगा। लेकिन ऐसा संभव नहीं है। यह केवल छल मात्र था। खैर !

अंत में नमिता ने अनु को चिट्ठी लिखी। उस चिट्ठी में केवल उसकी प्रशंसा के अतिरिक्त एक प्रार्थना थी। वह प्रार्थना यह थी मुझे तुम अपने पास बुला लो। यदि तुम्हारी चिट्ठी का उत्तर पन्द्रह दिन के भीतर नहीं आया तो

मैं बिना पूर्व सूचना के आ जाऊँगी।·······सच अनु, जब मैं नितान्त निसहाय हो जाती हूँ तब तुम्हारा मुख 'सम्बल' बनकर सम्मुख नाच जाता है मेरा हृदय केवल तुम्हारी ही अराधना करना चाहता है। चाहे तुम कितनी ही कठोर और विचित्र क्यों न हो, पर मेरी सच्ची सहेली तुम ही हो। तुम चाहे दुत्कारना, धक्के देकर बाहर निकलवा देना, गालियाँ देना, पर मैं आऊँगी तुम्हारे पास ही। मेरे संकट और चरम दुख का पाथेय तुम हो, केवल तुम !

नमिता ने चिट्ठी डाक में छोड़ दी।

१

राशि के तिमिर पंख धीरे-धीरे फैल रहे थे ।

गर्मी की ऊमस में कलकत्ता का वातावरण उतप्त होकर प्राणी समुदाय को आकुल-व्याकुल कर रहा था ।

अपनी बाड़ी में नमिता उत्फुल मुद्रा में अपनी माँ वसुधा को चार सौ रुपये दे रही थी । माँ वसुधा बड़ी प्रसन्न थी । घृणामयी बेटी आज उसके अन्तल का पारिजात हो रही थी । वसुधा उन के भाल को चूमती हुई बोली, आज मैं बहुत सुखी हूँ । तुम्हें हार्दिक-आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारा सुहाग अखंड हो ।"

नमिता ने हल्का सा श्वाँस लिया जैसे उसके मन की तृष्णा, उग्र लालसा और तीव्र रक्तधारा जीवन के एक ही जलजले में सूख गई । खंडित हो गई । न मालूम क्यों उसकी आँखों में अश्रु ढुलक आए ? अश्रुधार को अपने अंचल से पोंछती हुई वसुधा बोली, "तुम्हारी आत्मा को मैंने बहुत कष्ट पहुँचाया था । मैं भी विवश थी । तुम जानती नहीं, खान्दान की मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा लिपटाए एक धर्म भीरू स्त्री इस प्रकार की घटनाओं से कितनी उद्विग्न हो जाती है, कितनी उद्भ्रान्त हो जाती है, यह किसी से छिपा नहीं । किन्तु अब मै बहुत प्रसन्न हूँ । अब मेरे हृदय की हर साँस तुम्हारे मंगल की कामना

करेगी। तुम चिरायु हो और तुम्हें तुम्हारा वर शुभ-दृष्टि सा अनुराग करें।"

"विभूति बाबू को क्यों नहीं लाई ?" वह थोड़ी देर चुप रह कर फिर बोली, "मैं अपने दामाद को देख लेती।"

स्थिर चितवन से नमिता ने अपनी माँ को देखा। उसकी आँखों में व्यथा थी ! अपार करुणा का नर्तन था। शेष जीवन की दुरन्त लालसाओं का संघर्ष और वह अपनी दृष्टि को जमीन पर गाड़ती हुई बोली, "वे नहीं आएँगे, कभी नहीं आएंगे, कभी नहीं आएँगे, उन्होंने शपथ खा रखी है। वे अमीर हैं ! दम्भी है ! नहीं नहीं माँ, वे यहाँ नही आ सकते। यदि तुम्हें अपने दामाद को देखना है, उन्हें आशीर्वाद देना है तो कभी दिल्ली चले आना। उसके अहम् में एक बड़ी विशेषता है। वह करुणा से ओतप्रोत है। देना जानता है। देखो न, तुम्हारे लिए चार सौ रुपये भेजे हैं। मेरे दुर्दिन अब गये। तुम्हारी नमिता राजरानी बन गई।" कहते-कहते नमिता ने अपना मुँह हाथों में छुपा लिया।

"मैं सब कुछ जानती हूँ।" वसुधा कलान्त स्वर में बोली, "दुर्भाग्य अमिट होता है। कर्म भोग भोगना ही पड़ता है।"

"हाँ-हाँ कर्म भोग, यातना, पीड़ा और अशांति। यही जीवन का दुर्दान्त स्वप्न ! निष्ठुर पक्षाघात। बाद में मरण।"

वसुधा कौतुक से नमिता को देखने लगी। अनन्त की भाँति अगम उसकी दीर्घ अँखियों में व्यथा का सागर उमड़ पड़ा। भावुकता उसके स्वर में मिलकर एक विचित्र प्रभाव की सर्जना कर रही थी। वसुधा अपनी बेटी के समक्ष आज बच्ची हो गई। उसका ज्ञान शून्य हो गया। नमिता विज्ञ है, प्रकांड है, विशाल है।

नहीं, नहीं।" उसने अवश होकर अपनी गर्दन को हिलाया, "मरण के स्वप्न को दूर रखो। जीवन के स्पर्श के पश्चात मरण का संगीत, ना बाबा ···ना ? यह यातना असत्य है। मैं नहीं सह सकती। जाओ, अपने पति को साफ-साफ कह दो कि वह अत्याचार नहीं सह सकती। बता, वह तुम्हें क्या यंत्रणा देता है। अब तुम्हारा भाई कमाने लगा···बोल चुप क्यों है !"

"धर्म बार बार नहीं बिगाड़ा जाता। आत्मा से छल एक बार ही किया जाता है। आखिर परलोक और अशांति! नहीं माँ, सब ठीक है। भाग्य में जो लिखा वह मिल गया। उसके दान को महाप्रसाद समझ कर सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए।......सब ठीक है, भालो...!"

वसुधा ने गंभीर होकर दीर्घ मौन धारण कर लिया।

नमिता वस्त्र बदल कर घूमने के लिए चली। कलकत्ता आने पर वह बड़ी उदास रहती थी। दिन भर न कहीं जाना और न कहीं उठना। घर, मौन और चिन्ताएँ। वह उठी और चल पड़ी।

धर्मतल्ला और चौरंगी। सहस्त्र प्रकाश-बिन्दु! भिन्न-भिन्न लोग! काले, गोरे, गेहुँए, पीले। एक अजायबघर! बीसवीं सदी के भूखे और सूखे पशु-पक्षियों का सा प्राणियों का अजायबघर। उनकी चहचहाट और नमस्कार! वह अनन्त भीड़ बिन्दु की भाँति थी। फिर भी उसका अस्तित्व है। संज्ञा है।

जीवन में सहस्त्र आपदाओं की मर्मान्तिक पीड़ा के संचरण में एक आशा ललकती है। वह आशा हमें जीवित रखती है। यह सत्य नहीं है, तब नमिता जीवित नहीं रहती। उसे मरना पड़ता। असमय ही मरण त्यौहार मनाना पड़ता।

चौरंगी पर कदम रखते ही उसे ज्योतिर्मय की याद हो आयी। वे सुखद दिन! अपूर्व और उल्लासमय! आश्विन की पूर्णिमा की भाँति उन्मादित और नदी के ज्वार की भाँति उन्मत्त! जिसे वह चाह कर भी नहीं भूल सकी। वह अपने अतीत को अपने वर्तमान में लीन नहीं कर सकी। यही उसकी गलती थी। यही उसकी दुर्बलता थी। दुरंत पिपासाएँ परिस्थिति से समझौता करके ओझल हो गईं, मिटी नहीं।

यही चौरंगी और उसका यौवन। ज्योतिर्मय और नमिता! प्यार पवित्र प्रेम और अपार अनुराग! कहकहे और मस्ती। नमिता का चेहरा रक्तिमय हो उठा। आँखें सजल हो गईं। वह एक श्रेष्ठ रेस्त्राँ में बैठकर चाय पीने लगी।

चाय पीते पीते उसने सोचा कि उसे कल ही यहाँ से रवाना हो जाना है। कलकत्ता उसके लिए अच्छा नहीं। शांतिप्रद नहीं। चलो, प्रस्थान, दिल्ली और उसका स्वामी !

तभी उसे मोटर रुकने की ध्वनि सुनाई पड़ी। फिर बैसाखी की खट्-खट् ! दो चरण उसकी ओर इस तरह बढ़ रहे थे—खट खट की ध्वनि के साथ कि वह उस ओर कौतुक भरी दृष्टि से देखने लगी।

आगन्तुक आकृति के चेहरे पर चश्मा था। दुबला और पीत मुख ! धोती और कुर्त्ता पहने। वह उसे अपलक देखती रही, देखती रही, देखती रही। "यह···यह····।" शब्द उसके कंठ स्वर में अटक रहे थे। नेत्र विस्फारित हो गए। अपार वेदना के मारे वह चीखना चाहती थी लेकिन लोग क्या समझेंगे सोचकर वह चुप हो गई। आंसुओं को जहर समझकर पी गई। यह आश्चर्य-जनक निष्ठुर आघात ! यह दैवी-अभिशाप ! नहीं, नहीं, नहीं···यह सब झूठ है। यह मनुष्य, यह चश्मा, यह बैशाखी और पक्षाघात जनित टांग ! यह सब झूठ है, झूठ है। उसका अन्तर्मन हाहाकार कर उठा। उसके मुख पर अवसन्नता छा गई।

"ज्योतिर्मय !" पीछे आकर किसीने टूटी टाँग वाले व्यक्ति को पुकारा। सत्य सप्रमाण होकर नमिता के सम्मुख खड़ा हो गया। यही ज्योतिर्मय है, यही, बिल्कुल यही।

वह जड़ हो गई। उसकी चक्षु-सृष्टि क्षण भर के लिए शून्य में केन्द्रित हो गई। उसने अपने आपको बड़ी मुश्किल से संभाला।

"ज्योतिर्मय, चलो उस ओर बैठ जाएं।"

"नहीं समर, मैं इस ओर बैठूँगा।" ज्योतिर्मय दृढ़ता से बोला।

"इस कोने में ? नहीं नहीं, दम घुट जाएगा।" समर ने विनीत स्वर में कहा।

"दम घुट जाएगा, घुट जाने दो पर मैं यहीं बैठूँगा। तुम्हें मेरे साथ बैठना है तो बैठो, नहीं तो चले जाओ।" ज्योतिर्मय ने चिढ़कर कहा। समर विवश प्राणी की भाँति अन्यमनस्क सा उसके पीछे हो लिया। नमिता उन दोनों को क्षण भर के लिए देखती रही। अच्छा हुआ कि ज्योतिर्मय की दृष्टि उस पर नहीं पड़ी अन्यथा.......? नमिता भय और रोमांच से पानी-पानी हो गई।

वह हड़बड़ा कर बिल अदा करके बाहर निकली।

"बीबी जी।" पदारथ ने नमिता को पुकारा।

नमिता ठिठक गई। घूमकर देखा—पदारथ था। अब उसकी मूँछों में सफेदी साफ झलकने लगी थी। आँखों में आयु की थकान झाँक रही थी। हाथ जोड़कर बोला, "यह पाप का फल है। ज्योतिर्मय बाबू जीते जी मर गए।.... यह केवल आपको सताने का फल है।"

नमिता चित्र लिखित सी पदारथ को देख रही थी। पदारथ एक अपराधी की भाँति कह रहा था जैसे वह अपने मुख से ज्योतिर्मय के मन की बात कह रहा हो।

नमिता ने पदारथ की ओर गौर से देखा नहीं। वह भावावेश में कह रही थी, "यह सब झूठ है, एकदम झूठ है। यह ज्योतिर्मय और उसकी टाँग, यह बैशाखी और यह चश्मा, झूठ है, सब झूठ है।"

वह आगे बढ़ गई। पदारथ उसे कौतुक से देखता रहा।

वह पूर्णिमा की रात थी। मधु-रात्रि। महाश्वेत वसना दिग्दिगन्त को आलोकित करने वाली। अपूर्व और अद्भुत।

सारा शहर सोया हुआ था शांत और निश्चित निद्रा के अंक में। केवल जागती थी नमिता। क्लान्त और उद्भ्रान्त!

विस्मृति का आवरण एकान्त में फटने लगा। आत्म-निवेदन से आत्म-धैर्य! वह क्यों कलकत्ता आई? वह यहाँ नहीं आती तो ज्योतिर्मय की यह दुर्गति

नहीं देखती । वह लंगड़ा हो गया । उसकी एक टाँग टूट गई । उसे लकवा हो गया । वह सूरज की तरह तेजस्वी और शशि की तरह निर्मल युवक कितना घिनौना और दयनीय हो गया है ? क्षमा, माँ काली क्षमा ! माँ दुर्गा क्षमा ।

वह शय्या पर निढाल हो गयी । ज्योतिर्मय का पाण्डुर-मुख उसे आतंकित करने लगा । वह वर्तमान को भूल गई । वह भूल गई कि वह परिणीता है, उसकी सीमन्त में सिन्दूर है । पर पुरुष की कल्पना उसके प्रति समवेदना प्रकट करना उसके लिए पाप है, अपराध है ।

तब उसके समक्ष अपने स्वामी का मुख नाच उठा।''''विभूति बाबू, थुल-थुला शरीर और वृद्ध । आत्म-संयम और आत्म-निग्रह के पोषक । अमीर और करुणामय ।

नमिता के बार-बार अनुरोध पर अनु का मन पसीज गया । स्वाभाविक रूप से नहीं, विवशतावश ! न चाहते हुए भी अनु को नमिता के प्रति करुण होना पड़ा । नमिता ने लिखा कि वह आएगी और दिल्ली में तुम्हारे पास ही आएगी ।'''वह गई भी । अनु ने उसे डाँट दिया । वह अपना समस्त सम्मान और गौरव भूल कर अनु के चरण में लोट गई ।

अनु विचलित हो गई । कड़क कर बोली, "मेरे पाँव पकड़ने से कोई लाभ नहीं होगा ? मैं ठोकर मार दूँगी ।"

"ठोकर मार कर भी तुम मेरे सिर को नहीं हटा सकती ।"

"आखिर यह हठधर्मी कैसी ? जब मैंने तुम्हें पहली बार मदद की तब तुमने मुझ को धोखा दिया । अब ?"

"अब भी तुम्हें मेरी मदद करनी पड़ेगी । मैं निसहाय हूँ और सहारा तुम हो । मैं किससे भीख माँगने जाऊँ ?"

"उन खूनी भेड़ियों से जिन्होंने तुम्हें इतना दुर्बल कर दिया ।"

एक पड़ोसिन ने आकर कहा, "मास्टरनी जी, ऐसा क्यों कहती हैं ? बेचारी आ गई है, पनाह दे दो ।"

परन्तु अनु अपने कमरे में ताला लगा कर चली गई। पड़ोसिन पंजाबिन ने उसे आश्वासन दिया। ढाढस बँधाया।

"बहिन, यह मास्टरनी अच्छे चरित्र की नहीं है। दिन भर चटकती-मटकती रहती है। कभी इसके साथ और कभी उसके साथ। भगवान जाने, यह बच्चों को क्या पढ़ाती-लिखाती होगी?" वह विस्मय भरे स्वर में कहती गई, "तुम्हें इसके साथ नहीं रहना चाहिए। यह आवारा है। तुम भी बदनाम हो जाओगी?"

नमिता निरुत्तर रही। वह पंजाबिन अनु के बारे में जो कुछ कह रही है, वह ठीक ही कह रही है। हर मनुष्य की अनु के बारे में केवल एक ही राय हो सकती थी कि वह एक दुश्चरित्र और आवारा युवती है। क्योंकि उसके जीवन का ढर्रा ही ऐसा है।....पर नमिता जानती थी कि वह महान् है, साहसी है, रहस्यमयी है।

बहुत देर के बाद बोली, "कोई हथोड़ा है?"

"क्यों?"

"है, तो मुझे दे दीजिए।"

पड़ोसिन ने हथोड़ा लाकर दिया। नमिता ने हथोड़ा उठा कर अनु के कमरे का ताला तोड़ दिया।

पड़ोसिन भौंचक्की सी देखती रही। देखकर वह लम्बे स्वर में बोली, "यह तुमने क्या कर दिया, मास्टरनी बहुत गुस्सा होगी। आप नहीं जानतीं कि वह कितनी बदमाश औरत है? एक बार उसने अपने नौकर को बड़ी बेदर्दी से पीट कर निकाल दिया था। मैंने पूछा कि बात क्या है तब वह बोली कि कुछ नहीं। बड़ी विचित्र है। मुझे भी उससे डर लगता है।"

नमिता ने शांति से उत्तर दिया, "मुझे उससे डर नहीं लगता दीदी, वह मेरी ढिठाई से डरती है। सचमुच उसकी असीम घृणा में ही प्यार का महान् स्रोत है। वह मुझे बहुत प्यार करती है। देखियेगा, वह मुझे कुछ भी नहीं कहेगी।"

और वास्तव में अनु ने नमिता को कुछ नहीं कहा। संध्या के समय जब वह लौटी तब वह बहुत प्रसन्न थी। उसके हाथ में पत्रिका के अतिरिक्त एक साड़ी थी। साड़ी को नमिता के हाथ में सौंप कर बोली, "इसे पहन कर तैयार हो जाओ, हमें किसी के यहाँ खाना खाने जाना है।"

"मैं आज कहीं भी नहीं जा सकती, बहुत थकी हुई हूँ। सिर में भी पीड़ा है।"

"पीड़ा हो या कष्ट, तुम्हें चलना ही पड़ेगा अन्यथा मैं तुम्हें अभी अपने कमरे से निकाल दूँगी। तुम यह मत समझना कि मैं तुम्हारी इस हरकत पर चुप हूँ। मुझे बहुत क्रोध है और मैं तुम्हें शीघ्र ही दूसरा स्थान दिला दूँगी। तुम्हारी जैसी ढीठ औरत को भी अपने साथ रखने में आनंद आता है।"

नमिता साड़ी को हाथ में लेकर विमूढ़ सी खड़ी रही। वह विश्राम करना चाहती थी। लम्बा सफर था और उस पर अनेक चिन्ताएँ! उसने हाथ जोड़ कर कहा, "दीदी, मुझे क्षमा नहीं कर सकती हो?"

"नहीं, तुम्हें चलना ही पड़ेगा समझी।" उसने दृढ़ता से कहा।

नमिता ने साड़ी पहन ली। बाल बना लिए। मुख दीप्त हो उठा पर आन्तरिक वेदना नेत्रों में सफलता बन चमक उठी।

वे दोनों साथ-साथ बाहर निकलीं। पड़ोसिन ने आश्चर्य से उनकी ओर देखा। उसके मुँह से हठात् निकल पड़ा--"अरे वाह।"

दिल्ली के गोल मार्केट की एक कोठी में विधुर विभूति बाबू रहते थे। दिल्ली में उनका औषधियों का व्यापार था। आज का नहीं, बहुत पुराना। इसके पहले वे कलकत्ता के एक हस्पताल में कम्पाउंडर थे। द्वितीय युद्ध के पूर्व वे डाक्टर घोषाल के साथ दिल्ली आ गए और उन्हीं के साथ उन्होंने सर्वप्रथम औषधियों की दुकान खोली। डाक्टर घोषाल उन दिनों दरियागंज में रहते थे। आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने वाले अति भावुक डाक्टर घोषाल अपने नौकर विभूति को अत्यन्त स्नेह करते थे। विवाह के बारे में उनके अत्यन्त कटु

विचार थे। कहते थे कि विवाह मनुष्य के समस्त जीवन का बन्धन है, चरम दुखमय बन्धन ! बाबा रे बाबा, नारी, दुर-दुर····इससे बचिए। इसे गले न बाँधिये ! डाक्टर घोषाल का विचार कैसा भी हो, पर वह विभूति के लिए दैवी-वरदान सिद्ध हुआ। डाक्टर साहब की असामयिक मृत्यु पर उनकी सारी सम्पत्ति विभूति को मिली। विभूति, तुरन्त विभूति बाबू बन गया। पैसों के साथ उसका सम्मान भी बढ़ा और देखते-देखते उसका विवाह कमलिनी से हो गया।

द्वितीय युद्ध में दवाइयों की ब्लैक मार्केटिंग ने विभूति को मालामाल बना दिया। वह धीरे-धीरे पीने लगा। कमलिनी का रूप-रंग और सुरा का उन्वेग ने एक नए नशे को जन्म दिया। वह उन्मत्त रहने लगा। इधर अपार सम्पत्ति का संचय और उधर दुर्दान्त वासना का सम्मोह। विभूति के मन में पागलपन का नशा छा गया। उसके मस्तिष्क में कमलिनी छा गई। नारी की चिर लिप्सा ! नया रूप और नया स्पर्श। उसका अंग-अंग झंकृत हो गया।

पर जब स्वप्न टूटा तब विभूति पीड़ा से कराह उठा। कमलिनी का देहान्त हो गया। नशा टूट गया। एक नशे के बाद दूसरा नशा चढ़ा। स्त्री के प्रति तीव्र उत्कंठा। वह पागल हो गया। नारी, उसके कोमल अंग, उसकी भीत हरिणी सी आँखें, कमल सा मुख, अरुणिम अधर····सम्पूर्ण, समग्र नारी ·· नारी····नारी !

विभूति के जीवन का चरम लक्ष्य नारी बन गया। उसे लगा कि नारी हीन उसका जीवन प्राणहीन है। उसे नारी चाहिए जो उसके शुष्क व पीड़ित मानस लोक में आनंद और षट ऋतुओं का रस वैचित्र्य उत्पन्न कर सके।

तब वह रात के निविड़ पहरों में कल्पना की अनवरत शृंखला बांधा करता था। नारी के युग-युगान्तर के रूप, आदिम युग की स्वच्छन्दता और स्वामिनी नारी, सीता, अनेक पतियों वाली द्रोपदी, कुमार्यावस्था में पराशर ऋषि द्वारा नियोग की पूर्णाहुति के पश्चात् 'व्यास' को जन्म देने वाली

सत्यवती। विभिन्न रूप–अनेक भेद। दासी, वारांगना, रूप जीवी,······स्वामिनी अधिष्ठात्री, जगदम्बा ! न जाने क्या-क्या ? न जाने कौन-कौन ? पर उसके लिए कोई नहीं। एक भी नहीं। हा, हतभागा विभूति !

तब एक दिन उसकी भेंट अनु से हो गई।

वह अनु के स्कूल में जलसा देखने आया था। अनु के रूप-लावण्य के समक्ष वह अति उदार हो गया। उसने खुले हृदय से दान दिया।

जाते समय अनु ने कहा, "आपका दान इन बालक-बालिकाओं के भाग्य में श्रेष्ठता का निर्माण करेगा।"

"क्या आप मेरे घर खाना खाने आ सकती हैं ?" विभूति बाबू ने प्रश्न किया। अब उन्हें 'बाबू' कहना ही उचित होगा।

"क्यों नहीं ?"

"धन्यवाद।"

शाम के समय अनु उनके घर पहुँच गई। विभूति बाबू ने उसकी खूब आवभगत की। बोले कुछ नहीं। अनु से न रहा गया। मुस्करा कर बोली "आप गभीर क्यों हैं ?"

विभूति बाबू चौंक पड़े।

"सुनिये, यदि आप सदा गंभीर रहते हैं तब मैं आप से कुछ नहीं कहूँगी अन्यथा आप मुझ से खुलकर बातचीत कर सकते हैं।"

विभूति बाबू अवाक् से देखते रहे।

फिर अनु और विभूति बाबू की भेंटें बढ़ती गईं।

एक दिन बातों ही बातों में विभूति बाबू ने कहा, "अनु, मेरे पास अपार सम्पत्ति है, क्या इस में कुछ आकर्षण नहीं ?"

अनु वाक्य की गहराई समझ गई। तुरन्त बोली, "आकर्षण क्यों नहीं है ? आकर्षणहीन व्यक्ति के पास कोई नहीं आता। मैं आप के पास आती हूँ, समझ लीजिये आप में कोई आकर्षण अवश्य है।"

"फिर•••••• ?" विभूति बाबू के नेत्रों में रहस्य चमक उठा।

"बात यह है कि परती धरती को अपनी स्थिति से पूर्ण संतोष है। बीज धारिणी धरा हर ऋतु में नूतन शृंगार करती है किन्तु परती को वही शृंगार पीड़ाजनक लगता है। अपना अपना आनंद, अपनी अपनी रुचि !"

विभूति बाबू मौन हो गए।

एक सप्ताह और बीत गया।

विभूति बाबू बोले, "अनु, आत्म-संयम मोक्ष का मार्ग है।"

"सूक्ति सुन्दर है।"

"लेकिन केवल 'नारी' को छोड़ कर मैं प्रत्येक पर आत्म-संयम रख सकता हूँ,"

अनु हँस पड़ी। उपहास भरे स्वर में बोली, "नारी के अलावा आत्म-संयम अर्थहीन-महत्वहीन होता है। फिर आप को तो नारी के बारे में बातचीत भी नहीं करनी चाहिए।"

"क्यों ?"

"आपकी उम्र जो ढल गई है"

सात तहों में छुपा सत्य नंगा हो गया। उस दिन जाकर विभूति बाबू ने अपने कमरे में आदम कद दर्पण में अपने आप को देखा। देखा तो विश्वास नहीं हुआ। भ्रम का आवरण विदीर्ण हो गया। यौवन उनसे दूर से दूरान्तर हो गया। उनके जीवन में महान् परिवर्वन हो गया। वे व्यथा से अभिभूत हो उठे।

अनु से उन्होंने कहा, "मेरा शरीर बूढ़ा हो गया है पर मन नहीं। मन में नारी के प्रति वही अपरिसीम तृष्णा है।"

"आपने सच कह कर मेरे दिल में सम्मान का स्थान पा लिया। किन्तु आप यह नहीं जानते कि नारी का हृदय भेड़िए के समान होता है, उस पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। इस पर आप••••••।"

विभूति बाबू बीच में ही बोल पड़े, "नहीं, नहीं अनु, मुझे पत्नी चाहिए। यह सूना घर मुझे काटने को दौड़ता है।"

"पत्नी के आ जाने के बाद वह आपको काटेगी।"

"तुम बड़ी निष्ठुर हो।" विभूति बाबू वाचाल हो उठे, "सुनो अनु, इस अपार सम्पत्ति में क्या आकर्षण नहीं ?"

"पूँजी किसी न किसी नारी को आपके आधीन कर ही देगी। क्या आप किसी पंजाबिन शरणार्थिनी से विवाह करेंगे ?"

"ना ''ना''''ना ' मुझे बंगालिन चाहिए,''' ' अपने देश की,''''बंगाल भूमि की। पंजाबिन नहीं, दूसरे मुल्क की नहीं।"

अनु ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह मौन होकर सोचने लगी कि हम में एक दूसरे के प्रति आस्था नहीं, विश्वास नहीं। जातियता का विष-बाण हमारे अन्त:स्थलों की गहराइयों में बैठ गया है। क्या मनुष्य मनुष्य से प्यार करेगा ? विश्व बन्धुत्व का नारा क्या इन्हीं लोगों से प्राश्रय पायेगा ?

"यदि आप पंजाबिन से विवाह करने को तैयार नहीं हैं फिर आप कलकत्ता चले जाइए, जहाँ से आप कोई दीन-हीन युवती पकड़ लाइये। सामाजिक विषमताओं से जकड़ा वह प्रांत आप को एक नहीं, कई युवतियाँ दे देगा। सभी किस्म की, हर आयु की, काली, गोरी और सॉवरी।"

"तुम नाराज हो गई ?"

"नाराजगी की क्या बात है ?" अनु हँस कर बोली। कभी-कभी वह प्रयोजन-हीन विचित्र हँसी हँस पड़ती थी। जिसका मर्म अज्ञेय था।

इसके बाद अनु विभूति बाबू के यहाँ बहुत कम आती जाती थी। वैसे उसका स्वभाव भी कुछ ऐसा था। मित्रता, घनिष्टता और बाद में सम्बन्ध विच्छेद।

पर आज विभूति बाबू ने उससे अत्यन्त आग्रह किया था। उससे विनती की थी कि आज तुम्हें मेरे घर खाना खाने आना ही पड़ेगा। न आई तो तुम्हें मेरी शपथ है।

"तब आप उस लोक में जाने के लिए तैयार हो जाइए। यह शपथ भंग ही होगी।"

विभूति बाबू अवाक् रह गए।

"आप शपथ में विश्वास रखते हैं। जो लोग इन शाब्दिक ऐन्द्रिकता में भूलते हैं, उन्हें मृत्यु व्यर्थ ही अपने साथ ले जाती है। वे मृत्यु को निमन्त्रण देते हैं। आपने शपथ दिलाई। मैंने भंग की। आपके आन्तरिक साहस को झटका लगा। शपथ को लेकर मन में तूफान उठा और मृत्यु आई।" उसने अपना मुँह बिचका दिया।

"कुछ भी हो, आज तुम्हें आना ही पड़ेगा।"

"क्यों ?" वह चिढ़ गई, "क्या मैं आपकी नौकरानी हूँ ?"

"अच्छा, अच्छा ! मत आना बाबा, मत आना बाबा !" कहते-कहते विभूति बाबू का स्वर विगलित हो गया।

"रोइए मत आ जाऊँगी।" वह झल्ला कर बोली, "आज के संसार में लोगों ने बात बात में रोना भी खूब सीख लिया है ? छिः··· यह कैसा पौरुष ? यह कैसा जीवन।" वह विचारों की उथल-पुथल लिए हुए घर लौट आई।

संजोग से नमिता भी आ गई। अनु ने सोचा, "यह नमिता भी बड़ी ढीठ है। बहुत आँसू बहाती है। अपमान और दुत्कार को कुछ समझती ही नहीं। इसे घृणा करो, यह बहुत अधिक प्यार करेगी ?·······पर बेचारी सन्तान हीना हो गई। इसे अपने पुत्र को गंगा की लहरों में फेंकना पड़ा। कितना संकुचित समाज हो गया। सत्यकाम जाबाल महर्षि थे। उसे भी अपने बाप का कोई पता नहीं था। लेकिन उसकी माँ ने स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया है कि वह नहीं जानती कि इसका बाप कौन है ? तब समाज का अन्तस कितना विशाल

था ? कितना उदार था ?·········नारी तभी भोग्या थी पर साथ पूज्या भी। पर अभी नारी केवल भोग्या है, गुलाम है, दास है।

बेचारी नमिता ?

इस प्रकार वह सोचती हुई नमिता के लिए एक नई साड़ी भी खरीद लाई।

× × ×

२



दोनों जनियाँ विभूति बाबू के घर पहुँची। अनु ने नमिता का परिचय दिया, "आपके बंगाल की स्त्री ! बंगाली आँखें, बंगाली नाक, बंगाली मुख, माँस-हड्डी, विवेक और करुणा, सभी कुछ विशुद्ध बंगाली।·········नमिता इन्हें नमस्कार करो, बंगाली उच्चारण में।"

नमिता ने नमस्कार किया। विभूति बाबू के नेत्रों में तृष्णा की दुर्दमनीय आग दहक उठी। नारी,""हां यही नारी, उसके मन की मधु तरंगिनी, उसके हृदय की उमंग।

वे विह्वल हो उठे, "नमस्कार,""आओ बैठो, आप बंगाल देश की हैं। यहाँ कब आई ?"

"आज ही ।"

"यों ही घूमने-फिरने या""?"

अनु बीच में ही बोल पड़ी, "नहीं, जीवन निर्वाह करने । क्या आप कुछ काम दे सकते हैं ?"

विभूति बाबू इस अप्रत्याशित प्रश्न से अचकचा गए । संभल कर बोले, "पहले भोजन से निवृत्त हो जाइए फिर बातचीत करेंगे ?"

अनु भोजन करते भी चुप नहीं रह सकी । निरन्तर कहती जा रही थी, "कल मेरे मोहल्ले में एक सिखनी और पंजाबिन में जोरदार झगड़ा हो गया। बात भी कुछ अधिक नहीं थी । जल के लिए । सिखनी ने कहा—पहले मैं भरूँगी और पंजाबिन ने कहा कि पहले मैं ! पानी तो किसी तीसरी ने ही भरा क्योंकि वे नितान्त उज्जड़ और गवारूँ स्त्रियों की भाँति आपस में भीड़ गई । उनके वस्त्र उनकी छातियों से हट गए और एक के मुँह से खून भी आने लगा । इसके बाद मोहल्ले का वातावरण गर्म हो गया । सौभाग्य की बात जानिए कि सिक्खों और पंजाबियों में ठनी नहीं ।""आज से तीन दिन पूर्व मुझे दिल्ली का एक पत्रकार मिला था । पहले वह लाहोर में था। उसका आज कल मेरी एक सखि से प्यार चल रहा है । मेरी सखि कहानी-लेखिका है। कहानियाँ उसकी दो कौड़ी की होती हैं पर छपती हैं—सबसे अच्छे ढंग से। पत्रकार महोदय को ऐसा विश्वास है कि इस व्यापार से वह छोकरी उसको कभी भी धोखा नहीं दे सकती ।""पर मैं जानती हूँ कि वह लड़की उसे जरूर धोखा देगी क्योंकि उसका झुकाव एक आफिसर के प्रति है, वह भुक्कड़ पत्रकार को अपना क्षणिक मित्र बना सकती है, जीवन साथी नहीं । इनके प्यार का भी अन्त कम फिल्मी नहीं होगा ।""अनु बीच-बीच में विभूति बाबू को देख रही थी । वे अपलक दृष्टि से नमिता को देख रहे थे ।

"विभूति बाबू, आपको नमिता पसन्द है।" अनु ने हठात् पूछा।

नमिता के हाथ का चम्मच तश्तरी पर गिर गया। आँखें उसकी फटी की फटी रह गईं। वह अनु को देखने लगी। विभूति बाबू के ललाट पर पसीना आ गया।

अनु लापरवाही से बोली, "यह विशुद्ध बंगाली है। बंगाली रक्त, बंगाली बन्धुत्व, बंगाली संस्कृति-सभ्यता, कहिए, यह लड़की यदि आपको पसंद हो, तो मैं इससे आपके विवाह की बात तय करती हूँ।"

अनु के शब्द उस वातावरण में तीव्र कम्पन उत्पन्न कर गए। ऐसा लगा—नीरव-निस्पंद वसुन्धरा पर गगन के तारे गण रुष्ट होकर उल्कापात का रूप धारण कर चुके हैं। वे धरती पर भूचाल लाएंगे। धरती डाँवाडोल होगी।

नमिता का समग्र नारीत्व ऐंठ गया। वह चीत्कार कर उठी, "बन्द करो, यह बकवास, बन्द करो।" उसका सारा शरीर काँप रहा था। बेचारे विभूति बाबू भीत-चकित नादान बालक की तरह जड़वत् बैठे थे; वे टुकुर-टुकुर देख रहे थे।

नमिता के नेत्र आँसुओं से भर आए।

अनु खिलखिला कर हँस पड़ी, "यह बकवास नहीं, सत्य है। विभूति बाबू किसी से विवाह करना चाहते हैं।"

विभूति बाबू बीच में ही बोले, "ना, ना, मैं विवाह नहीं करूँगा। आप चुप रहिये, देखिये नमिता जी, अनु की बात बुरी नहीं लगनी चाहिये। वह अप्रिय सदा बोलती है। यह उसका स्वभाव है। आप मुझे उसकी ओर से क्षमा कर दीजिए।"

नमिता क्षमा नहीं कर सकी। उसने अपना मुख आँचल में छुपा लिया। सिसक-सिसक कर बोली, "यह उसका मजाक उड़ाती है, जिसे जीवन में दुख के सिवाय कुछ भी नहीं मिला। किसी ने मुझे ठीक कहा था कि अनु के

हृदय में न जाने कौनसा लोह दैत्य बैठा है जो समय पर अपना प्रहार किये बिना नहीं रह सकता ।"

इसके बाद वातावरण क्षुब्ध हो उठा ।

अनु गुस्से में भर उठी । उसने उठ कर कहा, "मैं जाती हूँ, तुम आ जाना ।"

विभूति बाबू ने अनु को रोका । पीछे दौड़कर उन्होंने प्रार्थना करते हुए कहा, "ये अपरिचित हैं । इन्हें अपने साथ ले जाओ ।" तभी नमिता अनु के पास आ गई । वह उसके पीछे-पीछे चल पड़ी ।

दोनों एक टैक्सी में बैठ गईं ।

टैक्सी के रवाना होते ही अनु उससे बोली, "कल अपना प्रबन्ध दूसरी जगह कर लेना । मुझे तुम्हारा यह बर्ताव जरा भी पसन्द नहीं । मैं अब तुम्हें अपने पास क्षण भर भी नहीं रख सकती ।······रात किसी भी तरह बिता ली जाएगी किंतु सवेरे ही तुम अपना कहीं और चली जाना अन्यथा मैं गुस्से में तुम्हें पीट दूँगी ।"

नमिता कुछ नहीं बोली । वह रो पड़ी, "यही नारी जीवन है । कवि गुप्त जी के शब्दों में अबला जीवन हाय तुम्हारी यह कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।·······नारी, दुख और संताप को संजीले स्वप्न की भाँति संजोए जीती है, मरती है । आह ! किसने कहा कि नारी पूज्य है, वन्दनीय है, सरस्वती है, लक्ष्मी है ? वह सड़क की रेंगती हुई चींटी है, गन्दगी का कीट है, दरिद्रता, लाचारी, दीन-हीन·······।"

नमिता आत्म-मंथन में उन्मत्त होकर चीख पड़ी, "मैं अभी चली जाऊँगी । मुझे तुमसे घृणा है, घृणा ।"

अनु को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ । वह नमिता के समीप आई । नमिता शांत होकर कहने लगी, "मैं अभी जाकर यमुना में कूद पड़ूँगी । अब मैं अशांति से क्लान्त हो चुकी हूँ । मैं पलभर का झंझट पसंद नहीं

करती। तुम मेरे हृदय को समझती क्यों नहीं ? दीदी, इस संसार में मेरा तुम्हारे सिवाय कौन है ? तुम मुझे बार-बार क्यों सताती हो ? बोलो, दीदी बोलो।"

अनु निष्प्राण पाषाण की भांति शाँत रही।

उस रात नमिता नहीं सो सकी।

सवेरे अनु ने उसे चाय बनाकर दी। चाय पीकर उसने नमिता को आज्ञा भरे शब्दों में कहा, "तुम्हें अपना दूसरा प्रबन्ध करना होगा ? मैं अपने साथ तुम्हें नहीं रख सकती।"

"पर मैं जाऊँ कहाँ ?"

"मृत्यु के अलावा जहाँ कहीं भी। संसार बहुत बड़ा है। मेरी राय है कि तुम विभूति बाबू से विवाह कर लो। उन्हें एक स्त्री की आवश्यकता है और तुम्हें एक पति की। उस पति के साथ तुम्हारे जैसी युवती बड़ी शांति से रह सकेगी। ····प्रत्युत्तर मैं सुनना नहीं चाहती। मैं चली। मेरी आज्ञा का ध्यान रहे।"

अनु चली गई।

नमिता काफी देर तक विचारती रही। विचारने के साथ उसे अपने भाग्य पर बड़ा रोष आ रहा था। विधि ने उसके भाग्य में क्या लिखा, उसके जीवन का क्या दुर्दान्त होगा, उसे और क्या यातनाएँ मिलेंगी ? वह कल्पना-दुष्कल्पना में उड़ती गई। उड़ती गई।

अपराह्न बीत गया।

संध्या के आगमन की सूचना सूरज ने क्षितिज के अधरों को चूम कर दी। नमिता उठी और चल पड़ी।

× × ×

३



रास्ते भर नमिता सोच रही थी जीवन की गति चिरन्तन है। धीरे-धीरे उसके अंग शिथिल पड़ जाएँगे। उसके नेत्रों की ज्योति बुझ जाएगी। समस्त पुलकित प्रेरणाएं विस्मृति के गहन गर्त में विलीन हो जाएँगी। तब प्रत्येक पल चिंता का पर्यायवाची हो जाएगा। वह अपने अतीत पर चिंता कर करके अपने बुढ़ापे को भी पीड़ामय बना लेगी। वह भार उसके लिए असह्य हो जायगा। उसे लगेगा कि यौवन के आगमन के साथ ही उसका भाग्य उसके प्रति कठोर हो गया और प्रकृति खूनी भेड़िये की भाँति क्रूर हो गई। वह सदा अपने आप को परिस्थिति के हाथों सौंपती रही। वह बहुत दुर्बल है, अति दुर्बल !

दिल्ली की सड़कें। कोलाहल पूर्ण ! जनसमुदाय के जत्थे के जत्थे। उस विराट कोलाहल में नमिता के लघु विचारों का अस्तित्व !

वह सोच रही थी, "उसे शांति चाहिये, मानसिक शांति, और कुछ नहीं। न अपार वैभव और न विपुल विलास ! बस दो रोटी और दो कपड़े। छोटा सा परिवार। प्रेममय पति और बुल-बुल की तरह चहकते बच्चे। और कुछ नहीं, कुछ नहीं ! शांति, शांति, शांति !"

वह चली जा रही थी— निरुद्देश्य, झंझावेग से । किधर और कहाँ ? वह नहीं जानती । वह इससे सर्वथा अनभिज्ञ थी । उसका मन तीव्र घोष कर रहा था— चलो, और वेग से चलो, इस ब्रह्माण्ड में तुम्हारे लिए भी कहीं सुख है, संतोष है, शांति है ।·······खोजो यात्री, इस निस्सीम नैसर्गिक पृथ्वी पर अपनी अलौकिक प्रवृत्ति के एक क्षण को, इन दुरूह और दुरन्त पगडंडियों के बीच अपनी मंजिल को । वह मिलेगी, जरूर मिलेगी ।

भावावेश के पंख अखिल व्योम के तमाम कोणों को पल भर में नाप लेते हैं । नमिता का अन्तःकरण उड़ कर थक गया । थक कर उसने जैसे साँस ली कि उसने अपने आपको विभूति बाबू के घर के समक्ष पाया ।

वह चौंक पड़ी । विस्मय-विमुग्ध हो गई । यहाँ उसे कौन ले आया ? वह किस प्रेरणा से विभूति बाबू के घर आ गई ? वह द्वार के भीतर गई ।

विभूति बाबू आ गए थे । उनका नौकर हाथ में थैला लिए बाहर जा रहा था । नमिता को देखकर वह बोला, "डाक्टर साहब ऊपर हैं, आपके आने की खबर देता हूँ ।"

नौकर लक्ष्मण उसी क्षण वापस गया । नमिता के मन में एक प्रश्न जागा "क्या विभूति बाबू डाक्टर हैं ?"

तभी विभूति बाबू मुदित-मन आते हुए दिखलाई पड़े । उनके होठों पर मुस्कान थी । अंग-प्रत्यंग में चंचलता ।

"आइए, आइए, सच कहता हूँ कल से मैं आपको एक क्षण भी नहीं भूल पाया । ऐसा लगा कि मैं आपको जन्म-जन्मान्तर से जानता हूँ । नमिता देवी, अनु ने आपके साथ दुर्व्यवहार किया और पीड़ा मुझे हुई । मैं रात भर उद्विग्न रहा । मन कह रहा था, आपसे चल कर क्षमा याचना करूँ ।······· अरे आप खड़ी क्यों हैं ? बैठिये न ?····· यहाँ-यहाँ, इस आराम कुर्सी पर ।·······सुनिये सबसे पहले आप मुझे क्षमा कर दीजिए ।······लक्ष्मण,

ओ रे लक्ष्मरण !" विभूति बाबू उतावली से बाहर की ओर गए फिर वापस मुड़े, "कम्बख्त, कहाँ भाग गया ?"

नमिता जानती थी कि लक्ष्मरण कहाँ गया है, पर उसकी बोलने की जरा भी इच्छा नहीं हो रही थी। वह निर्भाव-सी बैठी रही।

अचानक विभूति बाबू गंभीर हो गए। उसके सम्मुख बैठते हुए बोले, "आप उदास क्यों हैं ?"

नमिता निरुत्तर रही। उसने तीखी दृष्टि से विभूति बाबू को देखा—इतने वृद्ध नहीं हैं, इतने दुर्बल नहीं हैं, मुख-श्री भी आकर्षक है। तन भी बलिष्ठ है। फिर पुरुष का क्या वृद्ध। वह तरुण है, चिर यौवन !

"क्या बात है नमिता देवी, मैं आपकी कुछ सेवा कर सकता हूँ ? कहिए न।"

नमिता के मन में घोर आन्दोलन चल रहा था। वह जीवन के नए मोड़ पर खड़ी थी। उस मोड़ पर जहाँ उसको गहरी शांति, संतोष और सुख मिलेगा। आखिर विभूति बाबू उसके पति बन जाएँ तो क्या बुरा है ? वे इतने बुड्ढे नहीं, जितने लोग समझते हैं ? ऐसा सोचकर उसने ज्यों ही विभूति बाबू की ओर देखा, वे वहाँ से चले गए थे। उनका वहाँ से चले जाना नमिता के लिए श्रेयस्कर सिद्ध हुआ।

वह निश्चिंत होकर सोचने लगी, "विभूति बाबू तारुण्य का उद्दाम लिए भले ही न हों पर उन में तारुण्य का अविवेक भी नहीं है। उनमें वैसी दुष्टता और दुर्दांत वासना भी नहीं है। वे पत्नी चाहते हैं, गृहस्थी चलाने के लिए। अपनी सेवा के लिए। अपने वंश-वृक्ष के लिए। क्यों न वह उन्हें अपना पति बना लेती ? मेरे जैसी ठोकर खाने वाली एक औरत को और क्या चाहिए ? उसकी और विशेष कामनाएँ क्या हो सकती हैं कि उसे एक खाता-पीता और स्वस्थ पति मिले। आयु का अन्तर इन समस्त सुखों के समक्ष गौण है। इन्हें अंगीकार करने के बाद समाज की ठोकर, आत्मा की पीड़ा, स्वजनों

की घृणा, परजनों की उपेक्षा और सबसे बड़ी समस्या भूख कैसे मिटाई जाए उससे मैं मुक्त हो जाऊँगी । मेरा जीवन तूफान आने के बाद निस्तब्ध वातावरण की भाँति शांत हो जायगा । मैं जरूर विभूति बाबू से ...... ?"

तभी विभूति बाबू हाथ में ट्रे लेकर आ गए । ट्रे को मेज पर रखते हुए मंद मुस्कान के साथ बोले, "आप चाय में चीनी कितनी लेंगी, दो या तीन चम्मच ?"

"दो ।" उसने बोलकर विभूति बाबू के चलते हुए हाथों को देखा । सोचा—हाथों में वही स्फूर्ति है जो मनुष्यों में होनी चाहिये और होठों पर भी रक्ताभ है । भला इन्हें कौन बूढ़ा कह सकता है ? औसतन आदमी से तो अच्छे हैं ।

"अरे, मैं मूड़ी भूल गया । कल ही मेरे मित्र के बेटे असीम ने मुझे भेजी है । उसका कोई मित्र कलकत्ता से आया है ।" कह कर वे शीघ्रता से नीचे की ओर भागे और पलक झपकते वापस लौट आए, "मूड़ी में सरसों का तेल और नमक मिर्च डालने पर बड़ी स्वादिष्ट लगती हैं ।"

"आश्चर्य है ?" नमिता ने सोचा, "इनमें बिहारी-नौकरों जैसी शक्ति है । कितनी फुर्ती से नीचे से मूड़ी ले आए ।"

"आप ?" कहकर विभूति बाबू की दृष्टि नमिता की दृष्टि से टकरा गई । दो क्षण दोनों एक दूसरे को अपरिमेय-अलौकिक भावना से देखते रहे । जैसे उस भावना में नारी और नर की चिरन्तन भूख, शाश्वत-स्वार्थ और अमर चाह है । कि मैं तेरा हूँ और तू मेरा । यह घोष है ।

नमिता ने जैसे ही दीर्घ श्वाँस लिया वैसे ही पुरुष की महान् अतृप्ति का क्षणिक स्वप्न भंग हो गया । वह संभलकर बोला, "आप मूड़ी खाइए, मैं आपके लिए चाय बनाता हूँ ।"

नमिता मूड़ी खाने लगी । वह इस क्रिया से बिल्कुल अपरिचित थी । उसके समक्ष दो आँखें, बड़ी-बड़ी मनोहारी-मनोरम दो आँखें ! जिनमें जीवन की

उल्लास-उर्मियों और अनेक अभिलाषाओं की छाया-माया तैर रही थी। उन दो आँखों में उसके प्रति अपार प्यार था। एक याचना थी जो नारीहीन नर के नेत्रों में झाँकती है।

उसकी विचार-धारा ने नया मोड़ लिया, "फिर यह कितनी भक्ति से मेरे सुख की चिंता करता है। चाय खुद बनाकर पिलाता है। इससे अच्छा और कोई पति क्या हो सकता है ? शील, सौन्दर्य और सम्पत्ति ?"

"आपके लिए मिष्टी मँगाऊँ ?"

नमिता चौंक पड़ी, "हैं ?"

"आज आप बहुत उदास जान पड़ती हैं।"

"हाँ-हाँ, सिर में दर्द है बहुत पीड़ा हो रही है ?"

"आप चाय पीजिए, तब तक मैं डाक्टर घोष को फोन कर देता हूँ।"

"वह क्यों ? आप भी तो डाक्टर हैं ?"

"नहीं-नहीं, मैं डाक्टर कहाँ हूँ ? मैं दवाइयों का काम करने वाला एक कम्पाउन्डर हूँ। वर्षों से यह काम करने के कारण और छोटे-छोटे रोग लगातार देखते रहने से लोग मुझे डाक्टर कहने लगे। वैसे मेरी दवा से बहुत से आदमी निरोग भी हुए हैं।"

"फिर आप ही कोई दवा दे दीजिए।"

"ना बाबा ना, आपको मैं डाक्टर से ही दवा दिलाऊँगा। नीम हकीम खतराए जान....।"

"फिर जाने दीजिए। मुझे दवा की जरूरत नहीं।"

"ऐसे कैसे हो सकता है ? मैं नीचे से एक डोज लेकर आता हूँ।" कह कर विभूति बाबू नीचे चले गए।

नमिता सोच रही थी, विभूति बाबू कितने सरल हृदयी हैं। ये अत्यन्त कोमल हैं। वे मुझे अपने हाथ से दवा देना नहीं चाहते क्योंकि वे डाक्टर नहीं

हैं। अभी से मेरे प्राणों के प्रति इतना तीव्र अनुराग।·· क्यों नहीं, मैं इन्हें अपना पति बना लेती? उसकी दृष्टि तत्काल विभूति बाबू के चित्र की ओर गई। चित्र कोई दस वर्ष पुराना था। उसमें विभूति बाबू का व्यक्तित्व सूरज की तरह प्रखर था। नेत्रों में मादकता थी। आकृति पर चमक उद्भासित थी।

"और अब!" उसके विचार ने दूसरा रुख अपनाया, "अब भी उनकी आँखों में कोई अधिक अन्तर नहीं है। अभी भी उनमें वही चंचलता और ओज है। अनु बेचारी ठीक ही कहती थी। मैं व्यर्थ ही उस पर झल्ला पड़ी। मजाक कर लिया सो कर लिया। मुझे उनका अपमान नहीं करना चाहिए। वह सदा मजाक में ही महत्वपूर्ण बात कहती है?

अब नमिता अनु के प्रति अत्यन्त कोमल हो गई थी। विभूति बाबू की अच्छाइयों के साथ वह अनु की भी अच्छाइयाँ देखने लगी। अब अनु उसे बड़ी भा गई। वह जाकर अनु से कहेगी कि वह उसका विवाह विभूति बाबू से करवा ही दे।

विभूति बाबू ने दवा लाकर नमिता को दी। नमिता दवा लेकर उठ गई। बोली, "मैं क्षमा चाहती हूँ, विभूति बाबू, आपको बड़ा कष्ट हुआ।"

"कष्ट कैसा, यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आपकी सेवा करूँ? अनु को मेरा नमस्ते जरूर कहिएगा।"

"जरूर-जरूर।"

नमिता वहाँ से चल कर लौट आई। अनु आज घर से बाहर नहीं गई थी। प्रायः संध्या-वेला उसका घर में मिलना दुष्कर होता है। किन्तु आज वह भीतर है, बिस्तरे पर अर्धशायित हुई।

"दीदी।"

"·······।" अनु चुप हो गई।

"तुम मुझसे नाराज हो? गुस्से हो। चलो, मुझे क्षमा कर दो, उस समय मैं होश में नहीं थी।" वह मृदुल-स्वर में बोली।

"और अभी मुझे होश नहीं है। मैंने तुम्हें कहा न कि तुम अपना प्रबन्ध कहीं और करलो।"

"मैंने कर लिया, किन्तु तुम्हारी सहायता के बिना मुझे वहाँ भी आश्रय नहीं मिल सकता।"

"मैं तुम्हारी मदद करूँगी, ऐसा तुम अपने हृदय से निकाल दो। तुम्हारी ढिठाई और आँसू ने मुझे एक-दो बार कमजोर कर दिया सो कर दिया। अब ऐसा नहीं होगा। पता नहीं, मैं क्यों परास्त हो जाती हूँ।"

"बस, अन्तिम बार कृपा कर दो।"

"नहीं, मुझे अधिक तंग न करो। मैं तुम्हें हाथ जोड़ती हूँ।" अनु तुरन्त अवश हो उठी।

"हाथ जोड़कर तुम मुझ से छुटकारा नहीं पा सकती। मैंने विभूति बाबू को पसंद कर लिया। जाओ, मेरी शादी की बात पक्की करलो।"

अनु क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गई।

फिर बोली, "अब ऐसा नहीं होगा। यह काम तुम स्वयं करलो।"

"दीदी, मैं बहुत दुखी हूँ। अधिक न सताओ। जाओ न बात पक्की कर दो, मैं उन्हें अपना देवता मानकर अपना शेष जीवन सुख-संतोष में व्यतीत कर दूँगी।" उसका स्वर विगलित होगया।

"कह दिया न कि मैं कुछ भी नहीं करूँगी। तुम मुझे क्षमा कर दो।"

"तुम्हें मेरा यह काम करना ही होगा, निश्चय ही करना होगा ?" उसने अनु के चरण पकड़ लिए। अश्रु की दो चार बूँदे, नमिता के नेत्रों से ढुलक कर अनु के चरणों पर गिर पड़ीं। वह स्वयं ऐसे गिरी जैसे वह मिट्टी की मूरत हो और मध्य भाग से टूट गई हो।

× × ×

४



चरणों में गिरना नमिता का सार्थक हुआ। शीघ्र ही नमिता और विभूति बाबू का ब्याह हो गया।

विभूति बाबू को एक नारी की आवश्यकता थी, वह उन्हें मिल गई और नमिता को एक पति की आवश्यकता थी, वह उसे मिल गया। क्योंकि संसार की सबसे बड़ी समस्या पेट है। दोनों ने अपनी-अपनी आवश्यकताओं को पूरा किया।

दोनों एक दूसरे को पाकर अत्यन्त प्रसन्न थे।

एक नारी ने संघर्ष से पलायन करके पुरुष का दासत्व स्वीकार कर लिया। विद्रोहिणी-नारी पुनः पराजित हो गई। युग, ने अपने विस्तीर्ण चक्षु समेट लिए। क्योंकि वह अब नारी को दुर्गा, चण्डी और काली के रूप में देखना चाहता था। वह चाहता था कि उसकी माँस-पेशियाँ लोहे की हों और नाड़ियाँ फौलाद की, पर कुछ भी नहीं हुआ।

नमिता ने अपना समस्त नारीत्व श्रद्धा और भक्ति के साथ विभूति बाबू के उदार हृदय के समक्ष समर्पित कर दिया।

सुहाग रात के उन अनिर्वचनीय क्षणों में विभूति बाबू ने अत्यन्त सम्मान के साथ उसे चाबियाँ देते हुए कहा, "आज तुम इस घर की स्वामिनी हो, यहाँ का सब कुछ तुम्हारा है।"

× × ×

५



दूकान में बैठा हुआ असीम एकाउण्ट की जाँच-पड़ताल कर रहा था। शादी करने के बाद विभूति बाबू दूकान पर बहुत कम ठहरते थे। उनके मन की तीव्र लालसा नवागन्तुक पत्नी के चारों ओर साँप की भाँति लिपटी रहती थी। सूखते सूखते जिन डंठलों में फूल खिले थे, उनके अपार सौरभ में वे खो गए थे।

दूकान में प्रवेश करते ही वे विनम्रता से बोले, "असीम, तुम्हें भाभी ने बुलाया है।"

"क्यों ?"

"मैं क्या जानूँ ? तुम अभी चले जाओ।"

"मैं अभी नहीं जा सकूँगा। मुझे बहुत जरूरी हिसाब देखना है।"

"हिसाब को छोड़ दो। तुम नहीं जानते कि वह कितनी भावुक है। कह रही थी—सुख जीवन भर नहीं मिला। आपकी चरण धूलि लेने के पश्चात् मेरे भाग्य बदल गए। सच कहता हूँ असीम, मैं बहुत भाग्यशाली हूँ, वह मुझे कमलिनी से भी……।" कहते-कहते विभूति बाबू चुप हो गए। मन का प्रच्छन्न भेद प्रकट होता-होता रह गया।

असीम ने बही-खाते बन्द कर दिए।

वह विभूति बाबू के घर की ओर चला। नमिता अपने काले-घने कुन्तलों को खोल कर बैठी थी। काली घटाओं में उसका मुख चाँद सा लगा।

"नमस्कार बहू माँ।" असीम ने गृह-प्रवेश करते ही कहा। वह उसके समीप बिछे आसन पर सिर झुका कर बैठ गया।

"असीम, तुम्हारे एक बहिन है न ?"

"जी।"

"क्या नाम है ? विभूति बाबू कह रहे थे कि वह बड़ी सुशील है।"

"हाँ, बहुत ही अच्छी है।"

"और उसके साथ वह प्यारा-प्यारा बच्चा कौन था ?"

"वह उसका बेटा है प्रसन्न, बहुत ही नटखट है।" असीम के नेत्रों में अव्यक्त सुख झलक आया।

"कल उन्हें मेरे यहां भेज देना। मैं दिन भर अकेले रहते-रहते मन उदास हो जाता है। वह यहाँ आ जाया करेंगी तो मन बहल जाएगा।"

"किन्तु उसे घर-गृहस्थी के झंझटों से ही फुर्सत नहीं मिलती। दिन भर कुछ न कुछ करती रहती है।"

"फिर आज मुझे अपने साथ ले चलो, मैं स्वयं उसे मना कर लाऊँगी।"

वह शीघ्रता से बोला, "आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मैं उसे कल आपके यहां भेज दूँगा।"

असीम वहाँ से लौटा। छन्दा प्रसन्न को चाय-बिस्कुट खिला रही थी। असीम ने लौटते ही कहा, "तुम इसे अभी से चाय पिला-पिला कर बिगाड़ दोगी। अरे, इसे केवल दूध पिलाना चाहिए।"

"दूध यह पीता ही नहीं है।"

"यह भी बीसवीं सदी का है न ? और हाँ, तुम्हें विभूति बाबू की बहू ने बुलाया है।"

"मुझे क्यों ? मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।"

"दीदी, तुम्हें वहाँ जाना ही पड़ेगा। आखिर विभूति बाबू मेरे बॉस हैं। बॉस के अलावा वे मुझे अपना ही बेटा समझते हैं। पिता जी के मित्र होने के कारण हमें उनके सुख का ध्यान रखना चाहिए।"

"कृपा तुम पर की और ध्यान मैं रखूँ ! ऐसा नहीं हो सकता।""""""फिर तुम्हें मेरी दूसरों से की हुई मित्रता और घनिष्टता अच्छी भी तो नहीं लगती ?"

"देख दीदी, व्यर्थ का दोष मुझ पर तुम्हें नहीं लगाना चाहिए। तुम मेरी इच्छा के विरुद्ध प्रसन्न को लाई, छबीली बिल्ली को लक्ष्मी की देवी के रूप में प्रतिष्ठापित किया।"

"और एक दिन तुम उसे चुपके से कहीं दूर छोड़ आए।" पर बीच में ही बोली, "कितने निष्ठुर हो, बेचारी गरीब लक्ष्मी को न जाने कहाँ छोड़ आए ? मुझे पक्का विश्वास है कि तुम्हारी घृणा ने उसे कसाई के हवाले किया है।"

"छिः छिः छिः ! मैं भला उस गरीब बिल्ली को ऐसा भयानक दंड कैसे देता ? सचमुच वह इतनी सुन्दर बिल्ली थी, कि मैंने चाहा वसी बिल्ली कलकत्ता के अजायबघर में रहनी चाहिए। अब की बार जब हम कलकत्ता जाएंगे तब तुम्हें मैं उस गरीब लक्ष्मी को दिखाऊँगा।"

छन्दा असीम के व्यंग को समझ गई। तनिक चिढ़कर बोली, "जा रे जा मैं तुम्हें भली भाँति समझती हूँ। अपना काम कर, मुझे घूमने जाना है। प्रसन्न हठ करता है।"

"हाँ मामा, तुम भी हमारे साथ चलो। कह कर फुदकता हुआ उसके समीप आया। छन्दा के भय से दबी प्रसन्नता के प्रति उसकी घृणा बार बार ऐंठती थी। ऐंठकर उसकी आँखों में दीप्त होती थी और फिर कृत्रिम कोमल

शब्दों में फूट पड़ती थी, "मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकूँगा, मुझे एक जरूरी काम है।"

छन्दा ने तड़ाक से कहा, "असीम, अगर तुम्हें प्रसन्न अच्छा नहीं लगता है तब मैं अपना ठिकाना कहीं और करलूँ ? हजार बार कह दिया है कि मन को दूषित न रखो। क्या बच्चे का हृदय तोड़ा जाता है। न घर से खुद बाहर निकलते हो और न दूसरों को जाने देते हो।"

अपने पर लगाए आरोप को असीम ने ऐसे हटाया, "मेरी प्रवृत्ति एकान्त प्रिय और पलायनोन्मुख है। मुझे भीड़-भड़ाका अच्छा नहीं लगता। इस पर भी तुम मेरी रुचि-अरुचि का ध्यान नहीं रखती।"

"रुचि का ध्यान रखती हूँ पर अरुचि का नहीं।......अब अपने ज्ञान-दान को वन्द करो और कपड़े बदल कर तैयार हो जाओ। यह प्रसन्न तुम्हारे बिना बाहर नहीं जाएगा।"

"कह दिया न, मैं बाहर नहीं जा सकूँगा। तुम्हें बाहर लेकर चलना' एक आफत मोल लेना है। घर से बाहर कदम रखते ही तुम प्रसन्न के संकेतों पर नाचने लगती हो।"

प्रसन्न उसके समीप आकर बोला, "मेरे संकेत पर नहीं नाचेगी तो क्या आपके संकेत पर नाचेगी मामा? माँ मेरी है आपकी नहीं। चलो माँ, हम अकेले ही चले चलेंगे।......तुम आशुतोष......।"

"तो तुम आशुतोष के साथ जाओगी......?"

"तुम नहीं चलोगे फिर हम......।" उसने वाक्य पूरा नहीं किया।

"उस गुण्डे और बदमाश......।"

"क्या अनर्गल बकते हो ? लज्जा नहीं आती दूसरों पर लाँछन लगाते हुए। एक काम करो न, मुझे एक कमरे में बन्द करके रखदो। और प्रसन्न को जमुना में फेंक आओ। यह सदा सदा की लड़ाई मुझे पसंद नहीं है।" उसकी आखें

सजल हो गईं । स्वर भारी हो गया, "मेरी समझ में नहीं आया कि तुम्हारे मन में क्या है ? न मुझे यहाँ से जाने देते हो और न मुझे यहाँ स्वच्छन्दता पूर्वक रहने देते हो ? मैं तुम्हें अंतिम बार कहती हूँ……तुम मुझे कलकत्ता पहुँचा आओ ।"

असीम एक दम निश्चल हो गया । कुछ देर सोच कर वह जलन के साथ बोला, "मैं कपड़े बदल कर आता हूँ, तुम लोग तैयार हो जाओ ।"

प्रसन्न बल्लियों उछलता हुआ बोला, "माँ माँ ! मामा चलेंगे, मुझे नए कपड़े पहना दो ।"

तुम्हारे मामा चलते जरूर हैं पर आत्मा को दुखा-दुखा कर । मैं सचमुच कभी कलकत्ता चली जाऊँगी । मेरी समझ में नहीं आता कि यह मुझ से क्या चाहता है और तुम से उसकी कैसी शत्रुता है ? इस लोक में भले ही सही पर पूर्व जन्म से तुम इसके भीषण शत्रु रहे होगे ।"

असीम ऊपर के कमरे से आ गया था । छन्दा उसे देख कर बिलकुल शांत हो गई ।

तबसे असीम उद्विग्न हो गया । छन्दा घर से निकलते ही सब कुछ भूल गई वह पुनः असीम को अपनी आज्ञाएँ सुनाने लगी और असीम सदा की भाँति उसकी आज्ञा को पूर्ण करता रहा । उसका अन्तर अपनी घृणित-रेखाओं से अनुतप्त हो रहा था । उन घृणाओं के बाहुपाश में वह अज्ञानी-बालक सा अपनी आत्मा को आबद्ध कर रहा था ।

छन्दा का हँसना, चहचहाना और अपने परिचितों के क्षेत्र का विस्तार करना सदा उसे पीड़ा देता रहा । पीड़ा भी ऐसी जो हमारे हृदय-मन्दिर में मधुर घंटाध्वनियों की भाँति प्रवेश करती है जागरण का संदेश देती है और हमें अविराम गति से चिर निद्रा में सुलाती जाती है । इस चिर निद्रा की क्रिया से हम अपरिचित रहते हैं ।

असीम के हृदय-कपाट प्रसन्न के वास्ते रुद्ध थे, बन्द थे। यदि छन्दा का भय नहीं होता तो उसमें वही आसुरी वृत्ति जाग जाती जो कंस के मन में जागी थी। वह रात्रि के निस्पंद क्षणों में अभिसारिका सी चाल से भाग कर प्रसन्न को कहीं फेंक आता।

छन्दा का सामीप्य-सुख उसके प्राणों में स्पन्दन की भाँति था। तभी वह उस पर किसी भी तरह एकाधिपत्य रखना चाहता था।

गृह-प्रवेश करते ही असीम ने शांत स्वर में पूछा, "कल तुम विभूति बाबू के घर जाओगी ?"

"नहीं जाऊंगी।"

"मेरे मन की विवशता का अनुचित लाभ मत उठाओ दीदी, कभी कभी मेरी भी बात मान लिया करो। स्नेह माँगता है तो स्नेह, स्नेह जब देता तब स्नेह, स्नेह का प्रतिदान स्नेह ही हो सकता है।"

छन्दा भीतर चली गई।

प्रसन्न ने जोर से पुकारा, "माँ !"

घर में महा विश्रान्ति छा गई।

× × ×

६



नमिता दूसरे दिन छन्दा की प्रतीक्षा कर रही थी। इधर छन्दा ने निश्चय कर लिया था कि वह नमिता के यहाँ नहीं जाएगी। उसके कार्य अनेक हैं।

असीम ने उस पर अधिक दबाव नहीं दिया।

अचानक अनु आ पहुँची। अनु के आगमन पर नमिता ने अधिक उत्साह नहीं दिखाया। मन्दहास के साथ बोली, "आज रास्ता भूल गई क्या ?"

"नहीं तो, बात यह है कि स्कूल का एक शो होने वाला है, तुम्हें कुछ टिकट देने आई हूँ।"

"दे दो !"

"सौ रुपए के ?"

"सौ।" आश्चर्य से नमिता ने पूछा।

"सौ अधिक नहीं हैं डार्लिंग, विभूति बाबू ने ब्लेक मार्केटिंग में खूब रुपया कमाया है।" वह उपहास मिश्रित दीर्घ-स्वर में बोली।

नमिता को अनु की यह बात खटक गई। पति-निन्दा उसके कर्णों को प्रिय नहीं लगी। बोली, "दीदी, अब तुम्हें निष्ठुरपन का त्याग कर देना चाहिए। आखिर कभी तुम्हें अपने भविष्य के बारे में भी सोचना चाहिए। तुम सर्वगुण सम्पन्ना हो, सुन्दर सा वर ढूँढकर गृहस्थी बसालो। फिर तुम्हारे बच्चे होंगे''''।"

बीच में ही अनु बोल पड़ी, "फिर मैं बुढ्डी होऊँगी और इसके बाद यम के विकराल दूत आकर मेरी आत्मा को ले जाएँगे। पार्थिव-आवरण हट जायगा। नमिता, उपदेश उन्हें दिया करो जिन्हें सुन्दर शब्दावली में जड़े भारी-भरकम विचार अच्छे लगते हों। मुझे न पति, बच्चा, मित्र-शत्रु और गृहस्थ चाहिए और न ही अपार सुख ! मुझे मेरी स्थिति से संतोष है।"

"इस पर भी तुम्हारे जीने का कोई उद्देश्य होगा ?"

"मैंने इस पर गंभीरता पूर्वक कभी नहीं विचारा और न ही इस पर विचारने की आवश्यकता ही समझी। आदमी जन्म लेता है, पलता है और मर जाता है। जीने की कला और महत्ता पर वैज्ञानिकों की भाषा में सोचने वाले प्राणी अधिक सुखी नहीं देखे गए हैं। मैं जीवन को उन श्रम करने वाले प्राणियों की तरह मानती हूँ-सूर्य अस्त और मजदूर मस्त ! जो दिन भर में कर लिया, उसकी चिंता नहीं। हित-अहित पर मैं अपना समय व्यर्थ नहीं खोती। मैं अपने शत्रु-पर भी अधिक नहीं सोचती। ज्योतिर्मय से मुझे घृणा जरूर है पर मैं उसके लिए व्यग्र नहीं होती। समय आएगा तब प्रतिशोध जरूर लूँगी।"

नमिता ने बात को आगे नहीं बढ़ाया। वह भीतर गई और सौ का नोट लाकर उसने अनु के हाथ में रख दिया। अनु उसे अपने बैग में डालती हुई बोली, "धन्यवाद ! यह लो दस टिकट, विभूति बाबू को जरूर लाना।"

अनु हवा की तरह बाहर चली गई।

नमिता साड़ी बदल कर असीम के घर की ओर चली गई।

छन्दा कुर्सी पर बैठी हिन्दी का कोई उपन्यास पढ़ रही थी। द्वार के खटखटाने की ध्वनि सुन कर उठी। द्वार खोला।

"आप, आइए, देखिए मैं आपके यहाँ इसलिए नहीं आ सकी कि प्रसन्न स्कूल से आते ही नाश्ता माँगता है। उसके स्कूल लौटते ही मैं स्वयं आ जाती।"

"कोई बात नहीं।" नमिता ने सहजता से कहा, "मैं स्वयं आ गई। आपका स्वभाव मधुर है और मुन्ना···मुझे बहुत प्यारा लगा। फिर अकेले-अकेले मन भी नहीं लगता।"

"आप बैठिए न ?"

नमिता कुर्सी पर बैठकर बोली, "आज मेरी एक सहेली के स्कूल में जलसा है। आपको जरूर आना पड़ेगा। ये लीजिए तीन टिकट, आपका, असीम बाबू का और प्रसन्न का।"

"इसकी क्या जरूरत थी ?"

"क्यों ? क्या असीम बाबू पराए हैं। विभूति बाबू उन्हें अपना बेटा समझते हैं। ·····और यह लीजिए आपके प्रसन्न के लिए मिठाई, कहिएगा-तुम्हारी एक अनजान मौसी दे गई है।"

मध्यान्ह का सूरज प्रखरता से चमक रहा था। गर्मी को महसूस करते हुए अतिथि की खातिर-तवाजा करनी आवश्यक थी। छन्दा बोली, "आपके लिए शर्बत लाऊँ ?"

"नहीं दीदी, मैं अभी जा रही हूँ। उन्हें फोन करना है। हम भी आएँगे।"

"आप जब उन्हें फोन करें तब असीम को भी जल्दी आने की सूचना दे दीजिएगा।"

नमिता ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

× × ×

७



स्कूल के 'वैरायटी शो' में नमिता और विभूति बाबू कुछ पहले पहुँच गए थे। विभूति बाबू ने अनु से भेंट करनी चाही पर अपनी व्यस्तता के कारण वह उनसे भेंट नहीं कर सकी। नमिता को छन्दा की प्रतीक्षा थी। दिल्ली में अब वह एक ऐसी सहेली चाहती थी जिसका जीवन शांतिपूर्ण हो। न उसमें कोई कम्पन्न हो और न कोई घटना। अनु से उसका मेल नहीं हो सकता। उसे एक ऐसी सहेली की आवश्यकता थी जो उसी की तरह जीवन को अपना सर्वस्व समपर्ण कर चुकी हो। ऐसी छन्दा ही हो सकती है। विधवा, ममता-मयी और अपने बच्चे में तन्मय।

छन्दा और असीम आए। प्रसन्न उनके साथ नहीं था। नमिता न जाने क्यों उदास हो गई। पूछ बैठी, "प्रसन्न कहाँ है?"

पहली बार छन्दा ने नमिता के मुख को गौर से देखा। उसे सन्देह हुआ कि यह उसकी ममता का विभाजन न कराले। लेकिन नमिता के मुख पर पावन शांति और स्निग्धता झलक रही थी।

छन्दा को चुप देखकर असीम बोला, "प्रसन्न आज फैन्सी ड्रेस में भाग ले रहा है। बंगाली होकर वह मारवाड़िन बच्ची बनेगा। मेक-अप का भार अनुसूइया जी ने लिया है।"

नमिता मुदित हो गई। उसने तुरन्त सोचा कि यह अवसर छन्दा को कृतज्ञ करने का है। वह प्रसन्न को इनाम देगी। सोने का तग़मा····स्वर्ण पारितोषिक !

पहली पंक्ति में पत्रकार बैठे थे। सभी पत्रकार क्या छोटे और क्या बड़े ? स्त्री द्वारा निमन्त्रण पाकर वे अपने को गौरान्वित समझ रहे थे। फिर अनु जैसी युवती जो प्रत्येक के साथ बैठ कर चाय, कॉफी और शराब पी सकती है। उसकी कई पत्रकारों से बड़ी अच्छी मित्रता है। तभी उसकी स्कूल के वर्ष भर में दो-तीन बार चित्र छप जाते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात देश का सभी दृष्टिकोणों से उत्थान हुआ। उनमें सांस्कृतिक-विकास भी एक मुख्य है। स्कूलों व कालेजों में चाहे नियमबद्ध हमारी संस्कृति का उत्थान भले ही न हुआ हो, पर एक ज्वार जरूर आया। इससे स्कूलों के नियामकों व कर्णधारों को दो लाभ मिले, बड़े-बड़े लोगों से इस बहाने मित्रता बढ़ गई और देश भर में नाम भी हो गया। बच्चों के माँ-बाप इसलिए प्रसन्न थे क्योंकि वे सोचते थे कि लड़कियाँ विशेष व्यक्तित्व लेकर विवाह के परमयोग्य बन जायेंगीं और लड़कों की बिक्री में हमें सबसे ऊँची बोली मिलेगी।

कैसे भी स्वार्थ क्यों न टकराते हों ? अनु की स्कूल का वह उत्सव अत्यन्त सफल रहा। फैन्सी ड्रेस का प्रथम पुरस्कार 'प्रसन्न' को ही मिला। नमिता ने अलग से उसे पुरस्कार दिया। पुरस्कर की घोषणा सुन कर छन्दा खुश हो गई। उसने नमिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

विभूति बाबू प्रसन्न को मारवाड़िन बच्ची के भेष में देख कर चौंक गए थे। उन्होंने नमिता को सावधान भी किया था, "इसकी आँखें ठीक तुम्हार जैसी हैं।"

नमिता ने प्रसन्न को गौर से देखा था। इतने गौर से कि उसे अपनी आत्मा को कहना ही पड़ा कि "हाँ आँखें मेरी ही हैं।" इसके बाद उसने लम्बा मौन धारण कर लिया था जो पारितोषिक वितरण के समय ही टूटा।

× × ×

८



दो बज गए पर नमिता सो नहीं सकी। अन्धेरी रात साँय-साँय कर रही थी। जनहीन सड़कें निस्तब्ध और स्पन्दनहीन सी जान पड़ती थीं। नमिता तुरन्त उद्वेग और तीव्र उत्कंठा से अस्थिर हो उठी। उसके मस्तिष्क की नसें पीड़ा से चीख सी उठीं। वह छत की दीवार का सम्बल लेकर खड़ी हो गई। उसकी भ्रू-पलकों ने अपने कपाट बन्द कर लिए।

भाव-लोक में प्रखर प्रकाश उद्‌भासित हो गया। भीड़ का समुद्र उबल रहा है। उस भीड़ में एक बच्चा माँ-माँ चिल्ला रहा है और माँ हृदयहीन होकर भीड़ में अपना अस्तित्व लुप्त कर रही है। बच्चे का स्वर करुण से करुणतर हो रहा है। माँ-माँ ··माँ! पर जगतधात्री जगदम्बा समस्त मोह-बन्धन तोड़ कर दूर से दूरान्तर हो रही है। यह कैसा विधान, यह कैसी निष्ठुरता, यह कैसा सन्तान-प्रेम? जागृत-स्वप्न भंग हो गया। चेतना जाग उठी। नमिता को लगा कि एक शव उसके पास निस्पंद पड़ा है। वह चिर मौन है और वह चिर हाहाकार कर रहा है। वह वीभत्स और विश्री है और वह सुन्दर और सुडौल है।

और उसके हाथ उस विचित्र लाश के खून से लाल हो गए।

वही गंगा का तट, उसकी उत्ताल तरंगें, उसका भीम गर्जन! चाँदनी की मधुर मुस्कान लिए उसका बच्चा माँ···।

नहीं-नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकती। मैं माँ हूँ-माँ। अधिष्ठात्री, करुणामयी, जगत-जननी ! माँ-माँ-माँ ! यह उद्‌घोष उसके मानस-लोक के दिग्दिगन्त को ध्वनित-प्रतिध्वनित कर उठा।

वह सिसक पड़ी।

विभूति बाबू उसके पास आए। उसके सिर पर अपना कोमल हाथ रखकर ममता भरे स्वर में बोले, "क्या बात है नमिता, इतनी रात गए रोना कैसा ?"

नमिता भक्ति-भाव से विह्वल होकर विभूति बाबू के चरणों में गिर पड़ी, रोदन पूरित स्वर में बोली, "जिनका अतीत अश्रुमय होता है वे सुखद वर्तमान में भी रोया करती हैं। दुख का नग्न रूप सुख है और सुख का सौन्दर्याच्छिन्न छलिया रूप अति सुख, भोग-विलास अर्थात आगामी अत्यन्त पीड़ाजनक दारुण-दुख है।...है चिरन्तन दुख ही, इसलिए कभी-कभी नींद भाग जाती है और अश्रु आ जाते हैं। मन कुंठित हो जाता है। भीतर वेदना का वाष्प बन उड़ता है और नेत्रों के आगे कुहासा छा जाता है।

"पगली कहीं की ! इस प्रकार मन को नहीं सताना चाहिए। यह भी कोई विचारने की बात है कि यह काया मिट्टी की है और मिट्टी में ही मिल जाएगी अथवा जीवन का चरम सत्य मृत्यु ही है। अभी शेष जीवन के महानतम सुख पर विचार करो। मृत प्राय: पिपासाओं को हमें पुनर्जीवित करना चाहिए अनुरक्ति की ओर तीव्र गति से कुलाँचे भरनी चाहिए ताकि जीवन-पथ सहज हो जाए।" कह कर विभूति बाबू ने नमिता को अपने वक्ष में समेट लिया।

नारी और नर !

पिपासा और समर्पण !!

तिमिर-तूफान के पंख और विशाल हो रहे थे।

नमिता विभूति बाबू के चरणों में इस तरह पड़ी थी जैसे कोई पापिन अपने देवता के समक्ष पड़ी हो।

× × ×

९



"नमिता मुझे अच्छी नहीं लगी।" छन्दा ने छूटते ही कहा।

असीम पिता-तुल्य विभूति बाबू के बही-खातों में तड़के ही लग गया था। वह चाय की चुस्की लेता हुआ बोला, "वैसे विभूति बाबू मुझे बहुत ही प्यार करते हैं किंतु उनकी इस बीमारी से मुझे क्षण भर भी चैन नहीं मिलता। राष्ट्र की चोरी सो चोरी, ऊपर से उनको कुछ कहा भी तो नहीं जाता। कहीं छन्दा, वे अपने इस अपूर्व-स्नेह बन्धन के बहाने मुझे गधा तो नहीं बना रहे हैं?

छन्दा विहँस कर बोली, "गधा बार-बार गधा थोड़े ही बनता है।"

"तुम मजाक करने लगीं। बात विचारणीय है।"

"फिर तुम उनकी नौकरी छोड़ दो।" छन्दा तपाक से बोली।

"ना बाबा, ना, तीन सौ पचास टका (रुपए) की नौकरी। एकदम नहीं। इतनी अच्छी नौकरी मुझे सात जन्म में भी नहीं मिल सकती।"

छन्दा गंभीर हो गई, "असीम, मैं कलकत्ता जाना चाहती हूँ। यहाँ मेरा मन नहीं लगता।"

असीम ने कलम नीचे रखदी। टूटते हुए स्वर में बोला, "दीदी, तुम मुझ पर बड़े सा बड़ा अत्याचार करलो पर यह न कहो कि कलकत्ता चलो। मुझे वहाँ से घृणा है।"

"अपने देश से ?"

"हाँ, जब अपनी ही मिट्टी निर्माण की जगह विध्वंश करती है तब उससे प्रेम का बन्धन नहीं बाँधना चाहिए। यहाँ हम बहुत सुखी हैं। मैं, तुम और यह प्रसन्न ? छोटा सा घर, शांति और संतोष। इससे अधिक एक मनुष्य को चाहिए ही क्या ?" वह कुछ रुक कर पुनः बोला, "सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने देश में आदमी उन्नति नहीं करता। मारवाड़ियों ने अपना देश छोड़ा, बड़े पैसे वाले बन गए। मैं कलकत्ता में १५० रुपए से अधिक कभी कमा नहीं सका। यहाँ ३५० मिल रहे हैं। पैसा पर्याप्त मिलने के कारण हम लोग सुखपूर्वक रह भी रहे हैं।"

"फिर तुम्हें मेरी एक शर्त माननी होगी ?"

"क्या ?"

"इस रहस्य को—"प्रसन्न मेरा अपना बच्चा नहीं है"—तुम उस मगर की तरह निगल जाओगे जिसका पेट बहुत विशाल होता है।''''' इसके प्रगटीकरण पर मैं एक क्षण भी यहां नहीं रहूँगी।"

"आखिर इतनी कड़ी शर्त्त क्यों ?"

प्रसन्न उठ कर जम्हाइयाँ ले रहा था। उसकी ओर देखकर छन्दा बोली, "यह शर्त्त इसलिए है कि कल लोग यह न कहने लगे—छन्दा का अपना कोई नहीं है।"

प्रसन्न ने उठकर खिड़की खोल दी। उगते सूरज की नाचती किरणें कमरे में छितर गईं थी। कमरा प्रकाश से अत्युज्ज्वल हो गया।

"माँ, कल मैं कैसे लगा ?" वह छन्दा की गोद में बैठ गया। छन्दा उसका पावन-चुम्बन लेती हुई बोली, "बिलकुल मुझ जैसे, तुम्हें स्त्री के भेष में देखकर मुझे मेरा अतीत याद आ गया। मैं भी तुम्हारी तरह पुरुष बनने का हठ किया करती थी '''''बाबा प्रायः तंग रहते थे। हमारा बचपन भी क्या था ? नन्हीं-नन्हीं चिड़ियों की तरह चहकते थे, काश, वे क्षण थोड़े समय के लिए मिल जाते।"

असीम बीच में ही बोल पड़ा, "छन्दा मिथ्या-भाषण कर रही है। कल तुम बिलकुल भाँड लग रहे थे।"

"देखो मामा, झगड़ा हो जाएगा।"

"हो जाने दे।"

असीम का इतना कहना था कि प्रसन्न उस पर टूट पड़ा। पहलवानों की भाँति हूँ-हूँ करने लगा। असीम ने उसे अपने सीने से चिपका लिया और भावावेश में आकर उसने उसके शत-शत चुम्बन ले लिए।

तब तक छन्दा कहीं और खो गई थी। वह छत पर जाकर बैठ गई। टीन के छप्पर के नीचे। उसकी दृष्टि सड़क के पश्चिम छोर पर पड़े कुछ चिथड़ों की ओर गई। आज से तीन दिन पूर्व वहाँ एक बुढ़िया का देहान्त हुआ था।

वह बुढ़िया सन् ४७ के दंगों में लाहौर से आई थी। मरण के उस नृशंस क्रीड़ा-स्थल में उसने अपना सर्वस्व खो दिया था। वह कहा करती थी, "मैं गरीब थी, मेरा बेटा गरीब था। वह अनपढ़ और गंवार था, वह एक हलवाई के यहाँ बर्तन साफ किया करता था, पर था मेरा बेटा, मेरा राँझा, मेरा लाल मेरा तारा। वह सुन्दर भी नहीं था, ताकतवर भी नहीं था, पर था मेरा तारा, मेरी आँखों का नूर। वह बड़ा सीधा-सादा था, स्वाभाव का भोला था पर था मेरा तारा, मेरे जिगर का टुकड़ा।

जब लाहोर की जमीन इन्सानी खून से लाल सुर्ख हुई तब मेरा तारा माहिया भूल गया और वह मुसलमानों को कत्ल करने लगा। जब वह मेरे घर से तलवार लेकर निकला तब उसमें मजहबी अन्धापन जोर से उबल रहा था। मैंने उसे झपट कर रोका और रोते हुए पूछा, "तारा, तू कहाँ जा रहा है, किसका खून करने जा रहा है?"

मुझे अच्छी तरह याद है। ठीक उसी समय मेरी पड़ोसिन वहीदन ने अपने बेटे 'आदम' से कहा, "बेटा, तू कहाँ जा रहा है?"

तारा ने कड़क कर कहा, "अल्ला को समाप्त करने।"

"आदम गर्ज कर बोला, "प्रभु को नेस्तोनबूद करने।"

तारा का स्वर और तेज हुआ, "कुरान को खाक में मिलाने।"

आदम का स्वर आकाश की ओर उठा, "रामायण को जलाने।"

बुढ़िया ने कहा, "मैं कुछ नहीं समझी। मुझे यह भी ख्याल नहीं रहा कि यह भारी भरकम भाषा कौन बोल रहा है? मेरा तारा या आदम अथवा सारे हिन्दू-मुसलमान!

उनके बाहर निकलते ही मैं दीवानी सी उसकी ओर लपकी। कितना भयानक मंजर था? उफ! मेरा सीधा-सादा तारा उस दिन कितनी बेदर्दी से इन्सानों को मार रहा था और वह आदम सचमुच में शैतान हो गया था। लूट-खसोट, हत्याएँ-डाकेजनी और बलात्कार, अपहरण!

तभी मैंने देखा कि आदम हमीदा को लेकर भाग रहा है और तारा सरस्वती को। कृष्ण राम की दूकान लूट रहा है तो करीम जुलेखा की अस्मत को वहशी की तरह नोच रहा है। मैं वह भयानक और हैवानी मंजर नहीं देख सकी। यह कैसी लड़ाई? यह कैसा बदला!

मैं तारा की ओर भागी। उसके बालों को पकड़ कर चीख पड़ी "नीच, कमीने, जाहिल, देखता नहीं, यह सरस्वती है, तेरी हिन्दू बहिन!"

उसने अट्टहास करके कहा, "बहिन, किसकी बहिन? हट जाओ, यह कितनी खूबसूरत .....!"

मुझ से न रहा गया। मैंने तड़ाक से उसके गाल पर एक थप्पड़ मार दी, "छोड़ दे इसे, नहीं तो मैं तुम्हें जान से मार दूँगी।"

उसने नहीं छोड़ा और मैंने अपने बच्चे को अपने हाथ से ही मार दिया। उसका छुरा मेरे हाथ में था—खून से रंगा हुआ। लाल, गर्म और ताजा खून।

सरस्वती ने चिघाड़ कर कहा, "माँ!"

"हाँ बेटी !"

"देखो माँ, इसमें कुछ जेवर हैं, इन्हें ले लो और भाग जाओ, जल्दी करो, भागो, माँ देखती क्या हो ? भागो न ?"

"और तू ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"मैं ?" वह लुढ़क गई। मैंने देखा कि उसकी गुप्तेन्द्रिय में छुरा भोंका हुआ है। मैं गुस्से में भर उठी। मेरा अंग अंग फड़कने लगा। मैंने कूद कर अपने तारा को पाँवों से कुचल डाला। वह राक्षस था, इन्सानी खून को पीने वाला दरिन्दा !

उसको मारने के बाद मेरी आँखें छलछला आईं। आदम किसी मुसलमान लड़की को लेकर भाग रहा था। उसकी माँ को किसी गुण्डे ने मार दिया इस-लिए वह एक कोने में लुढ़की पड़ी थी।

मैंने चाहा कि मैं उस आदम का पीछा करूँ पर पुलिस ने आकर हमें तितर-बितर कर दिया।

जब मैं दिल्ली पहुँची तब बहुत थक गई थी। दोनों पाँव लड़खड़ा रहे थे और आँखों की रोशनी भी मिट चली थी। मैंने अपने तारा को इस ३० वर्ष की उम्र में क्यों मार डाला ? मैं खुद मौत की देहलीज पर आकर अनाथ क्यों बनी ?

मेरे कुछ सगे-सम्बन्धी थे, वे मुझे अपने घर लेगए। उन्होंने मुझे तारा का स्नेह दिया। सभी लोग मुझे 'माँ' कहते थे। पूरे एक साल में मैं यह भूल गई कि मैं बेगानों के बीच हूँ। मुझे लगा कि मैंने एक हत्यारे को मार कर पाँच देवताओं को पा लिया है।

लेकिन मुझे यह थोड़े ही पता था कि ये इन्सान मुझे नहीं, मेरे पैसे को प्यार करते हैं, उन बेगाने सिक्कों की इज्जत करते हैं। ये यांत्रिक-सभ्यता के कीड़े इन्सान को नहीं, इसके लहू को चाहते हैं। मैंने अपना लहू दे दिया। सरस्वती के हजारों रुपए के जेवर ! तब उन्होंने मुझे गन्दी कुतिया की तरह

निकाल दिया। भूख के हजारों कांटे मेरे पेट में चुभने लगे। निराश्रय थी आवारा बन गई। इधर-उधर दिल्ली की सभी गलियों में चक्कर निकालती रही। उससे भी थक गई तब यहाँ स्थाई डेरा जमा लिया। बच्चे मुझे पगली समझते थे और बड़े बुड्ढे शरणार्थिनी ! वे सब मेरे प्रति दयावान हो उठे कि जरूर मुसलमानों ने इसका सब कुछ लूट लिया है। जरूर इसके हजारों की सम्पत्ति होगी, जगह-जमीन होगी पर नहीं। मैंने लोगों से चिल्ला कर कहा "मैं झूठ भी नहीं बोलती मेरे पास कुछ नहीं था, मैंने अपना कुछ नहीं लुटाया। मैं जैसी थी, वैसी ही आई हूँ केवल ....।"

."हाँ मैंने अपने बच्चे को मार दिया। मारती नहीं फिर क्या करती ? ऐसे दरिन्दे इन्सान क्या किसी का भला कर सकते हैं ? हमीदा को मारते-मारते सरस्वती पर टूट पड़े और इसके बाद वे अपनी माँ के पेट पर ..... ऐसे शैतान को मैं जन्म देकर बड़ी शर्मिन्दा हूँ। वह मेरी कोख में ही क्यों नहीं मर गया।

छन्दा को अच्छी तरह स्मरण है कि शनैः शनैः वह सत्य की रणभेरी को जाने वाली वत्सला अभाव क्षुद्धा और उपेक्षा से विक्षिप्त हो गई। चिथड़ों में लिपटी वह दिन भर बैठी रहती थी। मोहल्ले वाले भिखारिन समझ कर पैसा या दो पैसा फेंक जाते थे। एक दो पड़ोसी युवतियाँ जो नितांत भौतिक वादी थी, जिनका धर्म-कर्म पर तनिक भी विश्वास नहीं था, जो रूप प्रदर्शन के लिए आधुनिक प्रसाधनों का खुल कर प्रयोग करती थीं, वे साँझ सवेरे दो-दो रोटियाँ दे जाती थीं। उस वृद्धा के पास मिट्टी का बर्तन था जिसमें सदा पानी भरा रहता था। उस पानी में अन्न के कई छोटे-छोटे दाने तैरते रहते थे।

कभी-कभी वह बहुत पीड़ित होती थी तब वह रास्ते से गुजरने वाले यात्री को पुकारती थी। यात्री घृणा से मुँह बीचका कर आगे बढ़ जाता था। कभी कभी कोई बेकार व्यक्ति अपने मनोरंजन के लिए उसकी पुकार सुन कर उसके पास आ बैठता था। तब वह विन्घल होकर धीरे धीरे कहती थी, "मैंने अपने बेटे को मार कर अच्छा नहीं किया। आज मेरा अपना बेटा होता तो क्या वह मुझे इस हालत में देखता ? वह अपनी माँ को नफरत से फेंके हुए टुकड़े खाने

देता ? मैंने उसे इन्सानियत के लिए मार दिया और अब लोग मुझे इन्सानियत समझ कर मार रहे हैं।

सचमुच आज का आदमी दोगली संतान है। अपनी माँ को नहीं पहचानता सत्य का सम्मान नहीं करता। नाते-रिश्ते का ख्याल नहीं। एक पैसा! हाय पैसा! ओय पैसा! मशीन की तरह उठता और मशीन की तरह अपने पेट की खातिर लगातार चलता रहता है। न इस लोक का आनन्द और न परलोक का कल्याण! एक पैसा! पैसा है तो आपको सभी परमेश्वर कहेंगे, माँ कहेंगे, बाप कहेंगे। पैसा नहीं है तब आप को दूध की मक्खी की तरह निकाल देंगे। और यह भगवान भी कितना झूठा है? उसकी आँखों के सामने पाप पलता है लोग मुझे भिखारिन कहते हैं जिसने अपना अनमोल घर अपने हाथों से लुटा दिया।

आज मेरा अपना धन तारा नहीं है तव मुझे कोई नहीं पूछता। वह होता तबमुझे कम से कम 'माँ-माँ' तो कहता। माँ शब्द सुन कर मैं निहाल हो जाती। मेरी भूख भाग जाती। मेरी यह दुर्दशा नहीं होती? तारा, तारा, तारा!" वह रो पड़ती थी।

छन्दा ने एक दीर्घ निश्वास लिया। उसके मानस-लोक में क्षणिक कुहासा छाया। कुहासा फिर फटा—पुत्र-हीन वह वृद्धा एक दिन तड़फ-तड़फ कर मरी। सत्य के लिए अपना सर्वस्व विसर्जन करने वाली वृद्धा का मर्मान्तिक अन्त देख कर वह संसार के उस पहलू को समझ गई जो व्यक्ति के सम्मान चिर अक्षुण्ण रखता है।

वह मार्मिक से मार्मिक परिस्थिति में यह नहीं कहेगी कि प्रसन्न को वह गंगा-तट से उठा कर लाई है। यह गंगा के महादान के रूप में उसे मिला है।

असीम ने जब जोर से दुबारा पुकारा तब छन्दा का ध्यान भंग हुआ। वह नीचे आई। प्रसन्न स्नानादि से निवृत हो गया था।

"ऊपर बैठी-बैठी क्या कर रही थी ?" असीम ने पूछा।

"अपने भविश्य के उन आवरणों को हटा रही थी जिनके पीछे मनुष्य की दुर्गति छिपी हुई है। मनुष्य कितना नग्न है, यह उस वृद्धा के चिथड़े कह रहे हैं। इन चिथड़ों में छिपे रहस्य से भिज्ञ होकर मैं सजग हो रही हूँ। अपनी समग्र चेतना को निष्ठुर बना रही हूँ ताकि मेरी नारी छली न जाए।"

असीम मुँह बिचका कर बोला, "तुम्हें वैराग्य के झटके आते हैं। कभी-कभी इन झटकों के फलस्वरूप तुम सब से विरक्त होकर वृंदावन काशी चली जाओगी। प्रसन्न चाहे तुम्हें छोड़ दे पर मैं तुम्हारा साथ कभी नहीं छोड़ूँगा—मृत्यु पर्यन्त।"

"अरे, ऐसा क्यों ?"

"मेरा जीवन तुम्हारे बिना व्यर्थ है।"उसके नेत्र बंगाल युवतियों की तरह तुरन्त सजल हो गए, "मैं तुम्हारा क्षणिक विछोह भी सहन नहीं कर सकता। तुम्हारे बिना यह काया स्पन्दनहीन सी लगती है।"

"पागल कहीं के।" कह कर छन्दा ने जोर से पुकारा, "प्रसन्न, ओ रे प्रसन्न, आज स्कूल नहीं जायगा ?"

प्रसन्न फुदकता हुआ आया और अजीब स्वर में बोला "मैं स्कूल नहीं··· जाऊँगा·······।"

"क्यों ?"

"आज छुट्टी है।"

तभी नीचे से द्वार खटखटाने की ध्वनि आई। असीम ने चिढ़ कर कहा, "ये सवेरे-सवेरे कौन टपक पड़ते हैं। पल भर भी काम नहीं करने देते।"

"असीम दा, द्वार···।"

"मैं नहीं जाता। मुझे अपना काम करने दो।" वह तनिक रोष से आँखें मिचमिचा कर बोला, "सवेरे से कुछ नहीं कर पाता।"

"प्रसन्न, फिर तू ही चला जा।"

प्रसन्न ने जाकर द्वार खोला। अनु थी। उसने तुरन्त झुक कर चरण धूली ली।

अनु स्नेहसिक्त स्वर में बोली, "जीते रहो।"

"माँ, माँ ओ,……देखो कौन आया है ?" उसने अनु का हाथ पकड़ा। ऊपर की ओर खींचते हुए कहा, "चलिए, ऊपर आइए।"

तब तक छन्दा आ चुकी थी। अनु को देख कर पुलक उठी। अगवानी के लिए सीढ़ियों के बीच तक आई। बोली, "आज आपने हमारा घर पवित्र कर दिया।……असीम भैया, देखो, अनु देवी आई है। प्रसन्न के स्कूल की हेड मास्टरनी।"

एक अपरिचित युवती के आगमन की सूचना पाकर असीम उठ कर चला आया। नमस्ते करके बैठ गया। छन्दा चाय बनाने चली गई।

अनु ने पूछा, "आप यहाँ क्या करते हैं ?"

"मैं विभूति बाबू के यहाँ काम करता हूँ।"

"यह लड़का आपका……।"

बीच में ही असीम बोल उठा, "नहीं, नहीं। यह मेरी विधवा बहिन का लड़का है। अत्यन्त प्रखर प्रतिभा वाला।"

"सचमुच इसके कारण मेरी स्कूल की प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गए।"

छन्दा चाय बना कर ले आई थी। चाय की प्रथम चुस्की लेते हुए अनु ने कहा, "मैं आपको धन्यवाद देने आई हूँ कि इस लड़के के कारण हमारा प्रोग्राम काफी सफल रहा। यदि आप इस पर विशेष ध्यान देंगी तो यह विवेकानन्द या राममनोहरराय अथवा बंगाल का कोई श्रेष्ठतम व्यक्ति होगा।"

छन्दा ने उनकी उदारता के लिए अनेक धन्यवाद दिए।

अनु तुरन्त चली गई। इसके जाते ही असीम बोला, "अब मुझे यह दिल्ली भी छोड़नी पड़ेगी।

"क्यों ?"

"बाबा रे बाबा, यहाँ दिन प्रतिदिन अतिथियों की भरमार हो रही है। छन्दा जिस आदमी के अधिक मित्र होते हैं, उसका समय व्यर्थ ही जाता है। यह अधिक मेल-जोल भी श्रेयस्कर नहीं।"

"अब समझी, तुम मुझे क्या हिमालय की उपत्यका में बसाना चाहते हो। कल से ही मैं आशुतोष को बुला कर लाती हूँ। सुना है कि इस विदेश में सारे बंगाली केवल उससे ही घृणा करते हैं और वही सबसे अधिक सुखी है।"

असीम गंभीर हो गया। हथेली को मुँह का सहारा देकर बोला, "दीदी, यह आशुतोष आखिर करता क्या है ?"

"कुछ नहीं।"

"फिर गुजारा ?"

"वह कहता था कि मेरे पास बड़ी पूँजी है।"

"व्यापार क्या है ?"

"कुछ नहीं ?"

"फिर उसका पिता कोई जमींदार है ?"

"नहीं।"

"फिर इतना टका आया कहाँ से ?"

"सुना है कि इसने अपनी बीवी की हत्या करके पचास सहस्र रुपये बीमाकम्पनी से वसूल किए। यह रहस्य जब प्रकट हुआ तब से सारे बंगाली इससे घृणा करते हैं। समाज में उसकी जरा भी प्रतिष्ठा नहीं है।"

"और तुम उसे मेरे घर लाओगी। ऐसा पिशाची-प्रवृति वाला व्यक्ति मेरे घर आजाए तो मैं उसका खून कर दूँ।"

"जा रे जा, तुम उसका खून क्या करोगे ?···प्रसन्न कलकत्ता चलोगे ?"

"हाँ।"

"दीदी, फिर कलकत्ता का नाम ले लिया।"

"मैं चाहती हूँ कि अपनी जमीन को बेच डालूँ ?"

"आखिर क्यों ?"

"प्रसन्न को मैं विलायत भेजना चाहती हूँ"

"मैं इसके लिए पूँजी एकत्रित कर रहा हूँ।" वह दृढ़ता से बोला, "इसे बड़ा होने दो।"

छन्दा असीम का हाथ में लेकर कह उठी, "यह न्याय नहीं है कि तुम मेरे लिए अपने सुख की परिकल्पना ही छोड़ दो। अब तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए।"

"विवाह से क्या सिद्ध होगा ?"

"सब कुछ ! पुरुष का सबसे बड़ा सुख उसकी पत्नी होती है। मेरे लिए तुम पत्नी के प्यार से वंचित रहो, यह सर्वथा अनुचित है। असीम यौवन की ज्वलित आकांक्षाएं अधिक चिर नहीं होती। देखो, विभूति बाबू ने प्रथम पत्नी की मृत्यु के तुरन्त बाद दूसरा विवाह कर लिया। ······और एक तुम हो ?"

"मैं कभी भी विवाह नहीं करूँगा। मैं तुम्हें चाहता हूँ, अपनी स्नेहछात्री दीदी को।··········अरे तुम भी कहाँ से कहाँ उड़ गईं, चलो भात बनाओ। दुकान जाने का समय हो गया है,"

छन्दा अनमनी सी उठ गई,

× × ×

१०



उसके एक माह बाद नमिता का यह क्रम बन गया कि सुबह-शाम छन्दा के घर स्वयं या नौकर को भेज कर प्रसन्न को बुलवालाना और उसको दुलार और प्यार से भिगो कर उसके हृदय पर विजय पाना। छन्दा को लगा कि उसका बेटा उससे दूर होता चला जा रहा है। आजकल वह भी नमिता देवी के बिना आकुल रहता था। छन्दा की आत्मा को कोई अदृश्य अहित होता जान पड़ा।

उस रात प्रसन्न देर से आया था। नमिता उसे सिनेमा देखने ले गई थी। आते समय उसे दो गर्म सूटों का कपड़ा भी दिला लाई। उन कपड़ों को देख कर छन्दा वज्रापात हो गया। नमिता का नौकर जैसे ही उसके घर से लौटा वैसे ही उसके अधरों से भय-सूचक चीख निकली, " पर सब क्या है ?" "उसने प्रसन्न का हाथ बड़ी कठोरता से पकड़ लिया, "बोलता क्यों नहीं यह सब क्या बात है।

"कपड़ा।"

क्यों लाया यह कपड़ा ? क्या मैं मर गई हूँ कि तुम्हें दूसरों से दान लेना पड़ा।" उसके नथुने क्रोध में फड़क उठे, "कल उन्हें वापस दे आना, समझे।"

प्रसन्न गुमशुम सा बैठा रहा।

छन्दा उसे उपदेश देती रही, "देखो बेठा, दूसरों की वस्तु लेना अच्छा काम नहीं है। कोई भी किसी को बिना स्वार्थ कुछ नहीं देता। नमिता मौसी वैसे बहुत अच्छी है पर वे मुझे अधिक अच्छी नहीं लगती। कल उनका नौकर आए, तब कह देना कि मैं आज नहीं चलूंगा।''''''''ये वस्त्र वापस कर देना।"

प्रसन्न अर्थभरी दृष्टि से छन्दा को देख रहा था।

छन्दा कह रही थी, वह असीम दा की स्वामिनी हैं, इससे हम उनका सम्मान करते हैं लेकिन वे तुम्हें गरीब समझ कर यह सब देते यह असह्य है। हम करुणा के पात्र नहीं हो सकते। बेटा, कल से वहाँ मत जाना।"

वास्तव में तीन दिन तक प्रसन्न नमिता के यहाँ नहीं गया। नमिता उसके बिना अवश हो उठी। चौथे दिन वह स्वयं आई। उसकी आकृति बड़ी चिंता-जनक थी फिर भी वह प्रफुल्ल स्वर में बोली, "प्रसन्न को क्यों नही भेजा दीदी, मैं उसे देख कर अपने दिन व्यतीत कर रही हूँ।"

नमिता के निष्कलुष मुख पर झलकती पावनता को देख कर छन्दा की अशांति चली गई। उसने बड़े धैर्य से उत्तर दिया, "यह स्वयं नहीं आया ? क्यों रे प्रसन्न, आज तो मौसी के यहाँ चला जा ?"

"मैं नहीं जाऊँगा ?"

"क्यों ?"

"तुम्हीं तो मना करती हो। कहती हो मौसी अच्छी नहीं है। वह हमें गरीब समझती है।"

छन्दा को काटो तो लहू नहीं। उसका मुख पीला पड़ गया।

नमिता ने कहा, "दीदी, मैं किसी को तुच्छ नहीं समझती, किसी को क्षुद्र नहीं कहती। मैं स्वयं बहुत क्षुद्र हूँ। उनकी सेवा के अतिरिक्त मेरे जीवन

का कोई विशेश ध्येय नहीं है। प्रसन्न एक खिलौना है। मेरा मन भी ऐसे बच्चे की क्रीड़ाएं देखना चाहता है, किलकारियाँ सुनने की तीव्र उत्कंठा रखता है। अगर तुम्हें यह रुचिकर नहीं लगता तब मैं कल से इसे नहीं बुलाऊँगी। कोई अपराध हो गया है तो क्षमा करना।"

नमिता सजल नेत्रों से लौटने लगी। छन्दा ने लपक कर उसका आँचल पकड़ लिया, "नहीं दीदी, प्रसन्न तुम्हारे यहाँ आएगा, जरूर आएगा। मेरी मिथ्या धारणाओं को मन से निकाल दो।"

नमिता वहाँ से लौट जरूर आई किंतु उसका मन बहुत उदास था। शून्यता के पंख उसके चतुर्दिक आच्छन्न हो गये थे। वह अर्ध-शायित विभूति बाबू से बोली, "मैं कलकत्ता जाना चाहती हूँ।" माँ से मिले सात वर्ष हो गये हैं।"

"हाँ, हाँ !"

"आप नहीं चलेंगे ?"

"नहीं, तुम यह अच्छी तरह जानती हो कि मेरा दिल्ली छोड़ना नहीं हो सकता, इस पर यात्रा करने से मुझे भारी कष्ट होता है। हाँ, मेरी सास माँ के लिए कुछ रुपए जरूर ले जाना। सुना है, उनका इकलौता बेटा शराबी जुआरी होकर अब सन्यासी हो गया है।"

नमिता तुरन्त समझ गई कि ये सब नौकर ने उन्हें बताया है। वह उठती हुई बोली, "मैं कल कलकत्ता चली जाऊंगी।',

"असीम को साथ भेज दूं ?',

"नहीं, मैं अकेली ही चली जाऊँगी।"

दूसरे दिन नमिता ने अनु से मिलने का बहुत प्रयास किया पर वह नहीं मिली। वह उसके स्कूल भी गई थी। उसके मित्रों के यहाँ भी दौड़ी-भागी थी पर सब व्यर्थ !

प्रसन्न से वह मिलना चाहती थी। उसके घर तक भी गई। उसने उस खिड़की को भी एकटक निहारा जिसमें प्रसन्न प्रायः बैठा रहता था पर वह घर के भीतर नहीं गई।

वह समझ नहीं पा रही थी कि छन्दा उससे यह द्वेष क्यों रखती है ? क्या संसार में किसी के प्रति सहानुभूति रखना भी अपराध है ? छिः छिः छिः। यह कैसी संकीर्ण मनोवृत्ति है।

दिल्ली छोड़ने के बाद नमिता के मन में बड़ी देर तक गाड़ी के चलने की ध्वनि गूँजती रही।

धीरे-धीरे उसे नींद आने लगी। नींद के पूर्व उसे प्रथम बार ज्योतिर्मय की स्मृति आई।

एक प्रश्न उसके मन में उठा, "वह किस दशा में है ?" वह प्रश्न निद्रा के आगमन के साथ-साथ धुंधला होता गया, छोटा होता गया और विस्मृति के गर्भ विलीन हो गया।

× × ×

११



प्रभात-प्रत्यूष बेला !

वसुधा ने आकर नमिता को जगाया नमिता ने एक अलस अंगड़ाई ली। वह अशांत चित्त वाली नमिता अभी अत्यन्त स्वस्थ थी। उसके अंग-अंग में स्फूर्ति और ताजगी भरी थी।

"माँ, चाय पिलाओगी ?"

"मैंने चाय बनाली है, उठ, पीले।" कह कर वसुधा नीचे चली गई। एकांत पाकर नमिता की स्मृतियाँ जाग उठीं।

वही बैशाखी, वही झूलती टाँग, वही सूखा-म्लान मुख। वही चश्मा।

ज्योतिर्मय, दुर्भाग्य और दुर्दशा !

उसकी आत्मा-पीड़ा का शेष नाग अपने सहस्त्र फनों के विपाक्त देशन का आलिंगन करके उसे बावली बना रहा था। वह एक दम उदास हो गई। पूर्णिमा की शेष रात्रि की चांदनी की तरह। निर्मलता उसके अंग-अंग में समागई उससे उठा नहीं गया।

वसुधा ने नीचे से आवाज लगाई। उसका स्वर इस बार इतना तेज था जैसे वह उसे कई बार पुकार चुकी हो। वह अनिच्छापूर्वक उठी। नित्याकर्म से निवृत होने लगी।

अब सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था। वातावरण में घुटा-घुटा सा कोलाहल उभर रहा था। सड़कों पर ट्रामों की अप्रिय ध्वनि और बसों की सूँ-सूँ गूँज रही थी। उनके आस-पास आदमियों का सैलाब तैर रहा था।

"दुलाल की कोई सूचना मिली ?" नमिता ने पूजन में बैठी अपनी माँ के समीप बैठ कर पूछा।

"नहीं।" वसुधा नमिता की ओर उन्मुख होकर बोली।

"वह एकाएक सन्यासी कैसे बन गया ?"

"मैं क्या जानूँ ? पहले अच्छी तरह नौकरी करता था। फिर शराब पीने लगा और जब तक वह शराबी-जुआरी था तब तक रात को घर आ जाता था और संन्यासी बनने के बाद मैंने उसे दृष्टि भर भी नहीं देखा। वह बड़ी अशुभ घड़ी थी जब मेरा बेटा गेरुए वस्त्र धारण करके मेरे सम्मुख खड़ा था। मैं उस समय के अपने मनोगत भावों को व्यक्त नहीं कर सकती। फड़कते हुए अधरों को दाँतों के बीच दबाकर मैंने इतना ही कहा, "यह सब क्या है दुलाल ?"

दुलाल शांत-गंभीर और तेजस्वी की भाँति बोला, "माँ, यह सत्य है। न्याय की खोज के लिए नवीन कदम। मैंने पाप करके पाप के आकर्षक रूप को देख लिया है। उसकी विभीपिका और कुत्सित भावना को पहचान लिया है। परसों मेरे एक शराबी बंधु ने 'बाट'में ही एक युवती का खून कर दिया। प्रातःकाल अदालत में उससे पूछा गया कि क्या तुमने खून किया है ? उसने कहा कि नहीं। मैंने किसी का खून नहीं किया। मैं 'बाट' में जरूर गया था, मैंने शराब जरूर पी थी, इसके बाद मैंने अपने आपको हवालात में पाया। मैं उस लोमहर्षक दृश्य को नहीं देख सका। मनुष्यता की ऐसी अमानुषिक हत्या, छिः-छिः-छिः, मैं रात भर सो नहीं सका। भागता रहा, चलता रहा, पीछे देखता रहा—विभ्रान्त मोह-ग्रस्त सा। मुझे बार-बार सन्देह होता था कि यह खून मैंने किया है, उस सुन्दर युवती के कलेजे में मैंने छुरी भोंकी है। पुलिस

मेरा पीछा कर रही है। मैं हावड़ा ब्रिज पार करके सलकिया की ओर भागा। फिर बैलूट-मठ।

उस पवित्र स्थान पर पहुँचने पर मुझे कुछ विश्रांति मिली। मैंने उन्माद-ग्रस्त प्राणी की तरह अपने अंग-अंग को संभाला जैसे वे सुरक्षित हैं या नहीं। मेरा तन जन्म जैसा ही था। मैं वहाँ कुछ काल तक निष्प्राण सा पड़ा रहा।

तत्पश्चात् पुल पार करने लगा। पुल के बीच में आते ही मुझे आत्म-हत्या की सूझी। इच्छा हुई कि इस जल-धारा में कूदकर अपने पापों का प्रायश्चित कर लूँ। लेकिन कभी पढ़ा था कि आत्म-हत्या करने वाला प्राणी अनेक नरक भोगता है।

दक्षिणेश्वर के मन्दिरों में रात-भर घूमता रहा। वहाँ मुझे बड़ी शांति मिली। दो दिन तक मैंने उपवास किया। तब मैंने निश्चय किया कि परमहंस को समझूँगा, विवेकानन्द का अध्ययन करूँगा। उनके बिना जगत का त्राण नहीं, उद्धार नहीं।

माँ, रवीन्द्र के पुनीत गीतों के स्वर-प्रकाश से आलोकित होने वाली यह वसुन्धरा इस यांत्रिक सभ्यता से विषण्ण हो जाएगी। हम इस रक्त-रंजित सभ्यता के दीप्त आवरण में यह भूल जाएँगे कि कौन अपना है और कौन पराया? माँ-बेटा, पिता-पुत्र, भाई-बहिन, भाई-भाई सबके सब स्वार्थ के पुतले हो जाएँगे। ऐसा हो जाएगा तब हमारी गुरुता शेष हो जाएगी।"

उसने मेरी चरण-धूलि ली और श्रद्धावत् विनम्र होकर बोला, "मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है। यह मेरा दोष नहीं, यह इस सभ्यता का दोष है, पूँजीवादी चमकदार बर्बर सभ्यता का। मैंने तुम्हें पीटा, मारा और गंदी गालियाँ दीं पर तुमने विशाल जगत-जननी का परिचय दिया। जब तक तुम्हारे पास एक पैसा भी रहा, तुमने मुझे दिया। यही इस धरती की महानता है, ये ही हमारे आत्मिक बन्धनों की अटूटता है। माँ, मुझे अब क्षमा कर दें, माँ!"

वह करुणा से विह्वल होकर मेरे चरणों में लोट गया। मैं न चाहते हुए भी उसे क्षमा कर बैठी। कंठ अवरुद्ध हो गया था अतः वह चला गया। मैं उसे नहीं रोक सकी, नहीं रोक सकी।

वसुधा की आँखों से अश्रु-धार बह चली। नमिता ने अपनी आँखों को आँचल से पोंछा।

वसुधा सिसक कर पुनः बोली, "मैं दुलाल को नहीं रोक सकी फिर तुम्हें कैसे रोक सकूँगी ? वह तो मेरा अपना है और तुम परायी हो।"

नमिता ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उठते हुए कहा, "मैं नहीं जाऊँगी।"

अपने मन को बहुत रोकने के बाद भी वह ज्योतिर्मय के चारों ओर अपने तानें-बाने बुनती रही। जो सुखद-क्षण नमिता ने उसके संग व्यतीत किए थे, वे अविस्मरणीय थे। यौवन के मादक स्वपिनल दिवस अब उस अपंग व्यक्ति को देखकर घोर पश्चाताप के प्रतीक बन गए। उसे याद है—ज्योतिर्मय उन्मत्त पवन की तरह निशंक हो जीवन में बहता था। जीवन को आनंद का पर्याय-वाची समझकर उपभोग में लीन यह प्रभावशाली व्यक्ति आज कितना दीन-हीन है।

एक बार बात ही बात में नमिता ने ज्योतिर्मय से पूछा था। उन दिनों उनका प्यार चरमोत्कर्षी पर था। मधु-घुला उसका स्वर था, "ज्योति, तुम कामदेव से भी रूपवान हो।"

"नमिता ! यह रूप ही मेरा जीवन है। जब यह नष्ट हो जाएगा तब मैं अपने को नष्ट कर दूँगा।"

नमिता को उस समय भी यह कथन उपहास-भरा और असत्य लगा था और आज उसके कथन की अवास्तविकता सप्रमाण उसके समक्ष खड़ी थी। वह जानती थी कि ये धनवान और जमींदार ऋतु-वार्ता करते हैं। कौन सी बात किस समय अधिक प्रभावशाली होती है, इसमें ये बड़े ही प्रवीण होते हैं।

इसी प्रकार वह उद्वेलन में पड़ी रही। तीसरे दिन दोपहर के समय वह ज्योतिर्मय के घर पहुँची। अपने पतिव्रत धर्म से शंकित वह भ्रष्टा नारी आज महासतियों की परम्परा आई नारियों की तरह पर-पुरुष से मिलने के लिए जाती हुई भीत व आतंकित हो रही थी। सतियों के मस्तिष्क का दर्पह द्वन्द्व उसके मानस में था। कोई अनजानी आंतरिक शक्ति उसे इस अमान्य कार्य के लिए विवश कर रही थी। वह चली जा रही थी--अपने मौजूदा पति से छल करके। वह उस पतित आदमी से मिलने जा रही थी जिसने उसके जीवन के महानतम पवित्र उल्लासमयी घड़ियों का आनंद लूट कर उसे गन्दे चिथड़े की तरह फेंक दिया। घृणा, जुगुप्सा और ईर्ष्या! वह इस त्रिवेणी में आचूड़ स्नान करके वाचाल हो गई।

टैक्सी के सरदार ने पूछा, "बहिन जी, दांए या बांए ?"

वह चौंकी। लम्बा साँस लेकर बोली, "बाँए।"

वह धक्का उसे नूतन युग का नवीन आलोक दे गया।

मनुष्य के विचारों की दूसरी धारा जाग उठी, "द्वेष-विद्वेष, घटना-दुर्घटना, अहित-अनर्थ, दुख और आघात, इन सभी के परे हमारी मनुष्यता है। क्या इस मनुष्यता के नाते उस पथभ्रष्ट-अहंकारी साथी से सहानुभूति का बर्ताव करना भी निषिद्ध है, अपराध ? नहीं-नहीं, यदि मैं ऐसा करूँगी, फिर उसमें और मुझमें अन्तर ही क्या रह जाएगा ?"

टैक्सी रोको।

नमिता टैक्सी का किराया देकर अपनी चिरपरिचित कोठी में उतरी। वहाँ पदारथ की जगह कोई अन्य बिहारी जमादार था। उसने उसके समक्ष अपनी इच्छा जाहिर की।

"वे निचले कमरे में बैठे हैं।"

"अकेले हैं ?"

"शायद अकेले ही होंगे ।"

नमिता तुरन्त ज्योतिर्मय के कमरे की ओर गई।

ज्योतिर्मय समरेश के साथ बातचीत कर रहा था। उसके स्वर में आक्रोश स्पष्टतया फूट रहा था।

"मुझ पर करुणा करने वाले को मैं अत्याचारी समझता हूँ। उसकी प्रत्येक दया मुझ पर किया गया एक अत्याचर है।"

नमिता ने पर्दा हटाया। समरेश ने कहा, "आइए, आप किसे चाहती हैं?"

"ज्योतिर्मय बाबू को।"

"आप हैं?"

"कहिए, आप मुझसे क्या चाहती है?"

नमिता को काठ मार गया।

"यह स्वतंत्रता क्या मिल गई, लोगों ने चन्दा प्राप्त करने का एक नया व्यापार खोल लिया। बोलो, तुमने कौन-सा मंडल और संस्था खोल रखी है? या बाढ़ पीड़ितों या दुर्भिक्ष-ग्रस्तों के लिए कोई नाटक या वैरायटी शो दे रही हो? समर, इन्हें बीस रुपए दे दो।....जाओ, अब खड़ी क्यों हो? तुम समझती हो, पक्षाघात के रोगी की आज्ञा का पालन नहीं होता? तुम समझती हो कि पिता की सम्पत्ति से वंचित हो जाने के बाद मुझे दाने-दाने का मुँह देखना पड़ेगा?....नहीं, नहीं, अभी मैं वैसा हूँ जैसा कल था। समर, जाओ, इन्हें चन्दा देकर तुष्ट कर दो।"

समर चला गया। नमिता का हृदय फट गया।

"तुम्हें भी मेरी इस दुर्गति पर रोना आता है। मेरे लिए क्या इतने बड़ी सृष्टि में अश्रुओं के सिवा कुछ भी नहीं है। सबके पास केवल समवेदना ही हैं, निर्ममता और निष्ठुरता नहीं?...आज अनु होती, तो जरूर कहती कि भगवान तुम्हें इससे भी अधिक सताए। वह प्रतिद्वन्दी की भाँति मेरे समक्ष

खड़ी होती। मेरी दुर्दशा पर हँसती, चीखती और पीरभरी चुटकियाँ भरती। तब मुझे कितना आराम मिलता, कितना सुख मिलता।"

ज्योतिर्मय सिसक पड़ा।

नमिता उसे चित्रलिखत सी देखती रही। एक बार उसके विश्वास को पुन: ठेस लगी कि ये सब झूठ हैं, मिथ्या हैं। यह ज्योतिर्मय नहीं, यह कोई अन्य घिनौना इन्सान है।

उसकी आँखें भर आईं। रूद्ध-स्वर बोली, "प्रकृति-प्रकोप से तुम्हारा छुटकारा नहीं होगा। धैर्य से अपने शेष को सुन्दर और सुखद बनाने का प्रयास करो। जो हो गया है, वह तुम्हारे पाप का फल है।"

"मैंने कोई पाप नहीं किया। वैसा मुझे उस समय करना ही चाहिए था। क्या सभी धनवानों के बेटे ऐसा नहीं करते हैं ? तुम्हें क्या पता कि पैसा प्रेम खरीद सकता है ? पैसों के पीछे प्रेमिकाएँ भागती हैं। भगवान श्री कृष्ण समर्थ था तभी तो गोपिकाएँ उसके पीछे पागल की तरह भागती थीं, बेचारे गरीब सुदामा के पीछे तो कोई नहीं भागी। शिवाजी समर्थ थे तभी उस मुग्धा नारी ने उनके जैसे पुत्र की कामना की थी।····मैं समर्थ था, तुम मेरे पीछे भागी। किसी गरीब का हाथ पकड़ा होता ?···क्यों अब भी···?" अचानक ज्योतिर्मय की दृष्टि उसकी सीमन्त-रेखा की ओर गई। सिन्दूर चमक रहा था। वह क्रोध से निचला होंठ काटता हुआ तड़प उठा, "ओह, अब तुम परीणीता हो गई हो। शुभ-दृष्टि की पावनता को नष्ट करने के लिए क्या तुम मेरे पास आई हो ?" वह चीख पड़ा, "पर अब मेरे पास कुछ नहीं है। न पैसा, न रूप और न मधुर शब्दों के भीतर भरा छल।"

नमिता का ठहरना असह्य हो गया। वह जाने लगी। तभी वैशाखी की ठक् ठक् सुनाई पड़ी। वह लपक कर नमिता के पास आया। उसकी बाँह पकड़ कर बोला, "अब भी मैं तुम्हारी आवश्यकता पूर्ण कर सकता हूँ। अपने कौमार्य को मिटाने के लिए यदि तुमने कोई पति पा लिया है तो कोई बड़ी

बात नहीं। इस समाज में एक पुरुष के चार-चार बाँधी जाती हैं।........बोलो, क्या चाहिए तुम्हें ? कहता-कहता ज्योतिर्मय पुनः अपनी कुर्सी पर बैठ गया। नमिता पर्दा उठा कर जाने लगी। समरेश आ गया।

"अरे आप चली कहाँ ? बैठिए न ?" कह कर समरेश ने शिकायत भरे स्वर में कहा, "ज्योति दा, अवश्य तुमने इन्हे कुछ कहा होगा ? आप क्षमा करें, बीमारी के बाद इनका मन अपने वश में नहीं रहा। इस पर एक टांग बिल्कुल बेकार हो गई है। हाथ भगवान की कृपा से बच गया।

कमरे में एक खिलखिलाहट गूँज पड़ी।

"तुम मुझे लंगड़ा समझते हो, अपंग कहते हो, जब कि मैं एकदम ठीक हूँ। डाक्टर कह रहा था कि मैं वासस दौड़ सकूँगा, मेरा तारुण्य लौट आएगा। देखो न, यह टाँग पहले से कितनी अच्छी है।" कह कर उसने अपनी झूलती हुई टाँग को बड़े हस्यास्पद ढंग से हिलाई। उसने उठने का प्रयास किया पर वह उठ नहीं सका। जिस वेग से वह खड़ा हुआ था, उसी वेग से वह पड़ गया।

उसके मुख पर अपरिसीम वेदना छा गई। गुस्से में उसने वैशाखी उठा कर फेंक दी।

नमिता तुरन्त बाहर चली गई।

समरेश ने पीछे से भाग कर कहा, "ये रुपए ?"

"ग़रीब को दान कर दीजिए।" वह आँखों से अदृश्य हो गई। समरेश ने भीतर आकर पूछा, "ज्योति दा, तुम इसे जानते थे ?"

"नहीं पर यह जरूर मुझे जानती होगी ? समर, पैसे वालों को कौन नहीं जानता ?" कह कर वह एकदम चुप हो गया। उसने अपने नेत्र मूँद लिए।

१२



और नमिता गंगा के कगार की सौंधी-सौंधी मिट्टी पर अपने पाँव रखती हुई विचार रही थी। वह क्यों कलकत्ता आई? उसे यहाँ आने की क्या सूझी मन की अशांति पर उसने थोड़ी ही विजय पाई थी, फिर उसे उभारने की उसको क्या जरूरत थी।

यह जीवन बनमानस के समान है। ये मनुष्य अपने अन्तस का असीम हाहाकार सागर की भाँति छिपाए अपने दैनिक क्रम में जुड़े हुए हैं। करुण पुकार करना चाहते हैं पर वैसी फुर्सत कहाँ है? यंत्र की भाँति वे जीवन-संघर्ष में अवतरित होते हैं और उसकी अनेक यंत्रणाएँ समेटे रात को सो जाते हैं। बेचारे कब शाँति से रोए और चीखे।

यह भी आज के मनुष्य का दुर्भाग्य है। विषाक्त विडम्बना है कि वह अपनी नग्नता का परिचय भी नहीं दे सकता। घृणा, रोष और प्रतिशोध की भावना से भरे प्राणी दूसरे के मर्म को समझे बिना उसे काटने को दौड़ते हैं।

"मैं अतीत को विस्मृत करके मनुष्यता के नाते ज्योतिर्मय के पास गई। मैं कुछ कहूँ, इसके पूर्व ही उसने अपनी घृणा का प्रहार कर दिया। मनुष्य क्या बन गया है।"

तब उसने निश्चय किया, "मैं आज ही दिल्ली चली जाऊँगी और अपने जीवन को बूँद की भाँति सिमटा-सुकड़ा कर विभूति बाबू में लीन कर दूँगी।"

विराट में अकिंचन का लोप।

उसी दिन नमिता दिल्ली के लिए रवाना हो गई।

× × ×

१



इण्डिया-गेट के समीप की झीलों के कृत्रिम कमलों को देखते हुए विभूति बाबू ने नमिता से कहा, "तुम हँसती-हँसती उदास क्यों हो जाती हो, यह मैं आज तक नहीं समझा।"

"नहीं तो ?"

"तुम अपने आप से छल कर सकती हो किन्तु मुझ से नहीं। नमिता बहू, आखिर तुम अपने मन का भेद और पीड़ा मुझे क्यों नहीं बताओगी फिर किसे बताओगी ?"

"अपने पति से कोई स्त्री भेद छिपा कर अपना इहलोक और परलोक क्यों बिगाड़ेगी। मेरा ऐसा विचार है कि ऐसी स्त्री की मृत्यु बड़ी यातना से होती है।"

"यह सच है कि दुश्चरित्र और छलना स्त्री जीवन भर एक अव्यक्त अन्त-हीन वेदना में जलती रहती है। अपने मन का भेद अपने स्वामी से "छुपा कर वह अपने ईश्वर के विश्वास और प्रेम को आघात पहुँचाती है···तनिक विचार करो, जो व्यक्ति नारी के महासमर्पण का अनुदान लेकर उसका दुखमोचन नहीं बनता है, वह कितना कर्त्तव्य विमुख होता है।" विभूति बाबू भाव-विह्वल हो आए, "मैंने शादी के पूर्व तुम से यह भी नहीं पूछा कि तुम कौन हो, क्या हो,

कहाँ की हो ? तुम मुझे अच्छी लगी, मैंने तुम्हें ग्रहण कर लिया। यह मुझे उचित नहीं लगता है कि किसी लड़की से ये सब पूछा जाय, जब विवाह उस लड़की से ही करना है। हालाँकि अनु की मित्र के चरित्र पर सन्देह करना अनुचित नहीं है ?"

नमिता गंभीर हो गई। तनिक अनुत्तर रह कर बोली, "अच्छा होता कि आप ये सब अनु से पूछ लेते ? मैं समझती हूँ कि वह नारियों में सर्वश्रेष्ठ नारी क्योंकि मैंने उस जैसी पवित्र स्त्री कहीं भी नहीं देखी, आपसे कुछ भी मिथ्या नहीं कहती कि मैं कौन हूँ और क्या हूँ ?....और यह भी सही है कि आर्थिक पंजों में जकड़ी यहाँ की नारी अपने दुष्कामों को शतांश रूप में भी निवेदन नही कर सकती इसलिए यहाँ प्रत्येक लड़की के बारे में उसकी सहेली से पूछना ही अधिक उपादेय सिद्ध हो सकता है।"

अपनी पत्नी को नाराज होते देखकर विभूति बाबू ढीले पड़ गए। अप्रिय हँसी के साथ बोले, "नहीं नहीं, तुम व्यर्थ में नाराज हो गई। मुझे अनु से कुछ नहीं पूछना है। मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ इसलिए मैं तुम्हें ही पूछता हूँ कि तुम उदास क्यों रहती हो ?"

नमिता पल भर शांत रह कर बोली, "भैया दुलाल संन्यासी हो गया और माँ बेचारी अकेली है। वह यहाँ आना नहीं चाहती। बेटी का घर है। कौटुम्बिक मर्यादा को त्याग कर वह सुख का जीवन यापन नहीं कर सकती। समझ में नहीं आता कि उसके लिए क्या करूँ ?"

"उसे पचास रुपए महीने के भेज दिया करो।" विभूति बाबू उस पर दृष्टि स्थिर करके बोले, "वह तुम्हारी माँ है, इस नाते वह मेरी माँ भी हुई ?"

नमिता की आँखों में अश्रु आ गए।

कब झील के किनारे शून्यता छा गई, उन्हें ज्ञात नहीं हुई। दोनों उठे और घर की ओर चल पड़े।

टैक्सी में बैठे बैठे नमिता ने कहा, "तीन दिन बाद प्रसन्न की बरस गाँठ है। मैं उसे 'ओमेघा' घड़ी भेजना चाहती हूँ।"

विभूति बाबू ने हल्के उपहास से कहा, "जरूर वह पूर्व लोक में तुम्हारा अपना बच्चा रहा होगा। ऐसा असीम अनुराग, ऐसा दान, ऐसी शुभकामनाएँ। निसन्देह यह तुम्हारा ही बेटा होगा ?"

उसी समय उनकी टैक्सी के पास से फटफटी गुजरी। नमिता निमिष भर चुप रही। आँचल से मुख को पोंछा और बोली, "कुछ प्राणी विगत को विस्मृत कर देते हैं और कुछ उसके प्रायश्चित में अपने जीवन को अन्तर की आग में जलाते रहते हैं। प्रसन्न, अवश्य मेरे इस जन्म के एक महान् दुष्कर्म के प्रायश्चित के रूप में आया है। मुझे उसकी सेवा में आनन्द आता है। तब मुझे लगता है कि अज्ञानता मैंने किसी का अवश्य अहित किया होगा ?"

"यह अज्ञानता में किया गया पाप, सिवाय मानसिक कुण्ठा के और कुछ नहीं हो सकता। तुम मेरा एक कहना मानों, अपने मन को व्यस्त कर दो। नमिता, कितना उत्तम होता कि हमारे भी एक बच्चा होता। तुम माँ बनकर सारी दुनियादारी भूल जाती।"

"जो नहीं है, उसकी कामना भी पीड़ाजनक होती है।"

"फिर भी मनुष्य इनसे छुटकारा नहीं पा सकता है। उसके पास जो नहीं है, उसके लिए उसका मन सदा बेचैन रहता है। यह मनुष्य-स्वाभाव है।"

"आप इसे मनुष्य के कर्मों का फल नहीं मानते।"

"क्यों नहीं। एक पंडित ने मुझे कहा था कि तुम्हें सन्तान-सुख नहीं होगा।"

"इन पंडितों पर भी आप विश्वास करते हैं।"

"कभी कभी दुख और अभाव की पराकाष्ठा पर भगवान और पंडितों पर विश्वास करके धैर्य धारण करना ही पड़ता है।"

घर पहुँचते ही विभूति बाबू ने कहा, "मुझे कुछ नहीं चाहिए, मरण के द्वार तक तुम्हारा यह पावन मुख देखता रहूँ।"

"ऐसा क्यों कह रहे हैं, नाथ ? मेरा संसार आपके बिना कितना अमंगल-कारी होगा ? पति के हाथों में पत्नी की मृत्यु ही सफल जीवन की द्योतक है। इसलिए मैं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को आप में तन्मय करना चाहती हूँ।"

मैं समझता था कि अनु की मित्र, ···नमिता आज अनु आई थी। मैंने अपने जीवन में एक इसी नारी को ही देखा जिसने किसी के भी सामने अपनी पराजय स्वीकार नहीं की। लोग उसके बारे में हजार इधर-उधर की बातें करते रहें पर उसके समक्ष उसका सभी को आदर करना ही पड़ता। न वह समाज के समक्ष झुकी और न व्यक्ति के। वह अपराजेय है।"

"कुछ दिन पूर्व वह मेरे पास भी आई थी। मैंने पूछा था, तुमसे मोह लगा कर पछताना पड़ता है। उसने क्या उत्तर दिया ? वह हलके से हँस कर बोली—हमारा जीवन विकट जंजाल है। व्यक्ति इनमें उलझना शुरु कर दें तब उसने अपना उद्धार कर लिया ? चारों ओर यह आवाज आ रही है कि पूँजीवादी युग के तमाम नाते-रिश्ते व्यापाराना होते हैं, तब ऐसे नाते-रिश्ते को अटूट बन्धन में क्यों बाँधा जाय। फिर तो सूरज अस्त और मजदूर मँस्त वाला सिद्धान्त अच्छा है।"

बिस्तरे पर अर्ध-शायित होकर विभूति बाबू गंभीर स्वर में बोले, "इस अनु का अन्त क्या होगा ?"

नमिता ने तुरन्त क्रॉस प्रश्न किया, "एक बार मैंने भी उससे यही प्रश्न किया था ?"

"उसने क्या उत्तर दिया ?" विभूति बाबू के कान खड़े होगए।

"मृत्यु !···मृत्यु के अलावा इस शरीर का और भयंकर परिणाम क्या हो सकता है ?" जीने के लिए साधन मैंने उपलब्ध कर लिए हैं। अर्थी के पीछे एक नहीं, हजारों होंगे !"

द्वार खटखटाने की आवाज ने दोनों की वार्ता को भंग कर दिया।

"कौन है ?"

"मैं हूँ, बीवी जी।" कहता हुआ नौकर भीतर आ गया।

"क्या है ?"

"छन्दा बीबी जी ने कहलवाया है कि प्रसन्न स्वयं ही परसों आ रहा है।" नौकर इतना कहकर चला गया।

"प्रसन्न आ रहा है !...आप उसके लिए अवश्य ही घड़ी ला दीजिएगा।"

विभूति बाबू हुँ कह कर लेट गए।

× × ×

२



"आशुतोष पार्टी में नहीं आ सकता ?"

"क्यों ?"

"वह मुझे अच्छा नहीं लगता है ?"

"वह अच्छा क्यों नहीं लगता ? उसने अपनी पत्नी की हत्या की, मैं मानती हूँ। वह बहुत नीच है, इसे भी मैं स्वीकार करती हूँ। वह मनुष्य नहीं है, इसे मैं नहीं मान सकती।"

"जो व्यक्ति अपनी पत्नी की हत्या के रुपयों से अपना आनन्द लूटता और विलास करता है, वह मनुष्य नहीं, दैत्य है।"

"लेकिन मैंने उसे निमन्त्रण दे दिया है।"

"और मैं निश्चय कर चुका हूँ कि वह नहीं आएगा। दीदी, मुझे उससे घृणा है, घृणा के साथ साथ भय भी। वह एक न एक दिन तुम्हें मुझसे अवश्य पृथक करेगा।"

"छिः-छिः, यह तुम क्या कहते हो ? इस आयु में ऐसा विचार लाकर तुमने अच्छा नहीं किया।" उसके स्वर में हलकी घृणा थी।

"तुम नहीं जानती छन्दा, वह कितना भयानक प्राणी है ! जब मुझे मिलता है तब मुझे बड़ी विचित्र दृष्टि से देखता है जैसे मैं उसका कोई प्रतिद्वन्दी हूँ।

कहता है कि मैं जिसे चाहता हूँ, वह मेरे पास स्वयं आ जाती है। बंगाल का जादूगर हूँ। छन्दा देवी को हमारा नमस्कार कहना।"

छन्दा खिलखिला कर हंस पड़ी, "उसका जादू तुम्हारे माथे पर चढ़कर बोलता है। मुझे उसे देखे हुए तीन महीने हो गए हैं। अब कोई रास्ते में नमस्कार करे, तो उसका उत्तर कैसे नहीं दिया जाय ?"

वह झुंझला उठा, "मेरी समझ में यही तो नहीं आता। वह कह रहा था—परसों मैं और तुम्हारी दीदी सिनेमा देखने गए थे। तुम्हारी दीदी मुझे बहुत प्यार करती है ?"

"कुत्ता कहीं का, मैं उसके साथ सिनेमा गई ही नहीं।" गुस्से में उसने अपने दोनों होंठ भींच लिए।

"छन्दा वह मुझे हमेशा से ऐसा कहता आया है। एक नहीं सैकड़ों बातें उसने मुझे बताई हैं। उसने यह भी कहा है—प्रसन्न को बंगलौर भी इसी पृष्ठ-भूमि पर भेजा गया है कि हम दोनों आपस में स्वच्छन्दता पूर्वक मिल सकें।"

"और ?"

"उसने कहा—यह जन्म-जन्मान्तर के संस्कार हैं कि नारी नर से प्रेम करेगी ही। छन्दा नारी है और मैं नर !"

छन्दा की निष्ठा को आघात लगा। उसने आशूतोष को स्नेह दिया केवल यह जानकर कि वह दुखी है, उपेक्षित है। एक भूल के लिए किसी को इतना कड़ा दंड नहीं मिलना चाहिए। इस पर लोग बड़े-बड़े पाप छिपे रूप से करते ही हैं। आज के संसार की नींव ही पाप पर आधारित है।

"मैं उससे मिलूँगी।" कहकर वह अपने कार्य में व्यस्त हो गई।

उसी शाम छन्दा आशुतोष से मिली। आशुतोष का मकान उसके घर से थोड़ी दूरी पर था। वह गई तब वह कपड़े बदलकर बाहर जाने की तैयारी कर रहा था। छन्दा को देखते ही बोला, "अरे आप ! आइए, आइए ! आज आपने

आने का कष्ट कैसे किया ?" उसका हाव-भाव अत्यन्त नाटकीय था। इतना नाटकीय कि उसकी कृत्रिमता न चाहते हुए भी छन्दा जान गई।

छन्दा निरुत्तर ही बैठ गई।

वह एक अच्छे हाजरिए की तरह बोला, "पहले आज्ञा दीजिए कि आपके लिए ठंडा मंगवाऊँ या गर्म ?"

"कुछ नहीं।"

"यह कैसे हो सकता है ? आप आज पहली बार यहाँ आई हैं। कुछ तो पीना ही पड़ेगा ?"

वह नीरव रही।

"चाय ठीक रहेगी।"

"इसकी कोई आवश्यकता नहीं।" वह तेज स्वर में बोली, "आपने असीम भैया को क्या कहा ?"

"कब ?"

"आज ?"

"ओह, जब मैं गृह मंत्री से मिलने जा रहा था तब ?···कुछ नहीं। मैंने उसे कृतज्ञता के साथ कहा—भैया असीम, मैं छन्दा देवी का अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे स्नेह दिया।······मेरा इतना कहना था कि आप बिगड़ पड़े। · क्या उनका मस्तिष्क ठीक नहीं है ?"

"आपका ठीक है ?" वह सव्यंग बोली।

"बिलकुल।" आशुतोष झेंप गया। संभल कर बोला, "बात यह है कि असीम व्यर्थ ही मुझ से शत्रुता कर रहा है। उसे कुछ सन्देह हो गया है कि आप मुझसे प्रेम करती हैं। मैंने उसे बताया कि यह तुम्हारा भ्रम है। मैं यहाँ की एक मिनिस्टर की लड़की से प्रेम करता हूँ।····फिर छन्दा देवी विधवा हैं, इस ढलती आयु में भला क्या कोई प्रेम करेगा ?"

आशुतोष का स्वर बड़ा ही प्रभावशाली था। छन्दा उसके सत्य-असत्य कथन का पता नहीं लगा सकी। वह उसे जिज्ञासा भरी दृष्टि से अवाक् देखती रही।

आशुतोष अपनी टाई को ठीक करके पुनः बोला, "असीम आप से अगाध अनुराग रखता है, कदाचित वह विवाह करके अपनी पत्नी के साथ न्याय नहीं कर सकता।"

वह हलके रूप में चीख पड़ी, "यह आप क्या कहते हैं ?" उसने हाथ का झटका भी जोरदार लगाया।

आशुतोष निस्पंद रहस्य भरी मुस्कान के साथ बोला, "तरुण भाई-बहिन का पवित्र स्नेह बन्धन संसार के सन्देह भरी वार्ता के लिए बहुत है।"

"मैं आपका तात्पर्य नहीं समझी ?" छन्दा आशुतोष के सन्निकट आ गई। उसकी आकृति पीली पड़ गई थी। स्वर काँप कर मानसिक अस्थिरता का प्रदर्शन कर रहा था।

"मेरा तात्पर्य यह है कि असीम मुझ पर कुछ विचित्र ढंग से सोचता है। उसके अन्तस्तल के किसी एक कोने में यह पाप पल रहा है कि मैं आप दोनों के सम्बन्ध में कुछ बुरा सोचता हूँ। ... वास्तव में यह मिथ्याधारणा है। आप महान् हैं, पवित्र हैं, श्रद्धेय हैं।......फिर मैंने उसे बताया कि मैं एक जघन्य अपराध करके सृष्टि की दृष्टि में गिर चुका हूँ। पत्नी की हत्या कैसे भी हुई हो, हत्या का कलंक मुझ पर ही लगा है।" उसने पलक झपकते अपनी घड़ी देखी और कहा, "मैं चला, छन्दा देवी, आप व्यर्थ की बातों से चिन्तित मत होइएगा।...... प्रसन्न की बरसगाँठ परसों ही है !

"नहीं कल ?" वह बोल गई।

"बेटा शकुन्त।" उसने अपने बारह वर्षीय नौकर को आवाज दी, "मैं एस० पी० साहब के यहाँ खाना खाने जा रहा हूँ।"

आशुतोष चला गया। छन्दा कुछ काल तक अनमनी सी खड़ी रही। उसे अभी हुई बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था। बिजली की भाँति विगत क्षण आए और चले गए।

तब वह धीरे-धीरे कदम उठाती हुई नमिता के यहाँ चली गई।

असीम मिथ्या है या आशुतोष ? यही उसके मन का द्वन्द्व था।

नमिता विभूति बाबू के जीवन-वृत से बेल की भाँति लिपट रही थी। उसने जहाँ तक हो सका दूसरों के बारे में सोचना कम कर दिया था। 'प्रसन्न' उसके अज्ञात पाप का तरण था। उसकी सेवा और उसके प्रति स्नेह-दान उसके कुकृत्य का प्रायश्चित था। विभूति बाबू एक वृक्ष, जिसके मूल में जीवन का स्पन्दन और तारल्य इतना कि वे केवल झंझा के मधुर धक्के सह सकें ; न कि लता का चिर भार ! उस वृक्ष को भय था वह दुर्बल है, वासनाहीन प्रेम के उद्वेलित अन्वेग आते हैं—यदाकदा।""नहीं··· नहीं···, नमिता उसकी पत्नी है, उसे केवल···मुझमें एकाग्र नहीं होना चाहिए। लता लिपटती है—कुछ प्राप्त करने के लिए। वृक्ष का सहवास उसे पोषण देता है। मैं और नमिता,········ नमिता महा पतिव्रता है—सावित्री और अनुसूइया ! पति के चरणों में सर्वस्व अर्पण करने वाली···!

खट् खट् खट् !

विभूति बाबू का ध्यान भंग हो गया। नौकर को आवाज दी, "जा रे, देख तो कौन है ?"

छन्दा के प्रवेश पर विभूति बाबू के कान खड़े हो गए। डाक्टर होगा, मिस्टर बोस, नहीं नहीं, मैं डाक्टर से दवा नहीं लूँगा। नमिता को व्यर्थ ही भय सताता है। मुझे कुछ नहीं है। जरा सा ज्वर और इतना वितण्डा ! ······हैं, यह स्त्री-स्वर ?

"कौन है ?"

"मैं, मैं विभूति बाबू, असीम की भग्नि छन्दा,··· !"

"छन्दा, आओ-आओ, आज तुम इधर कैसे आ गई ? देखो बेटा, (विभूति बाबू अपने युवक-नौकर को प्रायः बेटा कहा करते हैं) बीबी जी को खबर कर दो।"

उसके जाते ही छन्दा ने पूछा, "आपकी तबीयत ठीक नहीं है क्या ?"

"मेरी समझ से मैं बिलकुल ठीक हूँ पर नमिता माने तब न ? कह दिया, जरा सा ज्वर है, आया है खुद ही चला जाएगा पर वह मेरी सेवा सुश्रूषा के बहाने स्वयं को बीमार करना चाहती है,...कल सम्पूर्ण रात्रि मेरा सिर दबाती रही। कभी-कभी न जाने क्यों सिसक पड़ती थी ?"

छन्दा तुरन्त बोली, धर्म परायण स्त्री अपने पति के कष्ट को सदा अपना कष्ट समझती है। फिर रोना और सिसकना स्त्रियों के लिए साधारण है। उसके लिए आपको चिंता नहीं करनी चाहिए।"

नमिता आ गई थी। उसने आते ही नमस्कार किया !

"कहो दीदी, प्रसन्न कल आ रहा है न ?" नमिता ने आते ही पूछा।

"हाँ ?"

"बड़ा होनहार होगा तुम्हारा बेटा, वह इतना प्रबुद्ध है जितने श्री स्वामी विवेकानंद। भगवान उसे चिरायु रखे।" उसने क्षण भर पुतलियों को ऊर्ध्वगत करके नेत्रोन्मलीन किए जैसे उसने प्रभू से कामना की हो।

"होगा क्यों नहीं, अपने प्रबुद्ध बाप का बेटा जो है।" छन्दा ने गर्भित स्वर में कहा, "मैं उसके चिरायु और परम-सुख की मंगल कामना करती हूँ।" वह तनिक रुकी' "प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हें भी ऐसा ही पुत्र दे।"

नमिता की आँखें छलछला आईं। अश्रुओं को पोंछती हुई वह बोली, "यह संभव नहीं है कि प्रत्येक प्राणी प्रत्येक सुख का दावेदार हो, मुझे संतान न होने की पीड़ा विभूति बाबू को देख कर बहुत बढ़ जाती है। सोचती हूँ जो नारी प्रसव-शक्ति से हीन है, क्या वह नारी की संज्ञा से पुकारी जा सकती है ?"

विभूति बाबू इतनी देर निर्लेप से उन दोनों की चर्चा सुनते रहे। अब उन से रहा नहीं गया। बोल ही पड़े, "तुम प्रसन्न की वर्षगांठ के उत्सव की तैयारियों की चर्चा करने आई हो या नमिता के दुख को सुनने।" स्त्रियाँ अपने स्वाभाव को कभी नहीं त्याग सकतीं, जहाँ दो एकत्रित हो जाती हैं, वहाँ भूत,भविष्य और वर्तमान के बाल की खाल निकालने बैठ जाती हैं। " अरे बाबा, सुख के क्षणों में दुख की चर्चा ही नहीं करनी चाहिए।" उन्होंने लम्बा साँस लिया और नमिता पर दृष्टि जमा कर बोले, "तुम्हारे लिए ओमेघा घड़ी आज आजएगी किन्तु मैं अपनी ओर से उसे पारकर पेन ही दूँगा। उसी से लिख कर ही वह एक दिन इंजीनियर बनेगा।"

छन्दा प्रसन्न हो गई फिर उदास। नमिता उससे होड़ कर रही है। वह भेंट देकर प्रसन्न का आन्तरिक स्नेह प्राप्त करना चाहती है। यह संभव नहीं होगा। मैं उसे अपने पर कभी भी विजयी नहीं होने दूँगी। वह भी उसकी माँ नहीं है और मैं भी। मैंने उसे अपने आँचल की समस्त ममता दी है और नमिता ने क्षणिक कृतज्ञता भरा प्रेम! वह मुझ से कैसे जीत सकती है।··· असंभव, नितान्त असभव!

"क्या सोच रही हो दीदी!" नमिता ने उसका ध्यान भंग किया। छन्दा चौंक पड़ी। उडती हुई बोली, "मैं, मैं, कुछ भी नहीं सोच रही हूँ। हाँ, सोच रही हूँ कि तुम मेरे बेटे को कितना चाहती हो?"

नमिता को इन आठ वर्षों की घटनाएं याद हो उठीं कि किस-किस प्रकार छन्दा उसके बढ़ते हुए अनुराग को घृणा के झटके दिया करती थी। जब-जब नमिता ने प्रसन्न के अन्तर-कूल तक पहुँचने का प्रयास किया तब-तब उसने अगस्त्य की भाँति उस कूल की प्रत्येक स्नेह बूँद को पी लिया। उसके और प्रसन्न के मध्य अलगाव की भावना को जन्म दे दिया। उस भावना से प्रसन्न महीनों तक नमिता से आत्मीयता नहीं रखता था। वह इस भाँति बचता रहता था जैसे नमिता कोई नारी न होकर दस्यु हो। कभी-कभी नमिता की इच्छा भी होती थी कि वह प्रसन्न से अपना व्यर्थ-बन्धन क्यों जोड़ती है?

तब उसे अपना 'कर्ण' याद हो उठता। समाज के भय से अविवाहित कुंती ने कर्ण का परित्याग किया था। नमिता अपमान की ज्वाल में दग्ध होकर तिल-मिलाई थी। उस तिलमिलाहट में उसके जीने की प्रेरणा और उसके सुख की प्रवृति इतनी अंधी हो गई कि उसे अपने बच्चे को गंगा की लहरों में फेंक आना पड़ा। हाथ से तीर निकल जाने के पश्चात वह वेदना की महाग्नि में दग्ध हो उठी। वह वापस भी गई थी। उसने उल्लास करती हुई लहरों को गौर से देखा भी था लहरों पर उठने वाले बुदबुदे उसके बच्चे की पवित्र शक्ल में बदल गए। उसे लगा कि भगवान कृष्ण की भाँति उसका कन्हैया सहस्त्रों आकृतियों में इन लहरों पर मुक्त हास कर रहा है।

"कूद जाऊँ, बेटा, मैं आती हूँ।" रुको, क्षण भर के लिए रुको।" न जाने झंम्या का एक झोंका कहाँ से आकर उन आकृतियों को मिटा गया।

दूर से मछेरे की मुक्त ध्वनि आ रही थी। वह नाविकों को सावधान कर रहा था। जीओ, इन समुद्री तूफानी हवाओं की तरह जीओ। इन बर्फीली कूल की चट्टान की तरह अपने सीने को वज्र करो ताकि तपिस पाकर वह करुणा के रूप में पिघल जाए।""सावधान, सावधान ! ओ वरुण-पुत्रो, तुम्हारा जीवन केवल जलचरों के लिए नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है। तुम सूरज हो, जो प्रकाश का दान देता है। तुम हवा हो जो जीवन-दान देती है चाहे उससे माँगे और चाहे उससे न माँगे।

आओ, हम जीवन की समस्त आपदाएँ, विषमताएँ और संकटों का भय त्याग कर मृत्युंजयी की भाँति जिए, पथ सुगम हो जाएगा, ''''''अंधकार मिट जाएगा। ''''''एक बार सामूहिक स्वर में उद्घोष करें, हम किसी भी बाधा से नहीं डरते, हम जीएँगे, हम जीएँगे, हम जीएँगे।

तभी किसी वृद्धा ने नमिता की पीठ थपथपा दी थी। वह काँप गई। चोरी की ताक में बैठे चोर को किसी पुलिस वाले ने पकड़ लिया हो ऐसी स्थिति हो गई थी नमिता की।

वृद्धा ने बड़े जीवट से कहा, "मछेरे का गीत सुन रही हो, बहुत ही मधुर गाता है।

"हाँ माँ !"

"पर इतनी तन्मयता भी अच्छी नहीं। देखो, नीचे बहुत गहरा जल है। कहीं गीत का आकर्षण एक कदम और आगे खींच लेता तो····? चलो अब स्नान कर लो।" नमिता वृद्धा के साथ नतमस्तक चल पड़ी।

मृत्यु का आवेश खत्म हो गया। नमिता आत्म-हत्या नहीं कर सकी।

विभूति बाबू मुस्करा कर बोले, "तुम दोनों पाषाणवत् क्यों बैठी हो ? अरे बाबा, कुछ चर्चा करो न, आखिर कल प्रसन्न आ रहा है। क्या किसी बच्चे के भविष्य के बारे में तुम दोनों थोड़ी देर मंगल-चर्चा नहीं कर सकती ?"

नमिता झट बोल पड़ी, "शुभ कामनाएँ हृदय से की जाती है। नगाड़ा पीट कर केवल आज्ञा सुनाई जा सकती है ?"

छन्दा ने उठते हुए कहा, "कल आप दोनों जरूर आइएगा। आप नहीं आएँगे तब मुझे बड़ा कष्ट होगा"

नमिता अवश्य आएगी पर मैं अपनी कह नहीं सकता। तबीयत ठीक रही, निसन्देह आऊँगा। फिर छन्दा देवी, नमिता जिस लड़के को हृदय से प्रेम करती हो उसकी वर्षगाँठ का अवसर मैं कैसे चूक सकता हूँ। पति-पत्नी के बीच की यही सावधानी जीवन को सुखमय बनाने के लिए बहुत है कि दोनों एक दूसरे की भावनाओं को समझें।"

छन्दा नमस्कार कह कर चल पड़ी।

नमिता विभूति बाबू के पास बैठती हुई बोली, "आप को वहाँ चलने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"क्यों ? असीम को यह अभद्रता लगेगी। उसकी विधवा बहिन का एक ही बेटा है।"

"तो क्या हुआ, मैं आपको नहीं जाने दूँगी। असीम को समझा दूँगी कि वे आने में असमर्थ हैं।"

इसके बाद कोई विशेष बात नहीं हुई। संध्या-बेला जब नमिता कनॉट प्लेस में किसी कार्यवश गई थी, उस समय उसकी भेंट समरेश से हो गई। वह उसे नहीं पहचान सकी पर समरेश ने चन्दा लेने वाली ज्योतिर्मय की मित्र को पहचान लिया। वह समीप आकर बोला, "दीदी को, नमस्कार!"

नमिता चौंक पड़ी। पहचानने का प्रयास करती हुई उसे घूरने लगी।

"आप ने मुझे नहीं पहचाना, मैं हूँ समरेश, ज्योतिर्मय का चचेरा छोटा भाई, एक दिन आप चंदा···!

"ओह, नमस्कार समरेश बाबू, ज्योतिर्मय बाबू का क्या हाल-चाल है? उनकी टाँग ठीक हुई कि नहीं?"

उपचार बहुत कराया पर भाग्य ने साथ नहीं दिया। बेचारा······ ज्योतिर्मय!"

"क्यों, क्या हुआ उन्हें, क्या वे····!"

"हाँ, वे···!"

नमिता की साँस रुक गई।

"वे उससे भी दयनीय हो गए।"

"आपका मतलब?"

"उन पर एक बार बीमारी का आक्रमण फिर हुआ। अब की उनका एक हाथ भी खराब हो गया। अब वे उठ-बैठ, चल-फिर नहीं सकते। ऐसे जीवन से मृत्यु बहुत ही अच्छी है।" समरेश का स्वर बोझिल हो गया।

"दुखी प्राणी से मृत्यु भी भय खाती है। वे हैं कहाँ?"

"यहीं, मैं यहाँ सरकारी-सर्विस में आ गया हूँ।"

"कहाँ रहते हैं।"

समरेश ने अपना पता बता दिया। नमिता उसे धन्यवाद दे कर चली आई।

उस रात नमिता विभूति बाबू के चरणों में बैठी सिसकियाँ ले रही थी। विभूति बाबू ने निद्रा की गोली ले रखी थी। कभी-कभी आदमी क्यों रोता है, इसका स्वयं उसके पास बताने का कारण नहीं होता। बस, वह रोता है। उस रोने से उसे महातृप्ति मिलती है। नमिता भी उस रात रोई। सन्तानहीन विभूति बाबू के लिए या दुर्दशाग्रस्त ज्योतिर्मय के लिए अथवा अपने दुर्भाग्य के लिए ?

धीरे-धीरे मायाविनी निद्रा ने श्रांत-क्लांत नमिता को अपनी गोद में ले लिया। नमिता निद्रा में स्वप्न वह देखने लगी जो अपूर्व सुख के थे, जिनमें कल्लोल भरा था, जो उसके वर्तमान जीवन से जरा भी सम्बन्ध नहीं रखते थे।

× × ×

३



प्रसन्न आगया। वर्षगाँठ की तैयारियाँ पूर्ण हो गईं। निमन्त्रित आगुन्तुकों में बहुत कम लोग थे। नमिता, अनु, एक हो पड़ोसी और आशुतोष !

आशुतोष ने आते ही मधुर मुस्कान के साथ छन्दा का अभिवादन किया। बड़ी नर्मी से बोला, "आज मुझे बम्बई जाना था छन्दा देवी पर मैंने आपके पुत्र की वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

छन्दा ने मौन कृतज्ञता प्रकट की। आशुतोष एक कोने में बैठा अंग्रेजी की अत्यन्त भारी भरकम पुस्तक पढ़ रहा था 'वार एण्ड पीस'। उस नारी प्रधान वातावरण में उसका पुस्तक पढ़ना पृथक व्यक्तित्व का प्रतीक लगता था जैसे वह अत्यत्त गंभीर और ज्ञानी पुरुष हो।

अनु नमिता के पास बैठी थी। कानों के समीप श्वेत लगे कुन्तलों को संकेत करती हुई नमिता बोली, "अब तुम अपनी चंचलता और कठोरता को छोड़ कर गंभीर और दार्शनिक बनोगी।"

"क्यों ?"

"बाल श्वेत जो हो रहे हैं ?"

"श्वेत बालों से गंभीरता और दर्शन का क्या सम्बन्ध ? क्या तुम उन मूर्खों से अपरिचित हो जिनकी बुद्धि का ह्रास ढलती उम्र में ही होता है।

राजस्थानी भाषा की एक कहावत है साठी बुद्ध नाठी अर्थात् साठ वर्ष के बाद बुद्धि दौड़ जाती हैं।" उसकी आँखों में हल्का आक्रोश था।

नमिता ने उसकी दबंग नीति के समक्ष मौनव्रत ले लिया।

प्रसन्न ने पार्टी में प्रवेश किया। उसके एक ओर असीम था और दूसरी ओर छन्दा। नमिता की दृष्टि उस पर जम गई। आशुतोष फूलों की माला लाया था। लपक कर आगे बढ़ा और पहना कर अंग्रेजी में बोला, "लाँग लिव माई डियर प्रसन्न।"

प्रसन्न ने सव्यंग मुस्करा कर चुटकी ली, "मिस्टर आशुतोष, क्या आप बंगला में नहीं बोल सकते? मातृभाषा और राष्ट्र भाषा के अलावा अंग्रेजी में बोलना अब रूचिकर नहीं लगता।"

अनु ने बीच में ही पूछा, "प्रसन्न आशुतोष जी इंगलैंड गए हुए हैं?"

"नहीं।" छन्दा ने बीच में ही कहा।

"फिर इनका दादा या परदादा जरूर विलायत गए होंगे। यह यहाँ भी टाई लगाकर आए हैं। यह रक्त-प्रभाव है।"

सभी ने जोर का ठहका लगाया। आशुतोष झेंप गया।

तिलक किए जाने के बाद छन्दा प्रसन्न को घर के मन्दिर में ले गई। वहाँ काली और दुर्गा के चित्र लगे हुए थे। श्रद्धा से झुक कर उसने स्वयं नमस्कार किया और प्रसन्न ने साष्टांग दण्डवत। वह उन चित्रों के समक्ष नेत्र मूंद कर खड़ा हो गया। तत्काल उसका मुख इतना निष्कलुप हो गया जैसा किसी भक्त का हो। इस प्रकार की गति विधियों में असीम को बहुत आनन्द आ रहा था।

नमिता भी आ गई थी। उसकी दृष्टि में प्रसन्न समाया हुआ था। वह सोच रही थी, इसकी आँखें और नाक बिलकुल मेरे जैसें हैं प्रकृति का यह साम्य भी कितना अद्भूत है?

तभी उसे गंगा का तट याद आ गया। वीचियों पर उठते हुए बुलबुलों को वह विभ्रान्त सी देखती रही। वह घूर कर प्रसन्न को देखने लगी। प्रसन्न प्रर्थना में तन्मय था। छन्दा नमिता को देखकर डाह में जल गई। उसे वर्षों से पूर्व वह बुढ़िया याद हो आई। धँसी हुई आँखें, झुरियों वाला मुख, सूखे जबड़े, भयानक और वीभत्स !

मृत्यु सा सन्नाटा छन्दा ने भंग कर दिया।

सभी भावना-लोक से वस्तु भूमि पर आ गए।

लोगों ने अपने अपने तोहफे दिये। नमिता ने अपने हाथ से प्रसन्न को घड़ी पहनाई और पैन देते हुए कहा, "यह विभूति बाबू ने तुम्हें भेजा है। वे अस्वस्थता के कारण नहीं आ सके।"

"मैं स्वयं उनके यहाँ चलूँगा।"

छन्दा समीप आ गई। उसने प्रसन्न की बातें सुनली। कुछ गंभीर होकर बोली, "लेकिन संध्या-बेला। दिन भर हमें फुर्सत नहीं हो सकेगी। फिर तुम्हें मेरे साथ भी चलना है।"

नमिता संयत-स्वर में बोली, "जब तुम्हारी इच्छा हो तब आ जाना पर आना जरूर। वे तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।"

आशुतोष दाल-भात में मूसलचन्द हो गया। बोला," नहीं छन्दा देवी, आज संध्या-बेला आपका प्रोग्राम मेरे साथ रहेगा। हम आज कोई अंग्रेजी पिक्चर देखने चलेंगे ?"

प्रसन्न ने कहा, "मैं बंगाली चित्र देखना पसंद करूँगा। आखिर हम अपनी भाषा को स्वयं प्रोत्साहित नहीं करेंगे तो, तब वह इन सेठों, दूकानदारों एवं पैसों के लिए हाय-तोबा मचाने वाले राजस्थानियों की भाषा राजस्थानी की तरह मर जायगी।"

अनु ने इस बात का विरोध किया, "राजस्थानी भाषा बड़ी समृद्ध है। स्वयं तुम्हारे बंगाली मनीषियों ने उसकी समृद्धता को स्वीकार किया है।

सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या और कवीन्द्र रवीन्द्र भी उसके लोक-गीतों से मंत्र मुग्ध हैं। उसके लोक-साहित्य से प्रभावित हैं।"

नमिता ने प्रसन्न का पक्ष लिया, "कुछ विद्वान सज्जन व्यक्ति ऐसे होते हैं जो प्रत्येक की प्रशंसा ही करते हैं पर आज राजस्थानी भाषा इन मारवाड़ियों के कारण मर गई है। तुम भी सोचो न अनु, जिन्हें अपनी भाषा से प्यार नहीं, वे अपनी संस्कृति का कैसे विकास करेंगे।···मैं हिन्दी जानती हूँ, उसके पत्र भी पढ़ती हूँ। लेकिन "हमारा साहित्य इतना महान् और इतना प्राचीन है,' "क्या इतना ही इस वैज्ञानिक युग की कसौटी के लिए पर्याप्त है ? राजस्थानी के प्रायः लेखक गड़े मुर्दे उखाड़ रहे हैं।"

छन्दा उपेक्षा से बोल पड़ी, "यह ऋतु-हीन वर्षा अच्छी नहीं लगती। जो भाषा चन्द व्यक्तियों की दूकानदारी हो जाती है, उसका सही विकास कभी नहीं हो सकता।·······मैं मंगल कामना करती हूँ कि ये मारवाड़ी लोग अपनी भाषा के प्रश्न को अपनी सबसे बड़ी और आवश्यक समस्या समझें।····· चलो, कुछ रवीन्द्र संगीत हो जाय।"

रवीन्द्र संगीत के पश्चात प्रोग्राम समाप्त हो गया। भोजन उपरांत अनु ने प्रसन्न को बुला कर कहा, "तुम इंजीनियर बन कर संसार में अपना नाम करना।" और वह हवा की तरह चली गई।

आशुतोष असीम के समीप जाकर बोला, "क्यों ब्रादर, मेरे साथ चल रहे हो ! चलो, तुम्हें कुछ देर के लिए मोटर की सैर करा लाता हूँ।"

"भोजन करने के उपरान्त मनुष्य को सोना चाहिए।"

"तुम मोटर में नहीं सो सकते ?"

"तुम मुझे क्षमा नहीं कर सकते।"

तभी नमिता और पड़ोसी सज्जन चले गए। प्रसन्न ने आकर असीम से कहा, "मामा, मुझे बाजार जाना है।"

आशुतोश ने तुरन्त कहा, "आइए, मैं आपको मोटर पर ले चलता हूँ।"

असीम ने घृणा से कहा, "शहर में टैक्सियाँ बहुत मिलती हैं।"

प्रसन्न बोला, "इसमें बिगड़ने की क्या बात है ?"

यदि तुम जाना चाहते हो तो जाओ। मैं इनके साथ किसी भी शर्त पर नहीं जा सकता।"

"क्यों ?"

"ये मिनिस्टरों के मित्र, राष्ट्रपति के बाएं हाथ और कांग्रेस अध्यक्ष के दाएं हाथ हैं।"

आशुतोष मुस्कराता हुआ चला गया। असीम का मुँह उतर गया। छन्दा नमिता को कुछ दूर छोड़ कर आई थी। असीम के मुख को देखकर बोली, "उदास क्यों हो ?"

" यह व्यक्ति बड़ा ही नीच है। कभी मुझे गुस्सा आ गया तो मैं इसे जान से मार दूँगा।" आन्तरिक क्रोध से वह काँप रहा था।

प्रसन्न को मजाक सूझा। नाटकीयता से बोला, "खून का बदला खून होता है।"

छन्दा ने प्रसन्न को डाँटा, "मामा से मजाक नहीं करना चाहिए।"

"आशुतोष बाबू ने साथ चलने के लिए कहा और मामा जी बिगड़ गए। उन्हें आशिष्ट गालियाँ दे दी। यह भी कोई बात है।"

"तुम नहीं जानते प्रसन्न, यह आशुतोष बहुत खराब आदमी है। इसके हृदय की बात को विधाता भी नहीं जान सकता।"

छन्दा को अपनी बात का पक्ष लेते देख कर असीम बोल उठा, "पहले इसने अपनी पत्नी की हत्या की और आज यह अवश्य ही छल-प्रपंच का कार्य करता होगा।"

"फिर ऐसे व्यक्ति की छाया भी अहितकारी होती है। माँ, तुम इससे सम्बन्ध क्यों रखती हो ?"

"मैंने हजार बार तुम्हारी माँ को समझा दिया।" असीम गंभीरता से बोला, "किन्तु वह मानती ही नहीं। उल्टा मुझे डाँट देती है। इस नीच को समाज वाले घृणा की दृष्टि से देखते हैं तो तुम्हारी माँ स्नेह-दृष्टि से। छन्दा सदा गाँव के विपरीत चलती है।"

"अब इस व्यर्थ की बात को समाप्त करोगे या नहीं ?" बुजुर्ग की भाँति अधिकार पूर्ण स्वर में छन्दा बोली, "कल से आशुतोष यहाँ नहीं आएगा।………प्रसन्न, तुम मामा के साथ बाहर चले जाओ।"

गृह में गृहिणी छन्दा रह गई। तेज हवा के झोंके से खिड़की के किवाड़ खट्-खट् कर रहे थे। मन का खिला चमन दूर-दूरान्तर तक विस्तृत था। तभी उसे सुनाई पड़ा, माँ ! छन्दा के कान खड़े हो गए। वह स्वर उसके समीप आता गया। वह विह्वल होती गई।……… माँ मुझे पहचानो, अरे बेटा प्रसन्न, तुम बदल कैसे गए,………तुम नेहरू जैसे लगते हो !………हाँ, माँ, आज मैं देश का महान् नेता हूँ। मुझे आशीर्वाद दो कि मैं तुम्हारा नाम दिग्दिगन्त में प्रकाशित करूँ। लोग कहें कि छन्दा देवी ने अपनी कोख से पत्थर नहीं, रत्न को जन्म दिया। माँ, स्वर्ग में मेरा बाबा कितना प्रसन्न होगा, उसकी आत्मा महान् सुख पा रही होगी।

एक झटके ने छन्दा को सावधान कर दिया। अपार प्रसन्नता घनीभूत पीड़ा में बदल गई।………कौन बाप ? भगवान जाने कि तुम कौन हो ? तुम में किसका रक्त प्रवाहित है ? मैं तो केवल तुम्हारी पोषिका हूँ, किराए की तो नहीं, स्वेच्छा से हुई माँ हूँ ! अब मैंने तुम्हें पाला है, तुम्हारे लिए अपने प्रत्येक चैन के क्षण को खोया है, अतः अब तू मेरा है।………मैं अपना वह अन्त नहीं होने दूँगी जो उस पँजाबिन वृद्धा का हुआ था। कितना करुणा भरा और कितना वीभत्स ?

और वह विचारों की वीचियों पर कागज की नाव की तरह डोलती रही।

× × ×

५



नमिता छन्दा के यहाँ से विदा हो जाने के बाद सीधी समरेश के घर पहुँची। उस दिन समरेश घर पर नहीं था। उसने घर के किसी नौकर से पूछा कि ज्योतिर्मय बाबू कौन से कमरे में रहते हैं ? नौकर ने नीचे के एक कमरे की ओर बड़ी उपेक्षा से संकेत कर दिया। उसका नाक भौं सिकोड़ना नमिता को पसन्द नहीं आया।

वह हल्के कदम उठाती हुई उस कमरे की ओर बढ़ी। हृदय में उसके हलचल थी। कमरे के किवाड़ पर उसने अंगुलियों की दस्तक दी। भीतर से चिड़चिड़ा स्वर आया, "कौन है ?"

"मैं !"

"कौन समरेश ? मैं कहता हूँ कि मैं भोजन नहीं करूँगा। दाल में नमक-मिर्च नहीं। क्या मैं कुत्ता हूँ जो सूखी-रूखी खाकर चैन से बैठ जाऊँ ? आखिर तुम्हारा बड़ा दादा हूँ ?"

वह चुप हो गया तब नमिता ने किवाड़ खोल दिए। ज्योतिर्मय ने नेत्रों पर चश्मा लगा कर उसे गौर से देखा। अपने करुण-क्रन्दन को कठिनता से होठों के बीच दबा कर बोला, "तुम ?"

नमिता पाषाणवत् खड़ी थी।

ज्योतिर्मय की दशा उसके लिए असह्य थी। एक बार वह रेस्त्राँ से सत्य को झूठ मान कर भाग खड़ी हुई थी वह आज…? एक कृशकाय घृणित इन्सान उसके समक्ष बैठा था जिसका एक पाँव और एक हाथ बेकार हो गया है। चाँद सा सलोना मुख कंकाल की घिनौनी आकृति में बदल गया है। सिर पर बाल नहीं हैं। गले में कपड़ों की कई गोल रस्सियाँ बना कर पहन ली है। धोती के स्थान पर एक कपड़ा मात्र है। गन्दे बिछौने और एक टूटी-सी काच की गिलास है। एक मटकी है जिस पर गर्द की पर्तें जमीं हुई हैं।

वह यंत्रवत् उसके पास बैठ गई।

उसके बैठते ही ज्योतिर्मय दृष्टि फेर कर बोला, "तुम यहाँ क्यों आई हो?"

"चंदा माँगने।"

ज्योतिर्मय की आँखें भर आईं। वह विचलित स्वर में बोला, "मैं तुम्हें सारा सामान दे दूँगा किन्तु तुम प्रभु से मेरे लिए एक प्रार्थना कर दो कि वह मुझे मृत्यु दे दे। वह तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेगा क्योंकि मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है, तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है।" उसने अपने पक्षघात हुए निर्जीव हाथ को खुजला कर कहा, "मैं जानता हूँ कि पापी का उद्धार शीघ्र संभव नहीं इसलिए तुम मुझे विष लाकर दे दो। मेरी आत्मा प्रभु से शत् शत् वन्दन करेगी।"

"आज तुमने खाना नहीं खाया?" उसने थूक को निगल कर बड़ी मुश्किल से कहा।

"नहीं।"

"क्यों?"

"न दाल में नमक होता है और मछली ही रहा-सहा भोजन मुझे डाला जाता है जैसे मैं इस घर का कोई सदस्य नहीं, मोहल्ले का कुत्ता हूँ।"

नमिता कुछ नहीं बोली। वह उठ कर बाहर आई और कुछ मिठाई खरीद कर ज्योतिर्मय के लिए ले आई। अनुरोध पर अनुरोध करने पर भी ज्योतिर्मय ने उसे नहीं खाया।

"आखिर क्यों नहीं खाते हो ?"

फिर तुम्हारी दुष्कामनाएँ सफल कैसे होएगी ? मैं जितनी मरने की कामना करता हूँ, मृत्यु मुझ से उतनी ही दूर भागती जाती है।"

"तुम्हारे छल से ईश्वर की सहिष्णुता भी हिल गई। आज मैं ईश्वर की पूर्ण भक्त हूँ। उसने ही मेरे अशान्त मन को स्थिरिता दी है।" वह थोड़ी देर रुकी फिर बोली, "आज मेरे कहने पर यह मिठाई खा लो। तुम्हें कदाचित् स्मरण नहीं कि एक युग ऐसा था जब तुम मेरा अनुरोध कभी नहीं टाला करते थे। मेरे वचन को ब्रह्मा का कथन मानते थे।'

"और तुम मेरे कहने पर रात-रात भर मेरा सिर सहलाया···।"

"उन बातों को मत छेड़ो। अब मैं किसी की पत्नी हूँ।"

"फिर तुम मुझे अपने हाल पर छोड़ कर चली जाओ। मैंने अब निश्चय कर लिया कि मैं खाना नहीं खाऊँगा।"

"यह हठ धर्म अच्छा नहीं।"

ज्योतिर्मय केवल मुस्करा पड़ा।

"अच्छा, मैं तुम्हारे लिए यह मिठाई रख जाती हूँ, मुझे विश्वास है कि तुम मेरी अनुपस्थिति में इस हठ को छोड़ कर इसे खालोगे।" नमिता खड़ी हो गई, "अब तुम्हें संतोष ग्रहण करना चाहिए। मैं किसी की पत्नी हूँ, अतः यहाँ सदा नहीं आ सकती। किन्तु तुम्हारी यह दशा देख कर मन को विश्वास नहीं होता। जब मन को विश्वास नहीं होता तब तुम्हें देखने के लिए आना पड़ेगा। ······मनुष्य, अपने अन्तर में उत्पन्न हुई करुणा का भी दास है। उसकी अवज्ञा भी वह नहीं कर सकता।"

ज्योतिर्मय ने गुस्से से वह मिठाई बाहर फेंक दी । थोड़ा सा घिसक कर चीखा,"......करुणा, करुणा, करुणा, छिः, ये लोग अपने आपको क्या समझने लगे हैं ?"

नमिता बाहर चली आई ।

ज्योतिर्मय भीतर से चिल्लाया, "दरवाजा बन्द कर दो।"

नमिता द्वार उड़क कर जैसे ही मुड़ी, वैसे ही उसकी दृष्टि समरेश पर पड़ी। वह क्षण भर ठिठकी, फिर आगे बढ़ी ।

समरेश ने पीछे से पुकारा, "दीदी ।"

नमिता रुक गई । समरेश समीप आ गया, "क्या तुम मुझसे बिना मिले ही चली जाओगी ।"

नमिता निरुत्तर रही । उदास स्वर में बोली, "तुम अपने दादा के प्रति न्याय नहीं कर रहे हो ? वह अपंग हो गया, उसका तात्पर्य यह नहीं है कि तुम भी उस प्रकृति की भाँति क्रूर हो जाओ ?"

समरेश उसके सम्मुख आ गया, "दीदी, मैं इसके प्रति क्रूर हूँ या वह, यह परमात्मा ही जानता है। मनुष्य के सहिष्णुता की एक पराकाष्ठा होती है ।" वह रुक कर बोला, "चाची की मृत्यु के बाद ज्योतिर्मय का स्वभाव और बिगड़ गया है ।

"उसके वस्त्र, उसका बिस्तर, उसके जल का बर्तन, क्या किसी भले मनुष्य के योग्य हैं ?"

"नहीं ।"

"फिर बदलते क्यों नहीं ?"

"आप प्रयास करके देखिए न ?" समरेश ने अपना वाक्य समाप्त किया ही था कि ज्योतिर्मय चिल्लाया, "मेरा पैसा किसने चुराया ? ओ समर के बच्चे, देख तेरे घर में चोर-डाकू हो गए हैं। जल्दी से मेरा एक आना लाकर दे वर्ना मैं अपना सिर फोड़ता हूँ ।"

नमिता उस ओर लपकी। समर ने उसे रोक दिया, "तुम उधर मत जाओ दीदी, तुम्हें देख कर उसका हठ बल पा जाएगा और वह सचमुच सिर फोड़ लेगा। नहीं तो वह चीखता-चिल्लाता थक जाएगा और चुप हो जाएगा।"

नमिता ने एक ठंडी साँस ली।

"दीदी, चाय पीती जाओ।"

"नहीं, इस वातावरण में मेरा साँस घुट रहा है। मुझे क्षमा कर दो मैं फिर कभी आऊंगी।" कह कर नमिता तीव्रगति हो लौट आई।

वह टैक्सी लेकर घर आई।

विभूति बाबू ने व्यग्रता से पूछा, "इतनी देर कहाँ लगादी, मैं बेचैन हो उठा था।"

"मैं जरा कनॉट प्लेस की ओर चली गई थी।" मिथ्याभाषण करते हुए नमिता का मुख उदास हो गया। उसका रोम-रोम चीख उठा—यह झूठ तुम्हारी नारी की बड़ी पराजय है। यह छल उस पुरुष के प्रति महा अन्याय है जिसने तुम्हें अपनी अर्धांगिनी स्वीकार किया है।

"तुम उदास क्यों हो गई ?"

"सिर में दर्द है।" यह बहाना हमारे आन्तरिक संघर्ष के तथ्य को छुपाने के लिए बहुत ही उचित है। डाक्टरों का भी कहना है कि सिर और पेट के दर्द की कोई दवा नहीं, मुख्यतः नारियों के।

विभूति बाबू शय्या पर लेटते हुए बोले, "प्रसन्न, मुझ से मिलने आएगा न ?"

"हाँ, आज संध्या-बेला।" वह समीप की कुर्सी पर बैठ गई।

"वह कैसा लगता है ?"

"केवल उसकी आंखें ही नहीं, वह बिलकुल मेरा जैसा लगता है।"

"क्या वह तुम्हारे जैसा है ?"

"नहीं, नहीं, केवल उसकी आँखें मुझसे मिलती हैं।"

विभूति बाबू उसके अन्तर्द्वन्द्व को समझ गए। वे शाँति से नेत्र मूँद कर सो गए।

नमिता सोच रही थी कि यह उसने क्यों कह दिया ? विभूति बाबू पर उसके इस कथन की क्या प्रतिक्रिया होगी ?

ऐसा कहना नमिता के लिए नितांत स्वाभाविक ही था। जिस दिन उसने प्रसन्न के आगमन की सूचना सुनी थी, उसी दिन से उसके मस्तिष्क में यह विश्वास और भावना बड़ी तेजी से कार्य कर रही थी कि काश प्रसन्न मेरा बेटा होता। वह बिलकुल मेरे जैसा है, आदि।

"नमिता, तुम्हारा यह मौन अभी मेरे लिए असह्य हो रहा है।....मुझे भय लग रहा है कि तुम्हारी यह गंभीरता बहुत बड़ा अनर्थ न कर दे।" विभूति बाबू ने मौन को तोड़ा।

"कोई कहानी सुनाऊँ ?"

"कहानी, यह तुमने कैसा मजाक किया ?" वे तनिक चिढ़ गए।" यह भी कोई कहानी कहने का समय है ? फिर कहानियाँ बच्चे सुनते हैं ? अवश्य तुम्हारे संघर्ष का कारण कोई बच्चा है।"

"मैं प्रसन्न को अपना बेटा बनाना चाहती हूँ।"

"जब मेरी समस्त आशाएँ मर जाएंगी तब तुम उसे खुशी खुशी अपना पुत्र बना लेना। अभी मैं इतना पौरुष हीन ....!" विभूति बाबू वाचाल हो उठे। शय्या से उठ कर वे इधर-उधर घूमने लगे। नमिता उनके प्रति उदासीन थी। वह आराम-कुर्सी पर इस तरह लेटी हुई थी जैसे वह निर्जीव है। जैसे वह नहीं, उसके अन्तर की कोई अनन्त प्यासी नारी विभूति बाबू से वार्तालाप कर रही है। और विभूति बाबू रक्त-संध्या के बिखरते हुए रक्त कणों की वर्षा को महाकाली की प्यासी जिह्वा के समान क्षितिज की जिह्वा पर गिरते देख

रहे हैं। देख कर अकस्मात सोच उठते हैं,रात्रि का आगमन होगा, तिमिर फैलेगा, चाँद उगेगा और फिर सवेरा हो जायगा। उफ़ क्या इस अनवरत गति में परिवर्तन संभव नहीं। प्राणी और उसका जीवन ! जटिल विचार्य पथ। क्लांत संगीत स्वर ! दुख की सांघतिका और क्रमशः पीड़ा उत्पन्न करने वाली उद्घाटित-यवनिका ! ······ओ रे मानुष, तू निर्बल है, विवश है, दीन है!

"सुनिये !" वह क्लांत स्वर में अचंचल होकर बोली, "प्रसन्न आ रहा होगा, मैं चाय मिठाई की तैयारियाँ करती हूँ।"

क्षितिज का कालग्रास सूर्य बन गया।

विभूति बाबू विचार उठे, "प्राणी का यही अंत !"

"मैंने कहा, वह आपने सुना ?" नमिता का स्वर तीव्र था।

"हाँ, हाँ, तुम नीचे चली जाओ, मैं अभी आया।"

"मैंने यह नहीं कहा, तथा मैं तो प्रसन्न के आने के बारे में कुछ कह रही थी। अब बस, वह आता ही होगा।"

"तुम द्वार पर ही उसका स्वागत करना।"

नमिता ने वातावरण को अनुकूल न जान कर चुप रहना ही उचित समझा। वह नीचे चली गई।

थोड़ी देर बाद प्रसन्न और असीम आ गए।

विभूति बाबू ने अन्तर के संघर्ष को दबा कर मंद मधुर मुस्कान से उन दोनों का स्वागत किया।

"मैं तुम्हारी उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहा था। मैंने तुम्हारे पावों की आहट सुनने के लिए अनेक बेचैनी के क्षण व्यतीत किए। ······असीम, तुम्हारा यह भांजा महान् होगा ····ना ना, चरण धूलि की कोई आवश्यकता नहीं। तुम अत्यन्त शीलवान हो ! कुलीन हो ! तुम्हारा नाम पूँजिभूत मेघ की भाँति दीप्त सघोष हो।"

तभी नमिता ने प्रवेश किया। उसके भाल का चुम्बन लेकर बोली, "बेटा, आज तो छन्दा दीदी ने यह नहीं कहा कि नमिता मौसी अच्छी नहीं है।"

प्रसन्न गर्दन झुकाकर धीमे स्वर में बोला, "आप शैशव की बाल सुलभ सहज उपहास भरी बातों को आज तक नहीं भूली।……अब वह कह भी दे तो मैं उसका कहना नहीं मानूँगा।"

"क्यों ?"

क्षणिक हँसी के झटके के साथ विभूति बाबू बोले, "तुम्हारे नेत्र जो प्रसन्न से मिलते हैं।"

नमिता व्यंग से बोली, "मुखाकृति नहीं ?"

गंभीर हुए असीम पर दृष्टि जमा कर विभूति बाबू बोले, "साम्य अवश्य है पर अन्तर तुम्हारी नाक भैंस जैसी है और प्रसन्न की शुक जैसी।"

असीम के अतिरिक्त सभी मुक्त अट्टहास कर उठे। नमिता क्षण भर प्रसन्न और हास्यमयी हो गई।

असीम का निरन्तर मौन प्रसन्न को अखर गया। बोला, "आज कल आप इतने मौन क्यों रहते हैं ?"

"व्यर्थ का बोलना हास्यपद होता है।" असीम से तुरन्त उत्तर दिया, "इसलिए मौन रहता हूँ।"

इसके बाद कहकहे छूटते रहे। विभूति बाबू ने तनिक भी अरुचि नहीं दिखाई। वे प्रसन्न को तन और मन से अगाध स्नेह देते रहे हैं।

× × ×

५



सवेरे की गाड़ी से ही प्रसन्न पुनः बंगलोर जाने वाला था अतः रात के प्रशांत पहरों में छन्दा और प्रसन्न, माँ और बेटा सुख-दुख की चर्चा में निमग्न रहे।

"मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा नाम गाँधी जी की भाँति संसार में चमके। ....बेटा, बंगाल प्रतिभा की उर्वर भूमि है। उसने सुभाष बोस, रवीन्द्र, शरत विवेकानंद, परमहंस, राम मनोहरराय जैसे महान् विभूतियाँ दी है। मैं चाहती हूँ कि तुम उस परम्परा और उसी बंगाली रक्त-गौरव को पुनः प्रतिष्ठापित करो।'

वह इतना कह पाई थी कि प्रसन्न को छाया सी हिलती दिखाई पड़ी।

"माँ, वह कौन है ?"

"तुम्हारे मामा !"

"मामा, तुम अकेले उस अन्धेरे में क्या कर रहे हो ?" वह उठ कर मामा के पास गया, "यह एकांत का आत्म-निवेदन भी रुग्ण-प्रवृति का द्योतक है।"

"कभी कभी मनुष्य अप्राप्त की कामना करता है, उसकी असफलता के कारण वह एकान्त-आत्मनिवेदन में आनंद लेने लगता है। उस निवेदन में वह इतनी

सुखद कल्पनाएँ करता है कि उसे यह वस्तु जगत जरा भी प्रतिकर नहीं लगता।"

छन्दा बीच में आकर बोली, "तुम्हारा यह स्वभाव मुझे भयानक लगता है। तुम पहले की भाँति न बोलते हो और न ही कोई उपहास करते। दिन भर दूकान के कार्य में व्यस्त रहने के बाद यहाँ मृत्यु के दूत की भाँति बैठे रहते हो।...... केवल आशुतोष के कारण तुम में मनुष्य-प्रवृति के सभी गुण-दुर्गुण देखने को मिलते हैं।"

प्रसन्न ने बीच में ही कहा, "कनॉट प्लेस पर आशुतोष बाबू मिले थे, उन के साथ उनकी मंगेतर भी थी।"

"कैसी दिखती थी ?"

असीम बीच में ही अपने अन्तस की घृणा उड़ेल उठा, "जैसा आशुतोष दिखता है। आशुतोष ने अपनी पत्नी की हत्या की और उसकी मुखाकृति पति-हत्यारिनसी लगती है। दोनों की युगल जोड़ी खूब है।"

छन्दा ने उसे टोक दिया, "तुम्हें किसी के बारे में मिथ्या धारणा नहीं बनानी चाहिए। आशुतोष आज कल व्यापार करके अपना जीवन-निर्वाह करता है। जब मनुष्य में स्थापित्य आता है, तब वह सुखी जीवन की कामना करता है। सुखी जीवन में 'स्त्री' अत्यन्त महत्व रखती है।"

प्रसन्न इतनी देर गंभीर मुद्रा बनाए बैठा था। छन्दा के मूक होते ही वह उचक कर बोला, "माँ, मामा के लिए एक सुन्दर बहू क्यों नहीं ले आती ?"

"तुम्हारा मामा तैयार जो नहीं होता है। पता नहीं, तुम्हारा मामा किस के प्रेम में यह तपस्वी का जीवनयापन कर रहा है।"

असीम ने प्रसंग बदलने का प्रयास किया, "आशुतोष, क्या करता है, यह भविष्य में प्रकट होगा। मैं इतना जानता हूँ कि वह जरूर अनैतिक काम करता है।"

"मामा, अब तुम मामी ले आओ।"

"मैं केवल अपने आपको ही प्यार कर सकता हूँ। किसी-किसी प्राणी को ईश्वर का अभिशाप होता है कि तुम अपने आप पर मुग्ध हो सकोगे। मैं अपने पर मुग्ध हूँ। अभिसप्त प्राणी हूँ।"

छन्दा ने कहा, "जिसके मन में घृणा और ईर्ष्या हो वह अपने आप पर कदापि मुग्ध नहीं हो सकता। इस प्रकार के स्वाभाव वाले व्यक्ति का किसी संसारिक प्राणी से अवश्य सम्बन्ध होता है।"

"वैसे मैं पूर्ण वियोगी नहीं हूँ। प्रसन्न, जिस दिन अपने ध्येय पर पहुँच जाएगा, उस दिन मैं तुम सब लोगों से अलग हो जाऊँगा।"

छन्दा असीम के सन्निकट गई। उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा, "तुमने अपनी विधवा बहिन के प्रेम पर अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। इतना बड़ा त्याग कोई भी भाई नहीं कर सकता। किन्तु तुम अब भी तरुण लगते हो। गृहस्थी बसालो। स्त्री मनुष्य की लक्ष्मी होती है। बहिन फिर भी परायी होती है।"

"इसका तात्पर्य यह है कि तुम मुझे छोड़कर चली जाओगी।"

"ना, ना, मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी। तुम मेरे भाई हो, बन्धु हो, आत्मा के प्रकाश हो।"

असीम का स्वर रुद्ध हो गया, "आजकल मुझे सम्पूर्ण रात्रि निद्रा नहीं आती। मैं अपनी छाया के पीछे झपटता रहता हूँ। मुझे अपनी छाया से भय लगता है।"

प्रसन्न ने कहा, "माँ, मैं सोता हूँ, सवेरे जल्दी जागना है। गाड़ी किसी की प्रतीक्षा नहीं करेगी।"

"जाओ-जाओ, तुम सो जाओ।" प्रसन्न चला गया। उसके जाने के बाद थोड़े क्षणों के लिए निस्तब्धता छाई रही। छन्दा अपने नाखुन को मुँह में डाल कर काटती हुई बोली, "असीम, मेरी एक इच्छा है कि तुम विवाह

करलो ।"

"क्यों ?"

"आखिर किसी की कृपा की पराकष्ठा होती है। तुम मेरे लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दो। ना-ना, असीम दा, तुम अब नई दुल्हिन ले आओ। अब मैं प्रसन्न को संभाल लूँगी।"

असीम कलिया आच्छन्न गगन को देखकर बोला, "छन्दा, मैं तुम्हारे सिवाय किसी को स्नेह नहीं दे सकता। तुम से स्नेह वंचित होकर मैं नहीं जी सकता !"

अन्धेरा था। छन्दा असीम का विवर्ण मुख नहीं देख सकी। उसके स्वर से उसने अनुमान लगाया कि असीम ने किसी को प्रेम अवश्य किया है पर वह उसमें सफल नहीं हो सका।

उस अपरिसीम नैराश्य के कारण वह पलायनवादी हो गया है। उसकी प्रवृत्ति, उसकी वासना सिमट कर छन्दा में एकत्रित हो गई।

छन्दा काँप उठी। असीम अपनी प्रतिछाया से अगाध-अपूर्व प्रेम करता है। कहीं वह छाया मैं ही न हूँ ? मैं, छन्दा, छाया ! ना-ना... वह अप्राप्य है !" छन्दा के चक्षुओं की मयार्त दृष्टि तिमिर में लोप होकर शांत हो गई। अपने आप को उत्कंठित स्वर में पूछा—यह सत्य है, निष्ठुर-निर्मम सत्य, अप्राप्य की प्राप्ति ! सामाजिक अमान्य वस्तु की कामना ! छिः,छिः,छिः....यह आदिमतम मनुष्य की पाशविक इच्छा है। मन का सीमाहीन अत्यन्त काला आवरण है।

वह निष्ठुरतम यंत्रणा से विभ्रान्त सी चीखी, "वह छाया कौन है ? मैं उस छाया को प्राप्त करूँगी।"

वह निशीथ पहर की भाँति प्रगाढ़ शांति से बोला, "वह छाया मेरी अपनी है। अपनी छाया सदा अप्राप्य होती है।"

"मुझे अधिक यातना मत दो, असीम !"

"मैं किसी को जरा भी कष्ट नहीं देता।" उसने अपने अवनमित सिर को हिलाकर कहा, "मैं अपने आपको पीड़ा देकर दूसरों को सुख देता हूँ।""""""यदि तुम समझती हो कि मैंने तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट दिया है तो तुम्हें स्पष्ट करना चाहिए। मैं उसका प्रायश्चित करूँगा।" इतना कहकर वह उठ गया। अपने कमरे में जाकर बिस्तरे पर निढाल हो गया।

उस रात छन्दा सो नहीं सकी। उसे बार-बार असीम के मुख पर छाई अमिट अवसन्नता याद आने लगी। असीम आज से नहीं वर्षों से उसे प्यार करता है। तभी वह उसकी आज्ञा का पालन करता है, प्रसन्न के लिए अपना सर्वस्व त्याग करता है, तभी वह मुझे अपने ही क्षेत्र में सीमित रखता है। वह नहीं चाहता है कि कोई भी मुझसे मिले-जुले। छिः-छिः""वह कितना कुटिल और पतित है ? फिर""! हाँ मैं अनु से पूछूँगी कि इसमें सत्य क्या है ?""अनु ! अनु ने भी ""! अखंड कौमार्यव्रत पालन करने वाली अनु ! """

भोर हो गया।

असीम उसी यंत्र की भाँति कार्य में संलग्न था आशुतोष मुँह में सिगरेट दबाए आ गया था। प्रसन्न की पीठ थपथपा कर कहा, "क्यों बंधु, आज ही जा रहे हो ?"

"हाँ, परीक्षा में उत्तीर्ण होना है।"

"बन्धु, नाराज मत होना, मैं भी स्टेशन चलता किन्तु मुझे एक मिनिस्टर के यहाँ जाना है।"

"या घर के नौकर पर यह रौब डाल कर होटल में खाना खाने जाना है।"

आशुतोष ने इसका प्रत्युत्तर नहीं दिया। वह असीम के समीप आकर बोला, "असीम, प्रसन्न के जाने का बड़ा संताप है ?"

"जी ।" देखो आशुतोष, तुम मुझसे सम्बन्ध बढ़ाने का प्रयास मत करो ! यह सत्यहीन प्रभाव तुम अपने नौकर पर डाला करो या उस सूखी हड्डियों वाली अपनी प्रेमिका पर !"

छन्दा ने तीखी दृष्टि से असीम को देखा। डाँट भरे स्वर में बोली, "यह कैसी अभद्रता है ?"

आशुतोष उदास स्वर में बोला, "छन्दा देवी, आप इनका विवाह करा दीजिए, सब ठीक हो जाएगा !"

असीम आपे से बाहर होता हुआ बोला, "छन्दा, इसे कहो कि वह यहाँ से चला जाए अन्यथा मुझे अन्य कदम उठाना पड़ेगा। मुझे इससे घृणा है, आन्तरिक घृणा, विपुल विद्वेष,··· इसे कहो कि वह यहाँ से चला जाए,······ और भविष्य में मेरे घर में आए नहीं।"

आशुतोष चला गया। छन्दा तड़पकर रो पड़ी। प्रसन्न माँ को रोते देख कर गुस्से में भर गया। गोपन मन में छिपी ममता की अफस्त्र धारा फूट पड़ी। वह आगे बढ़ा। बोला, "मामा, तुम मेरी माँ को कुछ नहीं कह सकते, यह अभद्रता कोई भी शिष्ट नारी नहीं सह सकती। उपकार करते हो तो मत करो पर मेरी माँ को कुछ भी न कहो। मैं उसके आकुल अन्तर की व्यथा को नहीं सह सकता। मैं सबको त्याग दूँगा। शिक्षा, उन्नति और विकास से बढ़कर मैं माँ का सम्मान समझता हूँ। आप माँ का सम्मान नहीं कर सकते तो मैं बंगलोर नहीं जा सकता।"

"अरे, अरे, यह क्या कह रहे हो बेटा, मामा के मुँह लगते हो, उस मामा के जिसने पिता तुल्य कर्त्तव्य निभाया है।"···क्षमा माँगो, मैं कहती हूँ कि तुम इसे क्षमा कर दो।" वह असीम की ओर उन्मुख हुई।

प्रसन्न ने मामा के चरण-स्पर्श किए। असीम ने उसे अपनी वक्ष से लगा लिया।

गाड़ी रवाना होते ही प्रसन्न के मुख से एक बार हठात् निकल पड़ा, "मामा, मुझे क्षमा कर दो।"

असीम ने उसका चुम्बन ले लिया।

"मौसी, तुम आशीर्वाद नहीं दोगी मुझे ?" वह नमिता के चरणों में झुक गया।

नमिता ने उत्तर में अश्रु की दो बूँद बहा दी। प्रसन्न ने अपने हाथ से उन बूँदों को पोंछा। कितना शीतल सुख था उस स्पर्श में। बोला, "मौसी, तुम्हें भगवान जरूर मेरे जैसा बच्चा देंगा।"

"भगवान ने मुझे तुम्हें दे ही दिया है ?"

इंजिन ने सीटी दी। प्रसन्न लपक कर चढ़ गया। नमिता और छन्दा अपलक अश्रु भरी मुस्कान से देखती रहीं, देखती रहीं, प्रसन्न को जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया।

अनु ने दीर्घ स्वर में कहा, "अब चलिए भी, गाड़ी चली गई है।"

वहाँ से तीनों एक रेस्त्राँ में गईं। वहाँ से चाय पीकर नमिता उन दोनों को छोड़ कर चली गई। उसके जाते ही अनु ने कहा, "नमिता, मुझ से बड़ी घृणा करती है। उसे मुझ से भय है किन्तु एक यही ऐसी मित्र थी जिसने मुझे पराजित कर दिया। मुझे इसका कार्य विवश होकर करना पड़ता है।"

छन्दा ने चाय का अन्तिम घूँट लेकर कहा, "बड़ी सीधी और गंभीर है। मैंने इसे हँसते हुए कभी नहीं देखा।"

"और मैंने इसे सदा चहकते हुए पाया था। जीवन में कभी ऐसी दुर्घटनाएँ घट जाती हैं जो प्राणी में एकदम परिवर्तन ला देती हैं। नमिता के साथ भी जीवन की बड़ी ट्रेजडी हो चुकी है।"

"प्रसन्न के प्रति इसका अत्यन्त मोह है।"

"मनुष्य प्यार और घृणा द्वारा अपने जीवन के खोखले भागों को पूरा करता है। नमिता की प्रसन्न के प्रति इतनी अनुरक्ति उसके पुत्रहीन होने के कारण है।"

"लेकिन आप भी नारी हैं ?"

"उस संज्ञा से विलग मेरा कोई अस्तित्व नहीं है। मैं नारी हूँ किन्तु मुझ में नारी की एक भी सहज प्रवृति और गुण नहीं। न मुझे बीज धारण करने के प्रति आकर्षण है और न पुरुष के प्रति ही ! वैसे मुझे पुरुश का आलिंगन मृत्यु-सूचक ब्रह्मपाश से कम भयानक नहीं लगता।"' एक बार ज्योतिर्मय ने मुझे अपने आलिंगन में आबद्ध करके प्रेम करना चाहा। सच कहती हूँ छन्दा दीदी, मैं उसके रक्त की प्यासी हो गई।'''' आज मुझे नमिता ने एकांत में बताया कि उसे लकवा हो गया है।''' ' प्रकृति-प्रकोप भी सजग न्यायाधीश की भाँति है। अब मैं उससे मिलने अवश्य जाऊँगी। परवर्ती जीवन के सुखद क्षणों की स्मृति दिला कर मैं उसे पीड़ित नहीं करूँगी। मैं उसे देखूँगी और कहूँगी कि तुम्हें एक सुन्दर युवती ने याद किया है।"

"क्या मनुष्य आजन्म ब्रह्मचारी रह सकता है ?" छन्दा ने हठात् पूछा, "और वह अपनी छाया पर कैसे आसक्त हो सकता है ?"

ब्रह्मचारी रह सकता है। मैं ब्रह्मचारिणी हूँ। छोटी आयु में मुझे याद है कि दो वृद्ध सज्जनों ने मुझ पर बलात्कार करना चाहा। तब से मुझे उस पुरुष से तीव्र घृणा है जो मुझे आलिंगन या इसी प्रकार की गति में आबद्ध करना चाहे। वे वृद्ध सज्जन बड़े नीच प्रकृति के थे। कार्तिक माह के कामुक कुत्ते। उन्होंने मुझ पर प्रसाद देने के बहाने बलात्कार करना चाहा। जीवन-जगत के मिथ्या भक्तजन क्षुद्धित पाषाण निष्ठुर प्राणियों की तरह वसुन्धरा के कोमल कणों को नष्ट भ्रष्ट करने को बेचैन रहते हैं, यह मैं उस दिन उस पावन-मन्दिर के पुजारियों के रूप में दो प्राणियों को देख पाई। यह समाज इसे नग्नता और अग्राह्य कह कर नजर अन्दाज भले ही कर दे किन्तु यह सत्य है कि ये मन्दिरों के पाषाण-प्रभु पावन अवश्य हैं पर मठाधीश नहीं। ये मठाधीश उन बगुले-भक्तों की भाँति है जो सभा या धार्मिक-सम्मेलनों में संसार के समस्त प्राणियों को बेटा-बेटियों की संज्ञा से सम्बोधित करते हैं। और बाद में वे छद्म रूप में कई पुत्रों के पिता हो जाते हैं। मुझे जीवन में स्त्री-पुरुष के

सम्बन्ध के प्रति कभी जिज्ञासा नहीं रही। मैं इस क्रिया के प्रति गहरी उदासीन रही। अब मुझे आभास होता है कि मैं इन सब चर्चाओं के योग्य भी नहीं रही।·· पुरुष के प्रताप को सहन करने की क्षमता भी मुझमें नहीं है।'' अनु कुछ देर रूकी। बोली, "मेरी माँ को सभी मोहल्ले वाले प्यार करते थे क्योंकि वह बंगालिन-विजातीय होने पर भी सब की सेवा करती थी। मेरा बाप मारवाड़ी था। मेरी माँ का कहना था कि वह मुझे बहुत प्यार करता था। किन्तु उन पुजारियों के कारण माँ को विधवा हो जाने के बाद अपना ससुराल 'बीकनेर' छोड़ना पड़ा। वह पुनः कलकत्ता आ गई। रक्त-मिश्रण ने मुझ में अपूर्व संस्कृतियों का सामंजस्य ला दिया। माँ के लाड ने मुझे मुक्त और उच्छृंखल बना दिया। पुरुष संसर्ग के प्रति मैं सदा आतंकित थी। माँ के मरते ही मुझ में कुछ दुर्गुण आ गए और धीरे-धीरे मैं इतनी थक गई कि दिल्ली में आकर बस गई। इन बालकों के साथ मैंने अपना तादात्य किया। अब मैं धीरे-धीरे अपने प्रति भी उदासीन रहती हूँ। खैर, इसकी चिंता भी व्यर्थ है। सूरज अस्त-मजदूर मस्त! मुझे अब एकदम मस्त रहना चाहिए।"

अनु सदा की भाँति जो न कहना चाहिए, वह कह गई। छन्दा कौतुकपूर्ण दृष्टि से उसे देखती रही।

"आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया?"

"ओह, मैं सदा बिना सोचे बोलती रहती हूँ।"····हाँ, पुरुष ब्रह्मचारी रह सकता है। वह अपनी छाया को प्यार करता है। आज के वैज्ञानिक युग में 'छाया' की बात अधिक विश्वस्तनीय नहीं। यह हो सकता है कि अपनी छाया को वह अपनी सबसे निकटतम वस्तु का प्रतीक मानता हो। छाया कभी प्राप्त नहीं होती, तब उस व्यक्ति को उसके पीछे उन्मादित होकर मरना पड़ता है।"

"असीम के बारे में आपका क्या विचार है?" छन्दा ने भयभीत दृष्टि से पूछा।

"वह कोई ब्रह्मचारी नहीं है। उसके एक मित्र प्रेमेन्द्र को मैं जानती हूँ। वह कहता था कि वह एक ऐसी युवती को प्रेम करता है जो उसके लिए

अप्राप्य है। वह उसके अभाव में जरूर मानसिक रूप से संभोग का काल्पनिक सुख लूटता होगा। आप देखिएगा, ऐसे पुरुष रात को सो नहीं सकते।"

इसके आगे छन्दा ने कुछ अधिक जानना नहीं चाहा। वह लौट आई। असीम दूकान को चला गया था।

× × ×

६



अनु ज्योतिर्मय के घर की ओर चली। दरवाजे पर ही उसे नमिता मिल गई। उसे देखते ही अनु ने वक्र-दृष्टि से पूछा, "तुम यहाँ क्या करने आई हो ?"

वह क्षीण, अतिक्षीण स्वर में बोली, "मैं ज्योतिर्मय से मिलने आई थी। उसकी हालत बड़ी चिंताजनक है। उसे ममता और स्नेह की आवश्यकता है।"

"आज मैं इस तथ्य से परिचित हो गई हूँ जो व्यक्ति जिससे अधिक घृणा करता है, वह उसको सबसे अधिक प्रेम करता है।··· बेचारे विभूति बाबू ने तुम जैसी युवती को अपनाकर अच्छा नहीं किया। उनसे छल करके तुम अपने

शेष जीवन को क्यों नष्ट कर रही हो। इसी ज्योतिर्मय ने बार-बार तुम्हारी नारी को सताया है।"

नमिता चिढ़कर बोली, "मैं 'अनु' नहीं हो सकती। तुम्हें क्या पता कि मैंने ज्योतिर्मय के साथ जीवन के वे अद्भुत क्षण व्यतीत किए हैं, जिनकी कोई समता नहीं हो सकती। वे विलक्षण-विचित्र क्षण! अनु, मैं मनुष्य हूँ, क्या मनुष्यता के नाते मुझे उसे करुणा देने का अधिकार नहीं है?"

"नहीं, करुणा उसे दी जाती है जिसने करुणा का मूल्य जाना हो। यदि तुम यहाँ आना बन्द नहीं करोगी तो मैं विभूति बाबू को तुम्हारी खबर कर दूँगी। मुझे ज्योतिर्मय से घृणा है। मैं चाहती हूँ कि वह नारकीय मंत्रणा के साथ मृत्यु-शय्या पर अपने कर्मों को याद करे।"

नमिता आगे बढ़ती हुई बोली, "मुझ पर दया करो, मुझे यहाँ आने से मत रोको। मैं ज्योतिर्मय को करुणा दिए बिना मर जाऊँगी।" उसका गला भर आया। नेत्र सजल हो गए। अनु का हाथ उसने अपने हाथ में ले लिया, "देखो अनु उसने तीन रोज से अन्न का दाना नहीं खाया। कह रहा था कि उसे रोटियाँ गिन कर दी जाती हैं। हालांकि यह सत्य नहीं है फिर भी ज्योतिर्मय अपने घर वालों के प्रति अत्यन्त क्रूर और घृणा से भर गया है। उसे यहाँ का एक भी व्यक्ति प्रिय नहीं लगता।"

"उसके जीवन के दिन समाप्त हो गए हैं। उसे मरने दो नमिता, मृत्यु के मुख पर पहुँच कर उसे अपना एक पल भी स्नेहपूर्ण व्यतीत मत करने दो। तुम्हारी सहानुभूति उसे उन क्षणों के सुख को भुला देगी जो अभी उसके मानस-पटल से घड़ी भर के लिए भी नहीं हटते। बुरे का बुरा परिणाम निकलना ही चाहिए तभी धरा पर स्वर्ग और धरा पर नरक की उक्ति सिद्ध होगी।"

नमिता चली गइ। जाते-जाते कह गई, "तुम मेरी जीवन-शत्रु हो।"

अनु विचित्र हँसी हँस पड़ी, "नारी बड़ी दुर्बल है।

नमिता के जाते ही अनु ज्योतिर्मय के कमरे में गई। एक बार उसे देख कर वह विस्मित हो गई। उसके तन की विकृति देख कर वह स्तब्ध एवं विचार-शून्य हो गई।

"तुम ?" ज्योतिर्मय ने तनिक घिसक कर कहा।

"तुम चल नहीं सकते ?"

"चल सकता हूँ। तुम मेरे उठने-बैठने और चलने-फिरने की गवेषणा करने आई हो।" वह चिड़ कर बोला।

"नहीं ज्योतिर्मय, नमिता ने कहा था कि तुम यहाँ हो इसलिये चली आई। विचार कुछ और था पर स्थिति देख कर सब बदल गया। तुम पर व्यंग-प्रहार उचित नहीं। तुम्हें अब मरना ही है।"

"वह अनु की ओर घिसका। उसका तन काँप उठा। वह अपने राइट हाथ से गले की रस्सी को पकड़ता हुआ चीखा, "मैं नहीं मरूँगा, तुम मरोगी, तुम ! तुम्हें यहाँ किसने आने दिया ?"

"नमिता ने।"

"कौन नमिता !"

"तुम्हारे क्षणिक-जीवन की मधू, तुम्हारे मृतक बच्चे की माँ, तुम्हारे अत्याचार की साक्षात प्रतिमा !"

"यह मिथ्या है।"

"साक्षी स्वरूप अभी मैं जीवित हूँ। बोलो, अभी वह आकर गई या नहीं ?"

"ना, ना, नहीं,·· ओ समर, इसे यहाँ से निकाल दो।"

"मैं स्वयं चली जाती हूँ। अब नमिता···!"

"उसे व्यर्थ में बदनाम करने से तुम्हें क्या मिलेगा ? वह यहाँ कभी नहीं आती।" कभी नहीं आती ज्योतिर्मय जमीन पर सिर पटक कर वेदना से अभिभूत हो गया।

अनु चली आई।

× × ×

७



आशुतोष को असीम ने अर्थ पिशाच और हृदयहीन कहा। छन्दा के अन्तस में अब घृणा जन्म चुकी थी। उसे असीम की त्याग-तपस्या में दुरन्त वासना के सहस्त्र साँपों के दर्शन होने लगे। उसे ऐसा विभ्रान्त जनक भय हो गया था कि कभी रात्रि की बेला असीम साँप बन कर उसे डस जाएगा। वह असीम पर आशुतोष को लेकर बरस पड़ी, "तुम किसी को ऐसा क्यों कहते हो ? वह यहाँ आएगा और जरूर आएगा।"

"वह यहाँ कभी नहीं आ सकता। यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है। अगर तुम मेरा कहना नहीं मानोगी तो मैं प्रसन्न को स्पष्ट कह दूँगा कि वह तुम्हारा बेटा नहीं है।"

छन्दा चुप-अवाक् हो गई।

"इसके बाद क्या होगा ?" उसकी भौंहें उर्ध्वांग की ओर उठ गईं। ललाट पर दो-तीन बल पड़ गए।

तुम्हारे सारे स्वप्न छिन्न-भिन्न हो जाएँगे।"

"इसके बाद ?" उसने तेज-स्वर में पूछा।

असीम चुप रहा।

"छन्दा तेज स्वर में पुन: बोली—इसके बाद यह होगा कि प्रसन्न मुझसे पूछेगा कि मेरी माँ कौन है ? मैं कहूँगी कि गंगा मैया ? इसके बाद भी उसे

विश्वास नहीं हुआ तब कहूँगी कि तुम्हारी माँ यह अभागी छन्दा है। वैधव्य में किसी ने उसके साथ छल कर लिया था। वह छल करके अपने पाप के प्रायश्चित के रूप में गंगा में डूब गया पर मैं ममताहीन नहीं हो सकी। मैंने जिस बीज को धारण किया, उसको फलने-फूलने दिया। क्यों असीम, यह कहानी जीवन में चरम सुखद् के रूप में परिणित नहीं हो सकती ?"

"यह मिथ्या है, सब मिथ्या है।" असीम झुंझलाया।

"तुम कदाचित यह भी नहीं जानते कि यह जगत भी मिथ्या है। उसका कण-कण मिथ्या है। मिथ्या को सत्य के रूप में परिणित करने में कितना काल लगेगा ? फिर आशुतोष मुझे हर तरह की सहायता देने को तैयार है ! वह साक्षी के रूप में रहेगा। इसके बाद मैं तुम से अलग हो जाऊँगी।"

"रहोगी कहाँ ?" असीम ने न चाहते हुए भी पूछ लिया।

"आशुतोष के यहाँ ? जब भाई बहिन का अहित करने को तत्पर होता है तब सम्बलहीन बहिन को प्रत्येक का हाथ थाम लेना चाहिए।" वह दृढ़ता से बोली। उसकी आँखों में घृणा जनित विद्रोह था !

असीम ने अर्थ भरी दृष्टि से कमरे की दीवार को देखा। उन दीवारों में उसने बड़ी-बड़ी निर्दयी रातें व्यतीत की थीं। वह अतृप्ति में संतप्त और उत्तप्त निद्राहीन शय्या पर करवटें बदलता रहता था। इस दीदी के लिए उसने जीवन का सुख जल-अर्घ्य की भाँति त्याग दिया। कभी उसने तनिक भी आभास नहीं दिया कि वह क्यों अन्मन-मौन रहता है !

आज भी छन्दा ने उसे पराजित कर दिया। वह जानता था कि छन्दा नितान्त भोली-भाली, अर्थ-संकटाग्रस्त निसहाय है। किन्तु आज वह जान पाया कि वह अत्यन्त चालाक और चतुर भी है। उसमें आधुनिक युग की युवती की समस्त सावधानियाँ हैं।

वह बड़ी कठिनता से बोला, "मैंने तुम्हें जीवन भर पाला। अपना समस्त सुख तुम पर न्यौछावर किया ?"

"क्या तुम एक वृद्धा वेश्या का अभिनय करना चाहते हो । वेश्या बच्ची का पालन पोषण करती है, उसे बढ़िया से बढ़िया भोजन और सुन्दर से सुन्दर वस्त्र पहनाती है । पर क्यों ? इसलिए, वह यौवन के तोरण-द्वार पर पहुँच कर हाट की वस्तु बन कर अपने नारीत्व को विक्रय करके महान् कष्ट भोगे । मैं कहती हूँ उसका पालन पोषण व्यर्थ है। उसका कर्त्तव्य रक्त रंजित है । वह ममता के पवित्र पद की अधिष्ठात्री नहीं हो सकती । असीम, वह महापापिन और घृणित है ।"

असीम चला गया क्रोध और अपमान से काँपता हुआ ।

छन्दा कुछ काल तक अविचल खड़ी रही और फिर अपने बिस्तरे पर आकर पड़ गई । अप्राप्य, छाया और मैं ? ये तीन शब्द उसके मस्तिष्क में हथोड़े की भाँति प्रहार करने लगे । ··· जघन्य, अनैतिक, भ्रष्ट ! ओह, असीम के अन्तर की आग इतनी भयानक होगी, इसका उसे स्वप्न में भी विश्वास नहीं था । उसके समक्ष अन्धेरा, विषाक्त तिमिर के बादल छा गये । उसकी श्वास-प्रश्वास घुटने लगी ।

एक बार उसने सोचा कि उसे यहाँ से शीघ्र चले जाना चाहिये । वह जायगी, उसने निर्णय किया । निस्सन्देह और अवश्य उसे असीम के मानव के अन्तर के दानव से भय है । उसकी असत्य कालिमा आच्छन्न प्रवृतियों से वह आतंकित है । वह जाएगी, जरूर जाएगी ।

वह कुछ क्षण तक विचारहीन सी पड़ी रही । विचारों के झोंके पल भर के लिए रुके और फिर आरम्भ हो गए 'नहीं, वह नहीं जायगी । उसके जाने के साथ ही असीम के धैर्य का बाँध टूट जाएगा और वह उसका भेद पागल की तरह चीख-चीख कर खोलेगा । प्रसन्न जान जाएगा कि मैं उसकी सगी माँ नहीं हूँ । ममता शांत पड़ जाएगी । रक्त गौरव कुंठित होकर भू-लुंठित हो जाएगा । फिर ?······प्रकृति के व्योम-मंडल में यह प्रश्न गूँज गया ।······वह क्या करे ? उसे घृणा है, घृणा······घृणा !

दिन बीत गया ।

प्रकाश अपने शीर्ण पंखों से प्रतीची की ओर उड़ चला । निखिल व्योम में पक्षियों का मन्द-मन्द कलरव सुनाई पड़ता था । छन्दा अरुचि से भात और सब्जी बनाकर बाहर की ओर चल पड़ी । उसे गन्तव्य का ज्ञान नहीं था । उलझन का जाल उसे तड़पा रहा था ।

अचानक उसे आशुतोष का ध्यान आया । वह चल पड़ी उसकी ओर ।

आशुतोष घर में नहीं था । शकुन्त था ।

छन्दा को नमस्कार करके बोला, "बाबू जी, मिनिस्टर से मिलने के लिए गये हुए हैं, अब आते ही होंगे ।"

"कितनी देर में आ जाएंगे ।"

"यही आधा घन्टे में, आप बैठिए, उन्होंने कहा है कि कोई आए तो उन्हें प्रतीक्षा करने को कहना ।"

छन्दा वहीं पर बैठ गई । वह एक पत्र देखने लगी । उसने क्या पढ़ा और क्या देखा, यह वह कुछ भी न जान पाई ।

तभी टैक्सी रुकी । आशुतोष आया । छन्दा को देख कर सम्मान पूर्वक अभिवादन के साथ बोला, "आज आपने आने का फिर कष्ट कैसे किया ?" उसने अपना टोप मेज पर रखा, "अवश्य असीम ने कुछ अनर्गल अलाप किया होगा ? कहा होगा कि आशुतोष तुमसे प्रेम करता है ।"

छन्दा से किसी प्रकार का प्रोत्साहन न पाकर आशुतोष मूक हो गया । उसके मूक होते ही छन्दा विस्मित स्वर में बोली, "आप कभी छोटे लोगों से भी मिलते हैं ।"

"नहीं, मैं आजकल व्यापार करता हूँ और आज का व्यापार तभी सुचारू रूप से चल सकता है जब आपके हाथ में दो-चार मिनिस्टर्स हों । यह देश प्रजातन्त्र है फिर भी लोग योग्य व्यक्तियों को पार्लियामेंट में नहीं भेज पाते । स्वार्थी और प्रपंची ही अधिकाँश सफल हो जाते हैं । यह स्वार्थ के लिए कई रंग बदलते हैं । सिंह की खाल ओढ़ते हैं, हंस की चाल चलते हैं, बगल में हिन्दी की गीता नहीं, अंग्रेजी का 'पैराडाइज लॉस्ट' रखते हैं । ··तब उन्हें हमारे जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता रहती है ।···कुछ भी हो, बस ये राजनीति

से अनभिज्ञ व्यक्ति कुछ वर्ष और हमारे नेता बने रहें, मैं जीवन की चौसठ निधियाँ एकत्रत कर लूँगा ।"

छन्दा को इन बातों में जरा भी दिलचस्पी नहीं थी । बात को बदल कर बोली, "अब आपका क्या कार्यक्रम है ?"

"मेरा, कुछ नहीं ।" वह हाथ को विचित्र ढंग से हिलाकर बोला, आज मैं फ्री हूँ, बिलकुल, कहिए, आपका कुछ काम.......?"

"इन्डिया गेट जाने का विचार कर रही हूँ । असीम को बहुत काम है । अकेले मैं जाना नहीं चाहती ।"

"फिर मैं अभी तैयार होकर आया ।" वह चुटकी बजा कर चला गया ।

छन्दा सोचने लगी मुझे सुख नहीं, संतोष नहीं । यह नारी जीवन भी क्या है ? मैं अर्थ के संकट से मुक्त होने के लिए असीम के घर आई । कौन दो रोटियों के लिए जीवन की विभीषिका से संघर्ष करें और यह असीम छिः ... कैसा युग, कैसे मानुस और कैसे सम्बन्ध ? छिः छिः ... !

वह पुनः घृणामयी हो गई ।

प्रसन्न और वह बुढ़िया आज उसे एक साथ याद हो आई । प्रसन्न ने एक दिन बातों ही बातों मे कहा था कि—मैं गांधी बनूँगा माँ, मुझे हिंसा पसंद नही । मेरी कामना होगी—युद्ध का निनाद करने वाले राष्ट्रों का हृदय परिवर्तन हो जाए और वे युद्ध के समस्त कारखाने बन्द करके फूल से महकते बच्चों के लिए खिलौना बनाने लगें । ये खिलौने उन बच्चों के लिए प्रेम और बन्धुत्व के प्रतीक होंगे।.......छन्दा अपने बेटे की बात पर मुग्ध हो गई थी । उसके मन में बिजली की भाँति एक विचार कौंधा था—यदि ये आवारा और अनाथ बच्चे इसी प्रकार ममता से परिपूर्ण कर दिये जाएं तो देश में गांधी-नेहरू का अभाव भी नहीं रहेगा ।

थोड़ी देर तक छन्दा के सम्मुख सड़कों के सहस्त्र शिशु घूमते रहे । वह अपने भावानुकूल कल्पना करके सुख-संचय कर रही थी—"मैं इन समस्त शिशुओं को अपने पास रखूँगी, पढ़ाऊंगी और उन्हें महान बनाऊँगी ....।

प्याला फूटा, ऐसी ध्वनि आई ।

अर्थ का पिशाच उसके सम्मुख विराट-रूप में खड़ा हो गया। एक बच्चे के पालन-पोषण में उसे कितना व्यय हुआ? कल्पना मात्र से वह ठंडी हो गई। उसने अपने हाथों से उसे अपनी आँखों को मला।..........वह बुढ़िया जिसकी सारी सम्पति उसके सम्बन्धी हड़प गए थे कितने मर्मान्तिक अभाव में मरी? उफ! एक बार उसका मिट्टी का बर्तन खंडित हो गया था, तीन दिन तक वह जल को हाथों से पीती रही। तब एक दिन उसने एक योगी से कहा, "बाबा तुम बड़े नेक दिल हो, इन्सान से भगवान बनने जा रहे हो, क्या तुम मुझे एक मिट्टी का बर्तन लाकर नहीं दे सकते? मैं तीन दिन से इन इन्सानों के रहम को जगा रही हूँ। हाय, यह कैसा जमाना आ गया है, आदमी आदमी के दुख को नहीं पहचानता है। उसकी मजबूरी को नहीं जानता। जिस्म को बेचने वाली एक जवान औरत से मैंने कहा–तुम हर रात शृंगार करके जाती हो और आधी रात को लौटती हो, जब तुम जाती हो तब तुम बड़ी उदास और मयूस रहती हो और आती हो तब तुम्हारे होठों पर विचित्र खिलखिलाहट होती हैं खुशी होती है। क्या तुम्हें उन शांत पलों में मेरा सिसकना सुनाई नहीं पड़ता? वह मुँह बिचका कर चली गई। उसने मुझे उपदेश दिया, जहाँ खैरात मिलती है वहाँ चली जाओ। अब तुम मुझे एक बर्तन...! योगी बोला-माँगने वालों से क्या माँगती है, माई?" वह नारायण-नारायण कह कर चला गया।

दूसरे दिन छन्दा ने उसे बर्तन ला दिया। बुढ़िया ने आशीर्वाद दिया, "तुम्हें कभी दुख न हो, तुम्हारा बेटा राजा हो।"

और आज असीम ने उसके स्वपनों को खंडित कर दिया है। उसकी हृदय-वसुधा में भूचाल ला दिया। वह स्नायुविक दुर्बलता से खिन्न हो गई। उसने अपने तमाम अंग ढीले कर दिये।

आशुतोष ने उसे शांत-स्वप्न से जगाया।

"चलिए, छन्दा देवी।"

उस दिन से छन्दा ने अपने समस्त ढाँचों को बदल दिया। वह संध्या बेला आशुतोष के साथ घूमने जाती थी। आशुतोष के साथ वह गूंगी सदृश रहती थी। आशुतोष उसे यथेष्ट रूप से प्रभावित करने की चेष्टा करता था। उसे

अपने व्यापार के बारे में रोचक कहानियाँ सुनाया करता था। कहा करता था-"नारी नर की अच्छी मित्र बन जाए, जीवन सरल हो जाएगा।"

छन्दा स्वीकारोक्ति देती।

सुबह-सुबह वह भोजन बना कर चली आती। असीम से वह नहीं के बराबर बोला करती थी। बहुत कम मिलती जुलती थी।

× × ×

८



विभूति बाबू ने हौले से पुकारा, "नमिता बहू मैं दूकान जा रहा हूँ। आज मैं थोड़ी देर से आऊँगा।"

"क्यों ?"

"कचहरी जाना है, इन्कम टैक्स की तारीख आ रही है। यह देश भी कैसा विचित्र ? हर वस्तु पर टैक्स! लोग धीरे-धीरे अपनी आजीविका के साधन बन्द कर देंगे।" बड़बड़ाते हुए विभूति बाबू चले गए।

कमरे के भीतर नमिता और अनु थी।

अनु ज्योतिर्मय के बारे में कह रही थी, "उसकी दशा दयनीय है फिर भी उस पर करुणा करना यांत्रिक युग की दोगली सन्तान के ध्येय की हत्या करना

होगा। कोई मरता है, उसे मरने देना चाहिये। जिस प्रकार हम मछली को जलहीन करके उसके तड़पने में अच्छे भोजन का स्वप्न देखते हैं, हमारी जिह्वा पर स्वाद की आभूतियाँ अठखेलियाँ करने लगती हैं, मुँह में पानी भर आता है, उसी प्रकार मुझे ज्योतिर्मय की दशा देखकर दुख के साथ मेरे अन्तर के पशु को अनुपम शांति मिलती है।"

नमिता ने अनु की दृष्टि में झांकती कठोरता को भाँप लिया। वह विनीत स्वर में बोली, "ज्योतिर्मय मेरे प्रेम के लिए बहुत घातक सिद्ध हुआ, मैं उसे घृणा भी करती हूँ, (ऐसा वह प्रायः कहा ही करती है) वह स्वार्थी-घमण्डी मेरे लिए सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुआ, फिर भी मैं चाहती हूँ कि तुम उसे पीड़ा न पहुँचाओ।"

वह अतीत के क्षणों की परिक्रमा में लग गई, "उस दिन ज्योतिर्मय के यहाँ तुम्हें देखकर मैं भय से आंकित हो गई। तुम्हारे स्वभाव से मैं परिचित हूँ। मैंने समझा कि तुम आकर विभूति बाबू को सब कुछ कह दोगी। इसी भय की कल्पना-परिकल्पना में मेरी स्थिति बड़ी वेदनामय हो गई। भय से मुझे ज्वर आ गया। उत्ताप के बढ़ने के साथ विभूति बाबू डाक्टर को बुलाकर लाए। उन्होंने कहा-हृदय दुर्बल है। आराम चाहिए आराम! उस दिन से निरन्तर आराम कर रही हूँ। दोपहर को छन्दा दीदी आ जाती है। प्रसन्न के बचपन की दो चार मधु-प्यारी घटनाएं सुना दिया करती है। परन्तु अनु मैं नहीं जाऊँगी। मेरी आत्मा कह रही है कि तुम्हारे जीवन का अब शेष आए-गा। जीवन का शेष। मृत्यु।.......इस शेष क्षणों में भी क्या तुम मुझ पर दया नहीं कर सकती?"

"मैं ज्योतिर्मय को कुछ नहीं कहूँगी, बस।" अनु ने रुखे स्वर में कहा, "तुम्हारे समक्ष मैं कमजोर हो जाती हूँ। जो सोचती हूँ, वह कर नहीं सकती। आत्मा रोकती रहती है।"

"एक और प्रार्थना है?"

"वह क्या?"

"एक बार मैं ज्योतिर्मय से मिलना चाहती हूँ।" उसका स्वर साँस की तरह मद्धम था, "अन्तिम बार। अब मैं नहीं जाऊँगी दीदी नहीं जाऊँगी।"

अनु ने उसे ढाढस बधाया, "तुम नहीं मरोगी, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है ?" तुम विभूति बाबू के साथ अपने जीवन को सुखमय बनाने की चेष्टा करो। पतित नारी सदा पतित नहीं रहती। प्राश्चित के पश्चात वह पुनः पवित्र हो जाती है। अपने मन से अब ज्योतिर्मय का ध्यान हटा दो। तुम क्यों उसके पास जाने की चेष्टा करती हो, जो तुम्हें अपने समक्ष देखना नहीं चाहता।"

"मैं मरूँगी। मेरी इच्छा शक्ति मृत्यु की जबरदस्त कामना कर रही है।.... देखो अनु मुझे एक बार उसके पास ले चलो। मैं एक बार उसे हृदय से प्यार करके उसकी पीड़ा को भूला देना चाहती हूँ। तुम्हीं ने कहा था कि नारी स्पर्श से भ्रष्ट नहीं होती।" उसका स्वर नेत्रों के आँसूओं के साथ भारी हो गया। उसने अपने दोनों हाथों से अनु का हाथ मजबूती से पकड़ लिया।

अनु उठ खड़ी हुई, "यदि तुम अपना जीवन को नरक बनाना चाहती हो तो मैं नहीं रोकती। इस बार यदि गिर जाओगी, फिर नहीं संभलोगी। आदमी को सबसे पहले औरत की पवित्रता चाहिए।"

अनु चली गई। नमिता रोते रोते थक गई अचानक उसे क्या सूझा कि वह अपने हाथों को देखने लगी। उसे अपने हाथ पीले-पीले लगे जैसे लहू स्वयं ही उसे सूचना दिये बिना ही सूख गया है। वह मन ही मन बोली-वह मरेगी, अवश्य ही मरेगी......वह अब जीवित नहीं रह सकती,.. उसका खून सूख गया है, उसका तन पीला हो गया है, उसकी आँखें धँस गई हैं, उसकी कोटर-शायिनी आँखों में मृत्यु की भयानक छाया नाचा करती है। कोई हौले हौले उसके कानों में गाता है-मृत्यु गीत ! महाप्रयाण संगीत ! जाग, मृत्यु तुम्हारे द्वार पर खड़ी प्रतिक्षा कर रही है।

उसने दर्पण में अपने आप को देखा। देखती रही-कुछ क्षण।.......भ्रांति का स्वप्न टूटा। कहाँ है मृत्यु ? कौन गा रहा है-मृत्यु-राग। भ्रम, केवल भ्रम।

उसे याद आया। कल मधु-रात्रि के नीरव क्षणों विभूति बाबू ने उसकी कोमलअलकों को सहला कर कहा था, "इस बार तुम्हारे स्वस्थ होते ही, हम तीर्थ करने चलेंगे। वहाँ तुम्हारी इच्छा अर्चना-वन्दना में लग जाएगी। मन को शांति मिलेगी। प्रभु के दर्शन से यात्री युग युग के संताप को भूल जाता है। अविस्मृत अवसाद घड़यालों और शंखों के घोष में लोप हो जाता है।""तुम नीरोग हो जाओ। निदान है-मन की शाँति। डाक्टर का कहनाहै तुम चिंता न करो। यह चिंता तुम्हें जीते जी जला देगी, नमिता बहू।

नमिता ने विभूति बाबू के हाथ को अपने हाथ में लिया। मन के पाप के पंख उड़ चले।

ज्योतिर्मय से नई नई प्रीत हुई थी। एक रात इसी प्रकार ज्योतिर्मय नमिता को गोद में लिये भावी जीवन के सुखद स्वप्नों की योजना बना रहा था। उसने उस दिन नमिता को विलायत ले चलने को कहा था। वहाँ के मुक्त वातावरण में वह नमिता को अत्यधिक आधुनिक फ्रेंच-लेडी बनाएगा। वह उसे बिलकुल पाश्चात्य-सभ्यता के सांचे में डालेगा ताकि वह सभी की दृष्टि की आकर्षता-बिंदु हो। नमिता कल्पना करती थी- वह चाँद तारों के आकाश में उड़ रही है। ज्योतिर्मय उसे अलिंगन में आबद्ध किये दूर दूरान्तर की यात्रा पर ले जा रहा है। स्वर्ग, सातों स्वर्ग........।

विभूति बाबू ने उसके ध्यान को भंग कर दिया था।

"बस, इसी प्रकार तुम्हें शांत रहना चाहिए। शीघ्र ही तुम्हें आरोग लाभ होगा।"

उसने देखा जीवन से श्रोत यह ज्योतिर्मय कौन है? इसमें न वह सौन्दर्य है और न वह चांचल्य! ये निष्प्राण सी आँखें""वे बड़ी बड़ी आँखें जिनमें प्रत्येक को प्रभावित करने की शक्ति थी।""यह विभूति कौन है? वह उसे भोली दृष्टि से देखती रही।.......वह क्यों नहीं यहां से भाग जाती? ये मिथ्या बन्धन और यह मिथ्या-लोक लज्जा सब व्यर्थ है।.........."सब व्यर्थ है।

"क्या देख रही हो, नमिता बहू?" स्नेह पूरित स्वर में नमिता के कानों में पड़ा।

"आप हैं स्वामी, ओह, मैं डर गई थी। मुझे ऐसा लगा कि आप की जगह कोई और आ गया है ?"

सारी रात विभूति बाबू ने आँखों में गुजार दी। नमिता निद्रा की गोली ले कर सो गई।

"नमिता......नमिता।" बाहर से धीमी ध्वनि आई।

"कोई पुकार रहा है।......कौन है ?......भीतर आ जाओ,....ओह छन्दा दीदी,....... ! ...छन्दा दीदी, अब मैं मरूँगी, मेरी आत्मा कहती है कि अब मैं जीवित नहीं रह सकती।"

पागल हो गई हो, नमिता बहू, मन को धैर्य दो, माँ काली को स्मरण किया करो। सब मंगल होगा,....सब ठीक होगा।"

लेकिन नमिता का धैर्य नहीं ! लगता है, उसके अन्तर में भीषण ज्वाला-मुखी जल रहा है। विस्फोट के लिए आतुर है।

"छन्दा दीदी वह दवा मुझे दे दो।" दवा लेकर नमिता कुछ दूर तक अवसन्न सी पड़ी रही। अतीत के प्रबल, प्रभाव धीरे धीरे कम हो गए।

"तुम बहुत अधीर थी ?" छन्दा ने पूछा।

"प्राणी को अपने पाप सदा पीड़ा पहुँचाते हैं। हम समझते हैं कि हमारे दुष्कर्म मिट जाते हैं पर ऐसा नहीं है। वे हमें सदा कष्ट देते रहते हैं। वे अनुकूल समय पाकर हमारी आत्मा की गहराइयों से उभर कर हमारे रोम रोम को बिंध डालते हैं।.......दीदी, एक बात बताओगी ?"

"हाँ, कहो, क्या बात है ?" उसके स्वर में ममता थी।

"विभूति बाबू, मुझे संदेह भरी वक्र-दृष्टि से क्यों देखते हैं ?" वह बोली, क्या मेरा मुख मलान हो गया है। उस पर पाप की छाया लक्षित होती है।"

"तुम्हें भ्रम है।"

वह थोड़ी देर चुप रही। आवेशजनित भय उसके नेत्रों में दौड़ा।

छन्दा उसे देखकर सोच रही थी-असीम की दशा भी विचित्र है। वह भी हर दम खोया खोया रहता है। आशुतोष का कहना है कि ऐसे व्यक्ति प्रायः

आत्म हत्या करते हैं अथवा उनके जीवन के अप्रत्याशित आशा के बाहर का परिवर्तन होता है। वह आत्म हत्या भी कर लेगा, मुझ दुख नहीं होगा। ऐसे पतित भाई का होना और न होना बराबर है।

नमिता ने पूछा, "चरित्रहीन स्त्री का अंत क्या होता है ?"

यह प्रश्न भी अप्रत्याशित था।

छन्दा अकबका गई। उसे घूरती हुई बोली, "तुम्हें शांत रहना चाहिए, नहीं तो तुम्हारा रोग बढ़ जाएगा।

"तुम ने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया ?" वह अधिकार से बोली।

"जो अब चरित्रहीन पुरुष का होता है।"

"दोनों का एक सा होता है।',

"हाँ यदि वे दोनों नए जीवन में अपने तन्मय की क्षमता नहीं रखते हों, तब स्त्री का अपने नए पति या नए प्रेमी में तन्मय हो जाना और नर का नई पत्नी और नई प्रेयसि में।…… ..लोग विगित को विस्मृत करके नूतन का निर्माण करते हैं।"

"और जो न कर सके ?"

"वे नारकीय यातनाएं भोग कर अपना अंत कर लेते हैं।" वह उपदेशक के स्वर में बोल रही थी।

नमिता ने पुनः एक निद्रा आने की गोली ली।

छन्दा उसकी झपकती हुई आँखों को देख रही थी।

असीम की उद्विग्न और चिन्तित मुद्रा उसके सम्मुख नाच उठी।

× × ×

९



कल रात वह प्रस्तर-प्रतिमा की भाँति आदम कद दर्पण के सम्मुख बैठा रहा। दर्पन में झलकती प्रतिछाया को वह इस भाँति गंभीरता से निहार रहा था जैसे वह अपने सौन्दर्य पर स्वयं मुग्ध हो। कभी कभी वह तरस भरी हंसी हँस देता था। कभी वह एकदम उदास हो जाता था। इसके बाद उसने एक असफल प्रेमी की घृणा भरी दृष्टि से अपने आप को देखा। देखकर उसने अपना मुँह अपनी दोनों हथेलियों में छुपा लिया।

बात कुछ नहीं। कल आशुतोष अपने व्यापार के सिलसिले में बाहर जाना चाहता था। दिल्ली छोड़ने के पूर्व वह असीम की उपस्थिति में छन्दा के पास आया था। उस समय छन्दा भोजन पका रही थी। खटाई देकर वह छोटी मछली तल रही थी। उसकी मजेदार सुगन्ध से सारा घर सुवासित था। आज कल वे दोनों इस घर में रूठे हुए मियाँ-बीबी की भांति रहते थे। न बोलते थे और न हँस कर वार्तालाप ही करते थे। "खाना बन गया, खालो" यह छन्दा कहती थी और 'खाता हूँ, अथवा ठहर कर खाऊँगा।' यह असीम कहता था।

छन्दा प्रयत्न करती थी कि वह असीम के साथ जहाँ तक हो सके कम उठे-बैठे। भय जैसी भावना भी स्वार्थ के कारण एक दूसरे के लिपटी रहती है। दोनों एक-दूसरे को कोरा उतर देना नहीं चाहते थे। न ही दोनों में यह साहस

था कि वे अपने हृदयों की बातों को बैठकर सुलझाले अथवा स्पष्ट कर लें। दोनों के चोर एक मिथ्या आदर्श अहम् में अकड़े हुए थे।

इसी भावना से अनुप्रेरित होकर छन्दा ने कहा, "तुम कब तक लौट आओगे ?"

"यही पाँच-सात दिन में।"

"पहुँचते ही पत्र डालना।"

"निस्सन्देह !"

यह सब अभिनय था—असीम को जलाने के लिए।

असीम वहाँ नहीं रुक सका। वह चला गया किन्तु थोड़ी देर के बाद उसने चोर की भाँति आकर देखा कि उसकी अनुपस्थिति में क्या होता है। आशुतोष कह रहा था—"मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा।" आशुतोष हठात् नीचे आया। असीम की बुद्धि कुछ काम नहीं कर सकी। चोर पकड़ा गया। आशुतोष दुष्टता भरी मुस्कान के साथ बोला, "आप यहाँ खड़े हैं। छिः यह कैसी ट्रेजडी है। बंधु, मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि वह मुझे प्रेम करती है। हमारा व्यापार बहुत पुराना है।

असीम धुआँ-फुआँ होता हुआ आया। जोर से बोला, "यह सब क्या है ? मैं आशुतोष का खून कर दूँगा।"

"खून क्यों कर दोगे, क्या तुम्हारा अपना शासन है ?" वह क्रोध से बोली, "असीम, बहुत हो गया है। अधिक असह्य है। मैं शीघ्र ही प्रसन्न के यहाँ चली जाऊँगी।"

"चली जाओ न ?" वह आँखें फाड़ कर बोला, "मुझे जाने का भय दिखाती हो। ·······मैंने तुम्हारा कोई अहित नहीं किया। तुम्हारे पीछे मैंने जीवन के समस्त सुख छोड़े, विवाह तक नहीं किया।"

"उसने विवाह इसलिए नहीं किया ······।" वह कहती-कहती चुप हो गई और आग्नेय नेत्रों से असीम को देखने लगी। उसके अधर क्रोध से काँप रहे थे। असीम पर आसमान टूट पड़ा हो, ऐसा वह निर्जीव हो गया।

"मैं कुछ और कह दूँगी ? उसे सुनकर समाज, धर्म और पवित्र स्नेह बन्धन सब के सब लज्जा से झुक जाएँगे। अच्छा है, तुम अब मेरे किसी भी कार्य में हस्तक्षेप न किया करो। आज मैं जान पाई हूँ कि मनुष्य किसी पर दया नहीं करता। वह दया माँगने वाले से विवश किया जाता है कि वह करुण बने अथवा वह अपनी करुणा में से स्वार्थ की पूर्ति करता है।

असीम ने कहा, "तुम्हारी समझ में दया नाम की कोई वस्तु नहीं है। सम्बन्ध नाम का कोई बन्धन नहीं है।"

"हां, मैं तो यही कहूँगी कि धिक्कार है, उन पवित्र नामधारी सम्बन्धों को जिनकी आड़ में पाप प्रश्रय पाता है।"

असीम कुछ देर मौन रहा। उसके ललाट पर चार बल पड़ गए। उसने एक बार अपने कुन्तलों को पकड़ा। मन ही मन बोला—जिसने एक स्त्री के पीछे अपने यौवन की एक रात्रि भी शाँति से नहीं बिताई वह स्त्री एक चरित्र-हीन आवारा लड़के के पीछे उसे न कहने योग्य बात भी कहने लगी। वह नीचे चला आया। उसके जाते ही छन्दा घृणा से बिफर पड़ी। उसकी आँखों में सावन-भादों उमड़ आए। इतने बरसे कि कपोलों पर दो रक्तिम धाराएँ बन गईं। वह काली मां के चित्र के आगे फूट-फूट कर रो पड़ी, "उठाले माँ गो, मुझे उठा ले, यह कैसा लोक है, यह कैसा अधर्म है, पापाचार है।.....माँ, अब मुझे जीवन नहीं चाहिए......वह अनु के पास गई। अनु स्कूल से अभी अभी आई ही थी। वह आवेश, क्रोध, पीड़ा और ईर्ष्या में दहक रही थी।

"क्या बात है, छन्दा ?"

"मुझे अपने आप से भय लगता है।......इस सुन्दर गौरवर्ण को आग लगा दो, मुझे कुरूप बना दो।" वह फिर रो पड़ी।

"यह अति नाटकीयता रंगमंच की वस्तु है। मुझ पर ये कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती। कृपया तुम स्पष्ट शब्दों में कहो कि बात क्या है ?" वह क्षण भर रुकी, "आजकल मैं अस्वस्थ रहती हूँ। मेरी निःसीम आकाँक्षाओं का उद्देश्य उसका स्नेह, उसका सत्य सभी कुछ अब निस्तेज हो गया है। मनुष्य

धीरे-धीरे थक जाता है। थक कर चूर होने पर वह टूटने की कामना करता है। मुक्ति का यत्न करता है। आशा है, मेरी स्थिति से परिचित होकर तुम मुझे अधिक कष्ट नहीं दोगी।"

छन्दा उसके समीप बैठ गई। उसने अपने दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ लिया, जैसे उसमें मर्मान्तिक पीड़ा हो रही हो। आँसू उसके चेहरे पर ढुलकते रहे। निमिष भर भी नहीं थम रहे थे।

"तुम क्या कहना चाहती हो?" एक बार अनु ने फिर पूछा।

"एक ऐसा लोक बताओ, जहाँ पाप न हो।"

"दर्शन सम्बन्धी किसी प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे सकती। इतना जानती हूँ कि तुम जिसे पाप कहती हो, वह दूसरे के लिए पाप न हो।" हर व्यक्ति ने पाप की अलग-अगल व्याख्या बना रखी है।

"असीम, मुझे प्यार करता है।"

"कोई आश्चर्य नहीं। शोषित वासना का नग्न रूप इस रूप में प्रकट हो सकता है। हमारे देश में यौन दुरन्त बुभुक्षा की भाँति है। कोई समता और पहचान नहीं—यहाँ के नर-नारी में। मैं सदा उस भूख से अपरिचित रही इसलिए मैं सुखी हूँ। देख कर जो अनुभव किया है, उसका सार यह है—प्राणी किसी के प्रेम में तृप्त होना चाहता है, जब उसकी कोमल बाहुओं में तृप्ति-जनित आनन्द नहीं मिलता है तब वह उससे घृणा करता है। असीम असफल हो गया। तुम्हें यह असामाजिक-कृत्य मान्य नहीं है। क्या असीम ने कोई ऐसी हरकत........?"

"नहीं, वह कहता है कि मैं जिसे प्रेम करता हूँ वह अप्राप्य है, मैं अपनी छाया पर मोहित हूँ।"........यह सब क्या है?"

"तुम्हारा अनुमान गलत भी हो सकता है।......वह किसी और को ही प्रेम करता हो। इतने वर्ष दुर्दान्त वासना को वशीभूत कर लेना सहज कार्य नहीं है। तुम उसे गहराई से जाँचने का प्रयास करो। कभी-कभी हम किसी व्यक्ति के क्रिया-कलापों व प्रतिक्रियाओं को आवेश की दशा में देखते हैं। ऐसी स्थिति में हम अपने मुलाजिम की आत्मा की गहराइयो में पहुँच कर चरम

सत्य से परिचित नहीं हो सकते । बहुत से आदमी प्रेम को प्रगट नहीं करते। वे ऊपर से प्रशाँत सागर की भाँति गम्भीर रहते हैं और उनके अन्त:स्थल में वासना की महा अग्नि जलती है। ऐसे आदमी भी बड़े विचित्र स्वभाव के होते हैं। धीरे-धीरे वे अपने पर नियंत्रण कर लेते हैं। अन्त में वे अपनी वासना की हत्या कर लेते हैं। असीम कुछ ऐसा ही व्यक्ति है। प्रायः बंगाली लोग बड़े भावुक होते हैं। प्रेम उनके जीवन का सबसे प्रिय विषय होता है। प्रेम में जल कर जीवनव्यतीत करना, वे प्रभु का वरदान समझते हैं। वियोग की पीड़ा उनका वास्तविक सुख होता है। मेरी माँ अपने पति के चरणों में सदा अश्रुओं की अंजली दिया करती थी। असीम अपने मानस-लोककी किसी अनुपम छवि को मूक अन्तर का अर्घ्य चढ़ा कर संतोष पाता है और तुमने अपने अभावों का पर्यवेक्षण किए बिना ही अपनी दुर्बलता का ही प्रतिरूप उसमें देख लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। आखिर तुम भी विधवा हो। तुम्हारी नारी भी सुहागिन का शृङ्गार पहन कर तुम्हारी सुसप्त वासनाओं का स्वप्न में मन्थन करती होगी और तुम विवश होकर अपना क्रोध 'पापी-दुराचारी असीम के रूप पर लाँछन लगा कर प्रकट करती हो।''''''छन्दा, शान्ति से इस समस्या पर विचार करके कोई कदम उठाना चाहिये।

अनु इतना कह कर बाहर बरामदे में चली गई। छन्दा पर अनु के भाषण ने प्रभाव डाला। उसे इतना जल्दी धैर्य नहीं खोना चाहिए। वह आज असीम से स्पष्ट शब्दों में अपनी शपथ दिला कर पूछेगी कि तुम किसे प्रेम करते हो? तुम्हारी प्रेम-पात्रा कौन है?

वह तुरन्त वापस आई। घर पर न ताला बन्द था। उसने ताला खोल कर भीतर कदम रखा। असीम के कमरे को खोला। कुछ खाली-खाली लगा। कदाचित् आवेश में वह असीम के कमरे को अत्यन्त भरा पूरा समझती हो। वह अपने कमरे में गई। उसके बिस्तरे पर एक पत्र पड़ा था। उसने खोला। आशंकाओं से उसका अंग अंग काँप उठा। पत्र असीम का था। लम्बा, सुस्पष्ट और सुपाठ्य।

दीदी,

मैं जा रहा हूँ बहुत दूर। तुम चिंता न करना क्योंकि अब मैं तुम्हारे लिए घृणा का पात्र, वासना का कीट और जघन्य अपराधी हूँ।… मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ….इस सत्य का मैं घोष कर सकता हूँ किन्तु उस प्रेम की तुमने इतनी निम्न व्याख्या की, जो मेरे लिए असह्य है। क्या तुम बता सकती हो कि मैंने तुम्हें कभी अमपदित बात भी कही है। मेरा लोक अपना, मेरा अस्तित्व अपना, मेरी इच्छाएँ अपनी, मैं पीड़ाओं और कष्टों के सागर में सदा तैरता रहा। उन लहरों से अपने साँस के तार जोड़ता रहा जो किनारे से टकरा कर लौट आती है। मैं अवश्य किसी ऐसी रूप श्री को चाहता हूँ जो मुझे मिल नहीं सकती। जिसके प्रेम को मैं चाह कर भी सामाजिक रूप नहीं दे सकता था। अज्ञात रूप से मैंने कभी तुम्हें ऐसे वचन कह दिए हों, जिनसे तुम्हें सन्देह हुआ हो, उनके लिए मुझे क्षमा करना।

—असीम

छन्दा वह पत्र लेकर अनु के पास गई।

अनु चिढ़ कर बोली, "कुछ नया रहस्य लेकर आई हो?"

"यह पत्र!"

पत्र पढ़ कर अनु ने कहा, "वह तुम्हें प्रेम करता था। न जाने इतना पावन और हा हा कार भरा जीवन असीम कैसे बीता गया। यदि उसकी जगह कोई और होता तो वह राक्षस बन कर धरती सीता के महान् सत्य व धर्म को निशंक होकर हर लेता। इस आधार से उसका चरित्र भी आज के पूँजीवादी व्यापारिक जगत में महान् उल्लेखनीय है।……तुम कहती हो कि वह आत्म-हत्या करेगा, वह आत्म हत्या नहीं करेगा। आत्महत्या क्षणिक आवेश में नहीं होती। व्यक्ति आत्म-हत्या करने के पूर्व अपनी हत्या के महत्व पर विचार करता है। रात के शून्य पहरों में निस्सीम व्योम के झिलमिलाते तारों पर दृष्टि जमा कर वह अपने अभावों पर विभिन्न कल्पनाएँ करता है। स्वप्न में वह सम्पूर्ण उल्लास के साथ जीवन का उपभोग करता है। उसके बिना उसके परिवार वाले

क्या कष्ट पाएँगे, उसकी वह सूची बनाता रहता है।……तब उसे यदि अपना जीवन सर्वथा निरर्थक लगता है, तब वह किसी घटना के घटित होने पर आवेश में आत्म-हत्या कर लेता है।……असीम की परिस्थिति सर्वथा भिन्न है। उसे यह विश्वास है कि उसके मन का पाप अदृश्य इच्छा की भाँति कभी प्रकट नहीं होगा, इसलिए वह परिणाम की प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाली आत्मग्लानी से अवगत नहीं हुआ। मुझे विश्वास है उसकी भी अनेक असफल प्रेमियों की भाँति उत्तेजना कम हो जाएगी। उसका जोश ठंडा हो जाएगा और वह लौट आएगा। उसके लौटने पर तुम उसे हार्दिक स्नेह देना। वह स्नेह उसके लिए वरदान जैसा सिद्ध होगा।"

छन्दा के चेहरे की चिन्ता-रेखाएँ पूर्ववत रहीं।

अनु फिर बोली, "परेशान होने से कोई लाभ नहीं है। तुम्हें प्रसन्न रहना चाहिए। समय के साथ सब ठीक हो जाएगा।"

इसके बाद छन्दा और अनु बड़ी देर तक मौन बैठी रही। अपने-अपने विचारों में मग्न और चिन्तित।

"अनु ने मूकता को तोड़ा नमिता की दशा में कुछ भी सुधार नहीं हुआ। उसे यह पूर्ण भ्रम हो गया है कि अब वह जीवित नहीं रह सकती। कभी-कभी उसकी दशा एक उन्मादी सी हो जाती है। उसके विचारों में नए और पुराने के मिश्रण से विचित्र ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो गई हैं।"

"डाक्टर क्या कहता है?" छन्दा ने पूछा।

"उसने अपने आप पर दया नहीं की तो…?"

छन्दा हताश सी बोली, "जीवन अशांति का पर्यायवाची हो गया है। नए युग के नए पाप, नई समस्याएँ, नए मानवीय मानदंड, नया अन्तर्द्वन्द्व मनुष्य इन सब के लिए अपने को अयोग्य समझ रहा है। यह वैज्ञानिक भाषा और व्यापारिक सम्बन्धों में सोचने-समझने वाला युग किस परिणाम से टकराएगा, मैं कल्पना नहीं कर सकती।"

"तुम्हें यदि नमिता के यहाँ जाओ तो कहना मैं जरा देर से आऊँगी।"

१०



दूसरे दिन—

छन्दा दोपहर के कार्य से निवृत होकर सीधी नमिता के घर गई। हालांकि उसका मन अपनी ही अन्तर्वेदना के कारण भारी था फिर भी उसने एकांत की पीड़ा से बचने के लिए नमिता के यहाँ जाना श्रेयस्कर समझा।

सावन की उमस और छोटे-छोटे मेघ-शिशुओं का नीली झील में तैरना मनोरम लग रहा था। काम की अधिकता से भय खाकर विभूती बाबू का पुराना नौकर शकुंत भाग गया था। और उसकी जगह सज्जू आ गया था जो अभी बैठा बैठा ऊँघ रहा था।

पदचाप सुन कर सज्जू चौंका। हाथ जोड़कर बोला, "आप किसको चाहती हैं ?"

"नमिता बहू को।"

"ऊपर है।"

"और विभूति बाबू ?"

"दूकान।"

छन्दा ने नमिता के कमरे में प्रवेश किया। छन्दा को देखते ही नमिता व्यग्रता से बोली, "अच्छा किया कि तुम आ गई। मैं अकेले में आकुल व्याकुल हो रही थी।"

"क्यों ?"

"मुझे लग रहा था कोई निःशब्द कदम उठाता हुआ मेरे पास आ रहा है। उसकी दृष्टि में संसार का सारा आतंक और उसकी क्रूरता समाई हुई है। उसके कदम निर्दय यमराज के पाँवों की ध्वनि सदृश हैं। ......छन्दा दीदी, मैं अवश्य मरूँगी। मृत्यु रात दिन मेरे दृष्टि-लोक में विचरण करती रहती है। ...... हूँ, विभूति बाबू मुझे नादान बालक की भाँति समझते हैं कि यह मुझे भ्रम है।"

"और क्या है ? भ्रम के कारण तुम बावली हो रही हो, नमिता बहू, मृत्यु तुम्हें विभूति बाबू से नहीं छीन सकती। आखिर उन्हें तुम बड़ी तपस्या से मिली हो।"

"तपस्या !.....छन्दा दीदी, तपस्या-वपस्या से मैं उन्हें नहीं मिली। सच बताऊँ, उन्हें अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए एक स्त्री की आवश्यता थी और मुझे दो रोटी की चिंताओं से मुक्त होने के लिए एक पति की जरूरत थी। दोनों की आवश्कताएँ पूरी हो गईं।"

"छिः छिः तुम्हें क्या हो गया है, नमिता बहू ?"

"मुझे कुछ नहीं हुआ छन्दा दीदी ! मैं तुम्हें सच सच कहना चाहती हूँ कि उस समय मैं जीवन से इतनी भ्रांत-क्लांत हो चुकी थी कि मैंने कुछ भी भूत-भविष्य नहीं देखा। वैसे विभूति बाबू मुझे असीम अनुराग करते हैं। लेकिन क्यों करते हैं इसलिए नहीं कि मैं उनकी पत्नी हूँ अपितु उन्हें एक नारी की आवश्यकता है मैथुन के महान सुख और संतोष की प्राप्ति के लिए। ...... तुम्हें यह विषय प्रिय नहीं। लेकिन मैं मृत्यु के पूर्व तुम्हें कुछ सत्य और तथ्य से परिचय कराना चाहूँगी ही। अनु निर्भय और निर्दय है। उसने आज तक अश्रु नहीं बहाया। पूछती है कि रोया कैसे जाता है ? ऐसी हृदयहीन स्त्री को मैं अपने मन की बात नहीं बता सकती। वह विचित्र है विचित्र। सदस्यों में एक। अद्भुत ! ....छन्दा दीदी, मेरी मृत्यु के पश्चात् विभूति बाबु फिर नई युवती से विवाह करेंगे। इस अभागे देश में स्त्रियों का अभाव नहीं। प्रेम से

छली, श्रद्धा से पीड़ित, समाज से संतप्त अनेकानेक नारियाँ केवल सम्बल चाहती हैं। शांत जीवन चाहती हैं क्योंकि उनके जीवन को अशांति के कई तूफानों ने जर्जरित कर दिया है और उनकी दशा कई दिन के प्यासे की भाँति अन्धी बन गई है तब तुम ऐसे महान शाँत और प्रेममय पुरुष विभूति बाबू की वास्तविकता को क्या जानोगी।"

"छन्दा ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर कहा, "तुम्हें इन व्यर्थ की बातों से अपने आप को दुख नहीं देना चाहिए।"

"व्यर्थ की बातें कह कर तुम मेरी बातों का महत्व नहीं घटा सकती। नमिता की दृष्टि में क्रोध की छाया तैरी। कुछ ऐसे भाव आए जैसे वह अपने अन्तर में संग्रहीन विचारों को उड़ेलना चाहती है। बोली, "मैं भी पतित हूँ। प्रेम की मारी और दुखी ! विभूति बाबू ने मेरे सौन्दर्य को देखा और मैंने उनकी सम्पन्नता को। दोनों ने दोनों को ठगा और दोनों ही ठग गए। यही आनंद की बात है।"

"तुम्हें ज्वर आ रहा है।" छन्दा ने उसका स्पर्श किया। नमिता का तन तवे की तरह जल रहा था। उसके ध्यान को बांटने के लिए वह बोली, प्रसन्न का पत्र आया है, उसने तुम्हें वात्सल्य पूर्ण शब्दों में प्रणाम कहा है।"

मिथ्या ! छन्दा दीदी, मुझे छलने का प्रयास मत करो, तुम्हीं उसे कहा करती थी कि नमिता बहू अच्छी नहीं है। अरी मैं कोई डायन हूँ जो तुम्हारे बच्चे का भक्षण कर लेती। मैं उसे अपना बेटा ही समझती थी। लेकिन अब मैं उसके लिए चिंतित नहीं होऊँगी। मृत्यु की बेला मोह के बन्धन अत्यन्त पीड़ा देते हैं। जाओ, प्रसन्न को तुम्हीं कुछ लिख देना।"

कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा।

"छन्दा दीदी, यह किस की पदचाप है।"

"किसी की नहीं, तुम्हें भ्रम हो गया है।"

नमिता ने अपना मुँह अपने आंचल में छुपा लिया। थोड़ी देर बाद बोली "एक बात बताती हूँ यदि तुम विभूति बाबू को न कहो तो ?"

"ना,ना, मैं विभूति बाबू को क्यों कहूँगी। ""……नमिता बहू, इस बार जैसे ही अच्छी हो जाओगी, वैसे ही विभूति बाबू तुम्हें वृन्दावन ले चलेंगे।"

"मैं वृन्दावन मृत्यु के बाद ही जाऊँगा। …… मेरा एक प्रेमी है। उसे पक्षाघात हो गया है। अनेक कष्ट पा रहा है। मैं उसे अब भी प्यार करती हूँ, तुम स्त्री हो, स्त्री के मर्म को समझती हो, एक बार जाकर उसे देख आओ कि वह बेचारा भूखा-प्यासा तो नहीं है।

छन्दा सन्न रह गई। नेत्र विस्फारित हो गए।

"तुम मुझे ऐसे घूर कर क्यों देख रही हो। जाओ न वह बेचारा बड़े कष्ट में है। सचमुच छन्दा दीदी, मैंने उसे ही प्रेम किया है अब भी उसे ही चाहती हूँ।"

तभी नाटक के खल-नायक की भाँति अनु ने कमरे में प्रवेश किया। व्यंग् से बोली, "वाह री औरत तुम्हारे मन में कुछ भी नहीं पचता। क्या पाप और पुण्य ? क्या सच्चरित्रता और क्या दुश्चरित्रता ?"

नमिता भय से स्थिर हो गई। उसने साभिप्राय दृष्टि से छन्दा को देखा जैसे वह कह रही है। उसे कुछ नहीं कहना। यह बड़ी निष्ठुर और निर्दयी है। दया भी करती है पर तड़पा-तड़पा कर।

"क्या बात है ?"

नमिता बीच में ही हड़बड़ा कर बोली, "कुछ नहीं, कुछ नहीं, मैं छन्दा का पूछ रही थी कि असीम भैया ……!"

अनु उसके समीप आ गई, "बात को बदल कर तुम अपनी चतुराई को परिचय देना चाहती हो। नमिता, शेष जीवन में क्यों कड़ुवाहट और विष घोल रही हो। ……छन्दा, आज के पत्र में किसी भी व्यक्ति की आत्महत्या के समाचार नहीं हैं। तुम निश्चिन्त रहना। मैं समझती हूँ कि असीम की उत्तेजना स्वतः ही ठंडी हो जाएगी। वह लौट आएगा, लौट आएगा।" फिर उसे नमिता का ख्याल आया। बात को बदल कर बोली, "तुम्हारा क्या हाल चाल है ?"

नमिता ने कहा, "तुम मेरी बात मानने को तैयार नहीं हो। लेकिन मैं जानती हूँ कि मृत्यु निश्चित है। मेरे मन में मृत्यु का पूर्व उद्घोष हो रहा है।" अनु ने कहा, "तुमने अपनी हट से मुझे सदा पराजित किया और धीरे-धीरे यह प्रतीत कराया कि मुझे तुम्हारी बात माननी ही पड़ेगी। परन्तु तुम्हारी इस बात से मैं तनिक भी प्रभावित नहीं हुई। यह मृत्यु की रट मुझे मजाक सी लगती है।" और हाँ मैं तुम्हें एक सुखवाद सुनाने आई हूँ। ज्योतिर्मय की दशा सुधार पर है। बिजली का ताप उस पर प्रभाव ला रहा है। उसने तुम्हें प्रणाम कहा है।"

नमिता उसे अविश्वास की दृष्टि से देखती रही।

छन्दा को यह नाम परिचित लगा पर वह चुप रही।

अनु ने उसके पास आकर कहा, "आज भी तुम्हें ज्वर है। हृदय तुम्हारा दुर्बल है। कहीं तुम्हारी दुश्चिताएँ ही तुम्हारा काल न बन जाए!"

"मुझे आज आराम है। अनु तुम, विभूति बाबू के पास चली जाओ। उन्हें कहना कि आज रात जल्दी आजाए। शराब पी कर न आए। मुझे उस की दुर्गन्ध आती है।" नमिता का हाथ अनु को छू रहा था, "अनु दीदी, वे मेरी एक भी बात नहीं मानते। कहते हैं:— शराब पी कर आता हूँ तभी तुम्हारी रात भर सेवा कर लेता हूँ।"

अनु ने तुरन्त कहा, "मैं उन्हें समझा दूँगी। अब तुम दवा लेकर आराम से सो जाओ।"

"एक बात और कहूँ?"

"कहो?"

"मरने के पहले एक बार ज्योतिर्मय से मिलने की आज्ञा दे दो न?" उसके स्वर में एक नन्हें बालक की विनती थी।

"अच्छी हो जाओ, फिर दे दूंगी।" उसने छन्दा का हाथ पकड़ कर कहा, "चलो, अब इसे आराम करने दो।"

"नहीं, इसे यहीं रहने दो, मुझे अकेले में भय लगता है।"

अनु चली गई। नमिता के लिए उसे भी पीड़ा हुई।

उसके जाने के साथ ही नमिता ने छन्दा से कहा, "दीदी, अनु बड़ी भयानक स्त्री है। मैं यदि ज्योतिर्मय से मिलने चली जाऊँ तो यह सारा भांडा फोड़ दे। मेरे बारे में एक यह जानती है या मैंने तुम्हें अपना समझ कर सब कुछ बता दिया है। ईसाई धर्म में हर आदमी अपने पाप पादरी के सामने दोहराता है ताकि उसे भव-जीवन से मुक्ति मिल जाए। ···मैंने तुम्हें कह कर अपनी आत्मा को सांत्वना दे ली। ······मैं मृत्यु-पूर्व एक बार ज्योतिर्मय से अवश्य मिलने जाऊंगी। अवश्य !"

सज्जू ने आकर कहा, "दवा का समय हो गया है।"

छन्दा ने नमिता को दवा पिलाई। दवा पिलाती हुई वह सोच रही थी कि वह कौन सा ज्योतिर्मय है ? अमोलक बाबू का बेटा तो नहीं। वह नहीं हो सकता ? ········वह तो बीमार है। छिः मैं क्यों किसी की परेशानी मोल लूं ?

"तुम दवा पिलाकर अपने मन को तुष्ट कर लो पर मैं जरूर मरूँगी और पागल हो कर मरूँगी।" नमिता ने चिढ़ कर कहा।

× × ×

११



असीम के चले जाने पर छन्दा ने कई बार रोने का प्रयास किया था पर वह जिस तरह रोकर अपने हृदय को हल्का करना चाहती थी, उस प्रकार वह रो नहीं सकी। सभ्रान्त स्त्रियों की भाँति उसे अपने आप पर ग्लानि अवश्य हुई क्योंकि कितनी ही निष्ठुर और पतित शत्रु क्यों न हो, आखिर वह एक विशेष द्वेष की भावना लेकर अपने प्रतिद्वन्दी को पराजित करने की चेष्टा करता है। यह द्वेष की भावना भी हमारे हृदयों में गहरे सम्बन्ध स्थापित करती है जिसे हम अज्ञात रूप से बड़ा अलगाव समझते हैं।

उसी घृणा की गहरी भावना को लेकर छन्दा रोना चाहती थी किन्तु वह इसमें असमर्थ रही। 'असीम कभी एकांत में यौवन के अन्धकारमय वातावरण में उसके तन को नोच देगा', इस भय से मुक्त होने पर उसे आनन्द की अनुभूति हुई उसे लगा कि असीम के चले जाने के बाद उसका अंग अंग स्वतंत्र हो गया है। स्वतंत्रता की कल्पना ने उसके चतुर्दिक वातावरण को संगीतमय बना दिया। उसे अपने श्वाँस में भी संगीत का आभास हुआ। वह एक बार छत्त पर मुक्त प्राणि की भाँति चहल कदमी करने लगी जैसे वह कल ही बन्दीगृह से छूट कर आई हो।

भोर होने में देर थी। सावन के कजरारे बादल उस अन्धेरे को और भी भयानक बनाने लगे। ठंडी हवा आगामी वर्षा की सूचना दे रही थी। उसने

हवा के रुख की ओर मुँह करके एक बार दुख भरा दीर्घ श्वाँस लिया। फिर असीम के कमरे में आई।

असीम के कमरे में आकर उसने प्रकाश किया। असीम का चित्र टंगा था। उसके नीचे ही छन्दा का, विधवा छन्दा का एक अत्यन्त सुन्दर पोज था। उसने उस पोज को वहां से हटा दिया। वह असीम को देख कर बड़बड़ाने लगी। उसका स्वर एक दम अस्पष्ट था।

इसके बाद उसने असीम का चित्र अपने हाथ में ले लिया और उसे जमीन पर गिरा दिया। चित्र टूट गया और शीशे के छोटे छोटे टुकड़े यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखर गए। वह उन्हें एकत्रित करने लगी। एकत्रित करती हुई सोच रही थी कि फिर भी उसके अन्तर में झांकने पर उस पतित प्राणी के प्रति समवेदना क्यों है ? वह असीम की मृत्यु की कल्पना मात्र से पीड़ित क्यों हो जाती है ? असीम ने उसके युग-युगान्तर के धर्म और कर्म को विचलित कर दिया। संसार की परम्परा से भिन्न 'दीदी' कहकर उसे पशु-दृष्टि से देखा, उसकी समस्त आस्थाओं और दिदंदासों को डांवाडोल कर दिया। ऐसा क्यों ? तब उसे आभास हुआ कि मनुष्य के नाते सबके अहित में दुख होता है। हमारे घृणा और प्रेम के सम्बन्धों से परे भी एक और सम्बन्ध है–मनुष्यता के नाते-रिश्ते। आदमी से आदमी का प्यार।

असीम को अनु सम्मान की दृष्टि से देखती थी। उसने यह भी कहा था वह इसलिए महान है क्योंकि वह कभी अमर्यादित नहीं हुआ अन्यथा इस पूँजीवादी यांत्रिक सभ्यता में पला यह समाज सदा अनैतिक और घृणित हत्या करता है और हमारी पवित्र वाणी, हमारे उपदेशक साहित्यकार और हमारे समाज के सच्चे निर्माता उन घटनाओं को इसलिए आवरण आच्छन्न कर देते हैं कि उन्हें धूप, गन्दगी को सूखाने वाली धूप न लगे वे उनकी दुर्गन्ध सदा सूंघने को तत्पर रहते हैं पर उन्हें उनका प्रकटीकरण कदापि स्वीकार नहीं ? चाहे उनके धर्म ग्रंथों में महादेव जी का विष्णु जी (मोहनी रूप में) के पीछे भागना स्वीकार भले ही हो और उनका भागते-भागते स्खलन तक हो जाय। अनु 'गंभीरता से बोली थी-मैं 'मोहनी रूप' वाला प्रकरण पढ़कर घृणा में भर उठी। होता यह

है कि हम जिन गन्दगियों को छुपा कर पर्दा डालते हैं, उन के प्रति हममें और हमारी भावी पीढ़ी में एक जिज्ञास भर जाती है। तब वे उन्हें लुकछुप कर देखने और पाने का प्रयास करते हैं ...... अभी ही एक समाचार-पत्र में खबर प्रकाशित हुई थी कि एक पति अपनी पत्नी से वेश्या का पेशा करवाता था। मैं तुम्हें कहती हूँ, उनके आस-पास के लोग उससे इतनी घृणा करने लगे कि उसे वह मोहल्ला छोड़ना पड़ा। उस घृणा की विषक्त छाया जो उसकी आत्मा के तार तार में बश गई है, क्या उसमें परिवर्तन नहीं लायेगी ? ...... ऐसी बात नहीं है कि आदमी अपने को सुधारने का प्रयास नहीं करता। वह करता है, सफल भी होता हैं।...तब ऐसी स्थिति वाले अपराधि प्राणी सोचने लगते हैं, हमारा पाप भी प्रकट हो जाएगा लोग हमसे भी घृणा करेंगे। तब वह अपने पाप को जो 'पूर्ण विराम' तक नहीं पहुँचा है, उसे अन्य धारा में परिमित कर देता है। लोग उसके बारे में कहते है—इस व्यक्ति के प्रति हमारा अनुमान गलत निकला। इन कुंठाओं और अनैतिक कृत्यों के पीछे 'अर्थ का भी हाथ है, हाथ भी छोटा नहीं, बहुत विराट। धीरे धीरे अर्थ हमारे जीवन का पर्यायवाची हो रहा है किन्तु इन सब के पीछे मनुष्य की दुर्बलता काम कर रही है। गलत पाथेय से मुक्ति नहीं। मुक्ति तभी मिलेगी जब हमारा पथ सही होगा। ......तुमने कहा कि नग्नता का वर्णन मंगलकारी नहीं, वह शिवम् की भावना से हीन होता है।......आज पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध प्रगतिशील शक्तियाँ निरन्तर प्रहार करती जा रही हैं। पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों कहानियाँ सामन्तों एवं पूंजिपतियों के विरुद्ध होती हैं। उनमें सबके प्रकाशन में मूल भावना यही है कि उस वर्ग के प्रति घृणा उत्पन्न कराके क्रांति की जाय, फिर क्या मौन की जटिल समस्याओं पर प्रहार करके, उनका पर्दाफाश करके स्वस्थ परम्पराओं की स्थापना नहीं की जा सकती ?..... असीम अपने पाप के भय से भाग गया। चोर के पाँव नहीं होते। असीम पाँवहीन प्राणी हो गया। अब जब वह आएगा तब अवश्य ही उसके पाँव होंगे। ....नमिता पतिता है। फिर भी उसने विवाह के बाद समाजिक मर्यादा को भंग नहीं किया। ज्योतिर्मय उसके योवन का साथी है। पहले उसमें उसके प्रति अपार प्रेम था और अब

प्रगाढ़ करूँगा। ''''''विभूति बाबू से वह तनिक भी तुष्ट नहीं है। दो रोटी का प्रश्न और वह दुखों से जर्जित नहीं होती तो वह आज भी ज्योतिर्मय के पास दौड़ जाती। उसकी विचित्र मनोवृति होती जा रही है। मुझे भय है कि मृत्यु के स्थान पर वह पागल हो जाए '''''' एक बार कहने लगी कि विभूति बाबू मुझे बहुत प्यार करते हैं, मैं भी उनके चारों ओर लिपटी रहती हूँ फिर भी मुझे उनसे घृणा है। पति है, अतः अपने पत्नीसुख के लिए कर्त्तव्य विमुख नहीं होती। फिर बेचारा ज्योतिर्मय अपाहिज हो गया। जायें तो कहाँ ? जीवन से समझौता कर लिया है।"

अनु की भार भरकमबातें छन्दा पूर्णरूप से नहीं समझ पाती, समझने का प्रयास भी करती है पर व्यर्थ। असीम से उसे घृणा है, द्वेष है। वह भविष्य में उससे तनिक भी सम्बन्ध नहीं रखेगी किन्तु वह उसकी मृत्यु की कामना क्यों करती है ? कहीं वह आत्म हत्या कर लेगा नहीं-नहीं उससे पाप का प्रतिकार नहीं होगा। लोग पथ भ्रष्ट होते हैं। भ्रष्ट होने का प्रतिकार मृत्यु नहीं। असीम ने कभी एक शब्द भी अनुचित नहीं कहा। कहीं वह स्वयं पथभ्रष्ट हो गई हो तो ? ''''''''नहीं, नहीं, वह उसे मृत्यु से बचायेगी,

छन्दा कमरे में जोर से टहलने लगी। टूटी हुई तस्वीर उसे वीभत्स नाश की भाँति भयानक लगी। उसने वेदना से अभिभूत होकर अपनी आँखें बन्द कर लीं।

तभी अखबार के होकर की आवाज सुनाई पड़ी। वह लपक कर गई, उसने पढ़ा-आत्महत्या की एक खबर थी पर वह थी किसी स्त्री की उसने संतोष की सांस ली और फिर तार देने के लिए टेलीग्राम आफिस पहुँची। वह कलकत्ता तार देगी—एक नहीं, अनेक।

उसने अपने सभी मित्रों एवं सम्बन्धियों को तार दिया।

तार दे चुकने के बाद उसे अज्ञात आनंद हुआ। उसे लगा कि उसने एक जीवन बचा कर अपने मन का कलुष धो लिया है। कदाचित असीम भी उसके इस कार्य से अपने मन के पाप को धोने का प्रयास करेगा। वह धीरे-धीरे सड़क के फुटपाथ पर चली जा रही थी '''''' चली जा रही थी।

१२



छन्दा टहलती जा रही थी।

एकाएक उसके सम्मुख टैक्सी रुकी। वह सन्न रह गई। कौतूहल से वह टैक्सी में बैठी युवती को देखने लगी। बड़ी कठिनता से उसके मुँह से निकला, "तुम ?"

"हाँ, मैं, आओ।" नमिता ने दरवाजा खोलकर छन्दा को अपने पास बिठा लिया। टैक्सी चल पड़ी।

"डाक्टर कहता है कि मैं पागल हो जाऊँगी।" उसने अपने आप से कहा। उसने घृणा से मुँह बिचका दिया। छन्दा पर अपनी तीखी दृष्टि जमाकर कहा," कल विभूति बाबू फिर शराब पीकर आए थे। उसकी दुर्गन्ध से मैं घबरा गई। मैं तुम्हें ठीक कहती हूँ कि वे मुझे जरा भी प्रेम नहीं करते।""""कल रात घड़ियाली आँसू बहा रहे थे। मेरे स्वास्थ्य के लिए भगवान से प्रार्थना कर रहे थे। कितने ढोंगी हैं ? मैं उन्हें सदा से जानती हूँ। सच यह है कि हम दोनों एक दूसरे से मिथ्या उत्कट प्रेम करते रहे हैं।""""तुम मेरी पादरी हो, मृत्यु के पूर्व तुम्हें सब बातें बताने की इच्छा है। साँस आराम से निकलेगा।

छन्दा ने परेशानी से पूछा, "आखिर तुम जा कहाँ रही हो ?"

"यह मैं तुम्हें नहीं बता सकती।""""यह रहस्य है। मैं तुम्हें कहना

चाहती हूँ कि मैं महा पतिता हूँ। नरक की घृणित नारी। महापापिन !"

"मैं गाड़ी रोकती हूँ।" छन्दा ने बीच में ही कहा।

"नहीं, नहीं, ऐसा न करो बाबा, जो कहती हूँ सुन लो। मैं ज्योतिर्मय की पत्नी थी, अविवाहित पत्नी। मेरे एक बच्चा भी हुआ था, उसे मैं गंगा माँ की गोद में सुला आई। · आज यदि वह जीवित होता तो बेचारे अपाहिज ज्योतिर्मय के कितना काम आता ?····, मैं हत्यारी माँ हूँ। मैंने अपने बच्चे की हत्या की।···

टैक्सी ड्राइवर ने एक बार पीछे की ओर देखा फिर वह और तेज होकर चला जैसे वह छल, प्रपंच, धोखा, चोरी-डाका और खून की बातें सुनते-सुनते उनका आदी हो गया हो। वह जानता है कि टैक्सियों के प्रिय-विषय यही हैं।

"अब मैं सुखपूर्वक मरूँगी। मुझे विश्वास है कि तुम इस रहस्य को किसी के समक्ष प्रकट नहीं करोगी।·· ड्राइवर गाड़ी रोको।···छन्दा दीदी, अब उतर जाओ।" ···छन्दा उतर गई—विचारों में खोई सी। उतर कर उसने पूछा—"कहाँ जाती हो नमिता बहू।"

'ज्योतिर्मय के यहाँ।"

गाड़ी चल पड़ी। टैक्सी वाला अपनी धुन में मस्त हुआ सिगरेट पी रहा था। छन्दा कुछ देर विचार कर विभूति बाबू के घर की ओर चली। उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह ज्योतिर्मय का पता लगाएगी कि वह कौन सा है ?

× × ×

१३



कल मैं शराब पीकर भी नहीं आया था, फिर भी वह निरन्तर कह रही थी कि आप शराब पीकर आए हैं। ''' मुझे दुर्गन्ध आ रही है। मैं डाक्टर बुलाकर लाया। उसने कहा कि उन्माद के बढ़ जाने का पूर्ण खतरा है''''''।"

"लेकिन वह चली कैसे गई ?" अनु ने पूछा।

"मैं पाखाने गया हुआ था। सज्जू नीचे जल गर्म कर रहा था। बस,''' इतने में ही वह भाग गई। मैं उसे ढूँढ आया, वह नहीं मिली।"

"बहुत सोच-विचार के बाद अनु ने कहा," आप मेरे साथ चलिए, मैं जानती हूँ कि वह कहाँ गई है ?"

रास्ते भर विभूति बाबू कहते जा रहे थे—दुर्भाग्य मेरे पीछे लगा हुआ है। मैं बड़ा भाग्य-हीन हूँ। मुझे स्त्री-सुख नहीं, संतान-सुख नहीं। कुछ नहीं। दुख ही दुख !''''''

अनु गंभीर मौन थी।

टैक्सी चली जा रही थी।

× × ×

१४



समरेश चीख कर बोला, अनेक कष्ट देकर भी तुम्हारे मन को शांति नहीं मिलती। न स्वयं सुख से रहते हो और न दूसरों को रहने देते हो। तुम्हें मृत्यु भी नहीं आती ?"

"विष लाकर क्यों नहीं दे देते ?"

तभी नमिता ने टैक्सी से उतर कर भीतर गई। ज्योतिर्मय के नेत्रों में अश्रु देखकर उसके स्वर में हल्का क्रन्दन जाग गया वह समरेश के मुख पर हाथ रख कर बोली, "मृत्यु की गाली मत दो, समरेश बाबू, यह बड़ा दुखी है। पिता और परमात्मा ने इसे अनेक कष्ट दे दिए हैं। आप हृदयहीन मत होइए।"

"क्या करूँ मैं ? आखिर मेरे सहने की एक सीमा है। यह मुझे बड़ा कष्ट देता है। अभी मरने के लिए बाहर चला गया आप बताइए इसका परिणाम क्या होता। मेरे जीवन भर की सेवाओं पर पानी फिर जाता।"

"सेवा, सेवा, में पूछता हूँ कि मेरे कपड़े तुम्हारा नौकर क्यों उठा कर ले गया ?" उसका हाथ ऐसे हिल रहा था जैसे उसका शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है।

"उन चिथड़ों का तुम क्या करते ? व्यर्थ में गन्दे-गन्दे वस्त्रों को क्यों एकत्रित करते हो ?"

"वे गन्दे नही, मेरे प्रयोजन के थे ।"

"तुम्हारे प्रयोजन के ये सभी कपडे है ।''''नमिता देवी, यह हर वस्तु को संग्रह करने की चेष्टा करता है । मछली में खटाई न हो सिर फोड लेता है नौकर देर से पहुंचा तो चीखने-चिल्लाने लगता है । आप इसे समझाइए, मैं अब इससे थक गया हूँ ।" कह कर समरेश चला गया ।

नमिता उसके समीप गई । ममता भरे स्वर में बोली, "तुम ऐसा क्यो करते हो ? अब तुम्हारा इतनी बडी दुनिया मे कौन है ?"

ज्योतिर्मय ने चिढ कर कहा, "मुझ पर दया करने की आवश्यकता नही । मुझे दया करने वालो पर बड़ा क्रोध आता है । तुम यहाँ से चली जाओ । ''''मै कहता हूँ''' तुम्हारा पति '' ?"

"मैने अपने पति से कभी सच्चा प्रेम नही किया । ज्योति न मालूम क्यो मुझे तुम्हारी याद आया करती है । हाँ, जीवन में मैने कई क्षण तुम्हारे बिना जरूर बिताए पर ' मुझे तुम्हारे बिना पल भर भी चैन नही मिला संसार मुझे चरित्र-हीन और भ्रष्ट भले ही समझे पर मैंने सदा एक तुम्हे ही प्यार किया । विभूति बाबू से मैने संसार की चिन्ताओं से मुक्त होने के लिए विवाह जरूर किया है पर प्यार दूसरी चीज है ।''''फिर तुम्हारी घृणा !"

"सब ठीक है, पर अब चली जाओ । मैं लाचार हूँ । कहीं तुम्हारा पति'''' हाँ, तुम यहाँ से शीघ्र चली जाओ । मुझे भूल जाओ । मैं दुखी हूँ, अपाहिज हूँ, लाचार हूँ ।''''नमिता जाओ, जाओ न ।"

"जाती हूँ, ज्योतिर्मय, डाक्टर कहता था कि मै पागल हो जाऊँगी । क्या यह सच है ?"

नहीं, "तुम पागल नही होवोगी । जाओ, यहाँ से चली जाओ । मृत्यु दुखी प्राणिओ से बहुत दूर रहती है ।"

"पर मैं जरूर मरूँगी ।"

"ज्योतिर्मय ने अपने एक हाथ से उसके दोनों हाथ पकड लिए । नमिता बोली । मुड़कर बोली;" मैं बिल्कुल छुप कर आई थी । मृत्यु के पूर्व तुम से एक बार मिलना चाहती थी ।अब मै बड़े आराम से मरूँगी ।"

नमिता बाहर निकली।

द्वार पर अनु खड़ी थी। अनु के पीछे विभूति-बाबू।

"आप, आप यहाँ कैसे···? आप···?"

"तुम घर से क्यों भाग आई ?" विभूति बाबू, एक पुरुष की आँखों में तीव्र घृणा थी।

"मैं···।" वह पीछे खिसकी और विभूति बाबू आगे। अनु ने नमिता को पकड़ लिया। नमिता बेहोश हो गई।

"घर पहुँचते ही विभूति बाबू ने नाड़ी देखकर कहा," अनु, नमिता मर गई। उसका हार्ट-फेल हो गया।

"नमिता मर गई।" अनु जड़वत रही। धीरे धीरे उसके नेत्रों से अश्रु ढलक पड़े। जीवन में वह प्रथम बार रोई। नमिता ने उसे अन्तिम बार भी पराजय दी। आखिर उसे रूला ही दिया। अनु ने जब रोना प्रारंभ कर दिया तब वह अविरल बन गई। जैसा गंगा-जमुना उसकी आँखों में आ विराजी हो। जैसे युगों से निर्मम पाषाण खंड पिघल गया हो।

विभूति बाबू नमिता को चलते देख कर बोले, "मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ, मुझे स्त्री-सुख नहीं। ·· मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ।"

संसार परिवर्तन का केन्द्रस्थल है।

नमिता की मृत्यु के बाद अनु अधिक से अधिक अपने में सिमटने लगी। उसने आवश्यकता के अतिरिक्त मौन धारण कर लिया था। आज छन्दा उससे मिलने गई थी, "मैं बंगलोर जा रही हूँ। प्रसन्न को कुछ कहना है,"

"प्रसन्न को कहना अनु माँ ने कहा कि जीवन बड़ा विषम है। उसके वास्तविक रहस्य से परिचित होकर उसके सौन्दर्य से उसको सत्य की भाँति प्यार करना। अपने को अन्तर्मुख नहीं, बहिर्मुख बनाना। आज का प्राणी मानसिक ग्रंथियों से बहुत पीड़ित है। अतः अपने को इन ग्रंथियों से बचाकर आदमी की भाँति जीवित रखना। आज के युग में आदमी बनना अत्यन्त दुष्कर है, फिर भी प्रयास हानिकारक नहीं। निरन्तर प्रयास की संलग्नता तुम्हें अधिक से अधिक सुखी रखेगी।"

छन्दा ने घर आकर अपने बिस्तर को बांधा। एक बार उसने अपने घर को ध्यान से देखा। उसकी निर्जीव दीवारों से भी उसको मोह सा हो गया था। क्षण भर के लिए उसके नेत्र भर आए।

वह बाहर निकली। रिक्शा खड़ा था उसने रिक्शा को आवाज दी।

तभी एक फटफटी उसके घर के आगे आकर रुकी। उसमें असीम था और असीम के साथ दुल्हिन। नई वधू, साँवले रंग की हृष्ट पुष्ट।

"दीदी, तुम कहाँ जा रही हो? देखो, मैं तुम्हारे लिए दुल्हिन ले आया हूँ एक भाभी। हमें आशीर्वाद दो।"

"चिरंजीव रहो।" उसने बहू को गले से लगा लिया।

"और आशुतोष गिरफ्तार हो गया है। वह तस्कर व्यापार कर रहा था।"

"पाप का परिणाम सदा बुरा ही होता है। अच्छा, मैं चली गाड़ी का समय हो रहा है।"

"आज भर रुक जाओ।" असीम हठात् बोला

"आत्मा का आशीर्वाद सदा बहू को देती रहूँगी। मेरा रुकना यहाँ व्यर्थ है। प्रसन्न को भी तार दे चुकी हूँ। ......असीम, जीवन एक विचित्र स्वप्न है—विपाक्त और मधुर।

बहू ने घूंघट की ओर से फिर चरण छूए।

वह चल पड़ी--मौन और अश्रुओं से भरी आँखों के साथ। उसने एक बार पुनः कहा, "जीवन बड़ा विचित्र है। अनु ने ठीक कहा था—स्वार्थ और पेट न हो तो हमारे समस्त बन्धन क्षण भर कच्चे धागे की भाँति टूट जाये।"

रिक्शा चल पड़ा—काली और गर्म सड़क पर—ठक् ठक् ठक् घूँघा की आवाज आ रही—धीरे-धीरे धीरे पुराने दूर होते गए और नए समीप आते गए।

